दूसरे प्रकार के लोग जो धनी हैं, वे अपने धन के गर्व्व से भूले हुए हैं। उन्हें धन-मद के कारण कुछ सूझता ही नहीं, उन्हें किसी से बातें करना या किसी की सुनना ही पसन्द नहीं, अत उनसे भी कुछ लाभ नहीं। अब रहे तीसरे प्रकार के लोग, वे नितान्त मूर्ख या अज्ञानी हैं, उन गँवारों में अच्छे-बुरे की तमीज़ नहीं, अत उनसे कुछ कहने या अपनी कृति दिखाने सुनाने को दिल नहीं चाहता, इसलिये हमारे मुँह से निकल सकने वाले उत्तमोत्तम विचार, निबन्ध, काव्य या सुभाषित संसार के सामने न आकर, हमारे शरीर में ही नष्ट हुए जाते हैं, हमारा परिश्रम व्यर्थ जाता है और संसार हमारे कामों के देखने और लाभान्वित होने से वञ्चित रहता है।

और भी स्पष्ट।

संसार में घमण्डियों की संख्या बहुत है। कितने ही अपनी विद्या के गर्व्व से चूर हो रहे हैं और कितने ही लक्ष्मी के नशे से मतवाले हो रहे हैं। यदि कोई विद्वान् या कारीगर विद्या-गर्व्वियों के पास जाता है, तो अव्वल तो वे धुरन्धर विद्वान् बेचारे को पास ही नहीं फटकने देते और यदि कोई श्रीचरणों में पहुँच गया, तो वे उसके काम के उत्तम अंशों पर ध्यान न देकर, बुरे अंशों को देखते हैं और उसमें तरह-तरह के दोष निकालकर उसके दिल को चोट पहुँचाते हैं, इसलिये ऐसे विद्या-गर्व्वियों के पास जाना और अपने काम की कदरदानी की आशा करना भूल है। अब रहे धन गर्व्वी, धन से मतवालों

की तो बात ही न पूछिये। प्रथम तो उन तक पहुँचना ही कठिन काम है। यदि पहुँच भी गये, तो उन्हें अवकाश ही नही मिलता। सैकड़ों बार उनकी देहल की धूल चाटने पर कदाचित् ही कभी नम्बर आवे-तो-आवे। फिर, वहाँ पराई बुराई करने वालो या चुगलखोरो की तूती बोलती है, अत. वहाँ भी सफलता नही होती। इन दोनों प्रकार के लोगो के सिवा, जो तीसरे प्रकार के लोग हैं, वे तो निरे मूर्ख—अज्ञानी या कोरे बावाजी हैं। उनको किसी प्रकार का ज्ञान ही नही, वे सुभाषित और कुभाषित, सुशिक्षा और कुशिक्षा, काव्य और अलङ्कार को समझते ही नही। ऐसी दशा में, कदरदान या गुणग्राहक के अभाव से खामुखाह मन से विरक्ति या वेदना होती है मन दु खी होकर कहता है—"हाय! रसिक और समझदारों के दिल साफ नहीं हैं, उनके चित्त मत्सरता से कलुषित हो रहे हैं। धनवानों को धन के नशे के मारे कुछ सूझता ही नही, वे किसी से बात ही नहीं करते। अज्ञानियों की समझ में कुछ आ नही सकता। अब हम अपना पाण्डित्य या कारीगरी किसे दिखावें?

शिक्षा—जो तुम्हारी तरफ मुखातिब हो, तुम्हारी बातो पर कान दें, तुम्हारी बातो को ध्यान से सुनें, उन्ही को अपनी बातें सुनाओ। जो तुम्हारी बातें सुनना न चाहें, उनके गले मत पडो। ऐसा करने से आप की आत्मप्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा—आपका अपमान होगा।

कुण्डलिया ।

पण्डित मत्सरता भरे, भूप भरे अभिमान ।
और जीव या जगत के, मूरख महाअजान ॥
मूरख महा अजान, देख के सकट सहिये ।
छन्द प्रबन्ध कवित्त, काव्यरस कासों कहिये ।
वृद्धा भई मनमाँहि, मधुर वाणी गुणमण्डित ॥
अपने मन को मार, मौन धर बैठत पण्डित ॥२॥

2 The learned are full of jealousy, the wealthy are intoxicated with vanity, while others are in the hold of ignorance Hence there is no other resource for one's literary talents save that of their being suffocated within one's own self

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाक पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशत ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥३॥

मुझे संसारी कामों में जरा सुख नहीं दीखता। मेरी राय में तो पुण्यफल भी भयदायक ही हैं। इसके सिवा, बहुत से अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करने से जो विषय-सुख के सामान प्राप्त किये और चिरकाल तक भोगे गये हैं, वे भी विषय सुख चाहने वालों को, अन्त समय में, दु खों के ही कारण होते हैं ॥३॥

खुलासा।

इस जीवन में सुख का लेश भी नहीं है। जिनके पास अक्षय लक्ष्मी, धन-दौलत, गाडी-घोडे, मोटर, नौकर-चाकर, रथ-पालकी प्रभृति सभी सुख के समान मौजूद है, राजा भी जिन की बात को टाल नहीं सकता, जिनके इशारों से ही लोगों का भला या बुरा हो सकता है, ऐसे सर्व्वसुख-सम्पन्न लोग भी, चाहें ऊपर से सुखी दीखते हो, पर वास्तव में सुखी नहीं हैं, भीतर ही भीतर उन्हें भी घुन खाये जाता है, किसी न किसी दु.ख से वे जर्ज्जरित हुए जाते है। इस मौके की दो कहानियाँ हमें याद आई है। हम उन्हें दृष्टान्त के तौर पर यहाँ लिखते हैं —

एक महात्मा अपने शिष्य के साथ किसी नगर में गये। वहाँ उन्होंने देखा कि, एक साहूकार इन्द्रभवन जैसे मकान में बैठा है, सैकडों सेवक आज्ञापालन को तैयार खडे है, जोडी गाडी द्वार पर खडी है, हाथी झूम रहे हैं, सोने चाँदी और हीरो पन्नों के सामने ढेर लग रहे है। महात्मा को देखकर सेठने अपने एक कर्मचारी को उनको भोजन कराने की आज्ञा दी। जब गुरु चेले भोजन करने बैठे, तब चेला बोला—"गुरु-जी। आप कहते थे, ससार में कोई भी सुखी नहीं है। देखिये, यह सेठ कैसा सुखी है। इसे किस बात का अभाव है? लक्ष्मी इसकी दासी हो रही है।" गुरु ने कहा—"जरा सब्र करो।

हम पता लगाकर कुछ कह सकेंगे।" महात्मा ने जब भोजन कर लिया, तो सेठ से कहा—"सेठजी! परमात्मा ने आप को सभी सुख दिये हैं।" सेठ ने रोकर कहा—"महाराज! मेरे समान इस जगत् में कोई दुःखी नहीं है। मुझे परमात्मा ने धनैश्वर्य्य सब कुछ दिया है, पर पुत्र एक भी नहीं। पुत्र बिना ये सुख बिना नमक के पदार्थ की तरह अलौने और बेस्वाद हैं। मेरा दिल रात-दिन जला करता है, कभी मुझे सुख की नींद नहीं आती। मैं इसी सोच में जला जाता हूँ कि, पुत्र बिना इसे कौन भोगेगा?" सेठ की बातें सुनकर चेले ने कहा—"हाँ गुरुजी, आपकी बात राई-रत्ती सच है। संसार में कोई भी सुखी नहीं। कोई किसी दुःख-से-दुःखी है तो कोई किसी दुःख से।

और भी :—

किसी नगर में एक साहूकार था। उसके यहाँ धन-दौलत की कमी न थी। उसका धन-भाण्डार कुबेर के समान अक्षय था। जिसके पास अतुल धन है, उसे किस पदार्थ का अभाव है? वह साहूकार सब तरह से इन्द्र के समान स्वर्ग-सुख लूट रहा था। इसी बीच में दैवयोग से उसकी स्त्री बीमार हो गयी। हर तरह की उत्तम चिकित्सा होने पर भी उसके बचने की आशा न रही। सेठ रोने लगा। स्त्री ने कहा—"आप क्यों रोते हैं? आप धनी हैं, आपके सैकड़ों विवाह हो सकते हैं। मेरे मरते ही आपकी दूसरी शादी फौरन हो जायगी। दुःख

खुलासा ।

इस जीवन मे सुख का लेश भी नहीं है। जिनके पास अक्षय लक्ष्मी, धन-दौलत, गाडी-घोडे, मोटर, नौकर-चाकर, रथ-पालकी प्रभृति सभी सुख के समान मौजूद है, राजा भी जिन की बात को टाल नहीं सकता, जिनके इशारों से ही लोगों का भला या बुरा हो सकता है, ऐसे सर्व्वसुख-सम्पन्न लोग भी, चाहे ऊपर से सुखी दीखते हों, पर वास्तव में सुखी नहीं हैं , भीतर ही भीतर उन्हें भी घुन खाये जाता है , किसी न किसी दु:ख से वे जर्ज्जरित हुए जाते हैं। इस मौके को दो कहानियाँ हमें याद आई है। हम उन्हें दृष्टान्त के तौर पर यहाँ लिखते हैं —

एक महात्मा अपने शिष्य के साथ किसी नगर मे गये। वहाँ उन्होंने देखा कि, एक साहूकार इन्द्रभवन जैसे मकान मे बैठा है, सैकडो सेवक आज्ञापालन को तैयार खडे है, जोडो गाडी द्वार पर खडी है, हाथी झूम रहे है, सोने चाँदी और हीरो पन्नों के सामने ढेर लग रहे हैं। महात्मा को देखकर सेठने अपने एक कर्मचारी को उनको भोजन कराने की आज्ञा दी। जब गुरु चेले भोजन करने बैठे, तब चेला बोला—"गुरु जी ! आप कहते थे, ससार में कोई भी सुखी नही है। देखिये, यह सेठ कैसा सुखी है ! इसे किस बात का अभाव है ? लक्ष्मी इसकी दासी हो रही है।' गुरु ने कहा—"जरा सब्र करो।

हम पता लगाकर कुछ कह सकेंगे।" महात्मा ने जब भोजन
लिया, तो सेठ से कहा—"सेठजी ! परमात्मा ने आप को
सुख दिये हैं।" सेठ ने रोकर कहा—"महाराज! मेरे समान
जगत् में कोई दुःखी नहीं है। मुझे परमात्मा ने धनैश्वर्य
कुछ दिया है, पर पुत्र एक भी नहीं। पुत्र बिना ये सुख बिना
नमक के पदार्थ की तरह अलौने और बेस्वाद हैं। मेरा दिल
रात-दिन जला करता है, कभी मुझे सुख की नींद नहीं आती।
मैं इसी सोच में जला जाता हूँ कि, पुत्र बिना इसे कौन
भोगेगा ?" सेठ की बातें सुनकर चेले ने कहा—"हाँ गुरुजी,
आपकी बात राई-रत्ती सच है। संसार में कोई भी सुखी नहीं।
कोई किसी दुःख-से-दुःखी है तो कोई किसी दुःख से।

और भी :—

किसी नगर में एक साहूकार था। उसके यहाँ धन-दौलत
की कमी न थी। उसका धन-भाण्डार कुबेर के समान अचल
था। जिसके पास अतुल धन है, उसे किस पदार्थ का अभाव
है ? वह साहूकार सब तरह से इन्द्र के समान स्वर्ग-सुख लूट
रहा था। इसी बीच में दैवयोग से उसकी स्त्री बीमार हो
गयी। हर तरह की उत्तम चिकित्सा होने पर भी उसके बचने
की आशा न रही। सेठ रोने लगा। स्त्री ने कहा—"आप क्यों
रोते हैं ? आप धनी हैं, आपके सैकड़ों विवाह हो सकते
मेरे मरते ही आपकी दूसरी शादी फौरन हो जाय।" "

मुझे है कि, मैंने जगत् में आकर कुछ भी सुख न देखा।" सेठ ने कहा—"अगर तुम मर गयी, तो मैं हरगिज़ दूसरी शादी न करूँगा।" सेठानी ने कहा—"क्यों बातें बनाते हो? मेरे चल बसते ही, आप ये सब बातें भूल जायेंगे।" सेठ ने जोश में आकर मोह से अपनी लिंगेन्द्रिय काटकर फेंक दी। दैवयोग से, सेठानी उसी समय से चङ्गी होने लगी और चन्द रोज़ में हृष्ट-पुष्ट हो गयी। शरीर सुखी होने पर उसे पुरुष की दरकार होने लगी। सेठ को निकम्मा देखकर उसने नौकर चाकरों से कुकर्म करना आरम्भ कर दिया। सेठ यह हाल देखकर दिन-रात कुढ़ने और जलने लगा। इसी बीच में एक दिन गुरु नानक भाई मरदान के साथ उस नगरी में पहुँचे। भाई मरदान ने उस सेठ का सुखैश्वर्य्य देखकर कहा—"गुरुजी! आप कहा करते हैं कि, इस जगत् में सुखी कोई भी नहीं है। कहिये इस सेठ को क्या दुःख है?" गुरु नानक ने कहा—"मरदान! यह सेठ ऊपर से सुखी दीखता है, पर भीतर से किसी-न-किसी दुःख से अवश्य दुःखी होगा। चलो, हम इससे पुछवा देते हैं।" गुरुजी ने सेठ से बातचीत की, तो सेठ ने कहा—"महाराज! सचमुच ही मुझे कोई दुःख न था, पर अब इस दुःख से जल-जलकर खाक हुआ जाता हूँ।" यह सुन गुरुजी ने कहा—"मरदान! इस गृहस्थाश्रम में कोई भी सुखी नहीं।"

संसारी लोग धनवानों को सुखी समझते हैं, पर धन अनर्थों का मूल है। धन बड़े-बड़े अनर्थों से जमा होता है और जमा

होनेपर भी दु.खो का ही कारण होता है। इसके कमाने मे कष्ट, इसके रखने में कष्ट। मतलब यह कि, इसमें सब तरह दु.ख-ही-दु.ख है। धन-लोभ से चोर मार डालते हैं। अगर मार भी नही डालते, तो धन हर ले जाते हैं, तब धनी को महा कष्ट होता है। धनी के पुत्र-पौत्र या अन्य रिश्तेदार धनी की मरणकामना करते रहते हैं। धनी को हज़ारों तरह की चिन्तायें घेरे रहती हैं। फलाँ आदमी में रकम डूब जायगी, अमुक दिसावर में घाटा होने का भय है इत्यादि चिन्ताओं में वह जला करता है।

अनेक लोग राजाओं को सुखी समझते हैं, पर राजाओं को ज़रा भी सुख नहीं। राज्य महा अनर्थों का कारण है। राजा को सदा शत्रु का भय लगा रहता है कि, कहीं गनीम चढ न आवे। चोरों का भय रहता है कि, कहीं वे राजलक्ष्मी को हर न ले जावें। अपने सगे-सम्बन्धियों का भय लगा रहता है कि, वे कहीं राज्य-लोभ से धोखे में मार न डालें। क्यों कि अनेक पुत्रों या भाइयों ने राज्य लोभ से राजा-बादशाहों को मार डाला है। दुर्योधन ने राज्य हडपने के लिये भीम को विष दिया था, पाँचों पाण्डवों को लाक्षाभवन में जीते ही जलाना चाहा था, कैकेयीने अपने पुत्र को राज्य दिलाने की गरज से रामचन्द्रजी को वनवास की आज्ञा दी थी। राज्य के लिये ही सुग्रीव ने बालि को मरवा डाला था। राज्य के लिये ही कंस ने अपनी सगी बहन देवकी के नवजात पुत्रों की हत्या करवा डाली थी। औरङ्गजेब ने अपने भाइयों को जीते जी ही मरवा डाला

मुझे है कि, मैंने जगत् में आकर कुछ भी सुख न देखा।" सेठ ने कहा—"अगर तुम मर गयी, तो मैं हरगिज़ दूसरी शादी न करूँगा।" सेठानी ने कहा—"क्यों बातें बनाते हो ? मेरे चल बसते ही, आप ये सब बातें भूल जायेंगे।" सेठ ने जोश में आकर मोह से अपनी लिंगेन्द्रिय काटकर फैंक दी। दैवयोग से, सेठानी उसी समय से चङ्गी होने लगी और चन्द रोज़ में हृष्ट-पुष्ट हो गयी। शरीर सुखी होने पर उसे पुरुष की दरकार होने लगी। सेठ को निकम्मा देखकर उसने नौकर चाकरों से कुकर्म करना आरम्भ कर दिया। सेठ यह हाल देखकर दिन-रात कुढ़ने और जलने लगा। इसी बीच में एक दिन गुरु नानक भाई मरदान के साथ उस नगरी में पहुँचे। भाई मरदान ने उस सेठ का सुखैश्वर्य्य देखकर कहा—"गुरुजी! आप कहा करते हैं कि, इस जगत् में सुखी कोई भी नहीं है। कहिये इस सेठ को क्या दुःख है ?" गुरु नानक ने कहा—"मरदान! यह सेठ ऊपर से सुखी दीखता है, पर भीतर से किसी-न-किसी दुःख से अवश्य दुःखी होगा। चलो, हम इससे पुछवा देते हैं।" गुरुजी ने सेठ से बातचीत की, तो सेठ ने कहा—"महाराज! सचमुच ही मुझे कोई दुःख न था, पर अब इस दुःख से जल-जलकर खाक हुआ जाता हूँ।" यह सुन गुरुजी ने कहा—"मरदान! इस गृहस्थाश्रम में कोई भी सुखी नहीं।"

संसारी लोग धनवानों को सुखी समझते हैं, पर धन अनर्थों का मूल है। धन बड़े-बड़े अनर्थों से जमा होता है और जमा

होनेपर भी दुःखों का ही कारण होता है। इसके कमाने में कष्ट, इसके रखने में कष्ट। मतलब यह कि, इसमें सब तरह दुःख-ही-दुःख है। धन-लोभ से चोर मार डालते हैं। अगर मार भी नहीं डालते, तो धन हर ले जाते हैं, तब धनी को महा कष्ट होता है। धनी के पुत्र-पौत्र या अन्य रिश्तेदार धनी की मरणकामना करते रहते हैं। धनी को हजारों तरह की चिन्तायें घेरे रहती हैं। फलाँ आदमी में रकम डूब जायगी, अमुक दिसावर में घाटा होने का भय है इत्यादि चिन्ताओं में वह जला करता है।

अनेक लोग राजाओं को सुखी समझते हैं, पर राजाओं को ज़रा भी सुख नहीं। राज्य महा अनर्थों का कारण है। राजा को सदा शत्रु का भय लगा रहता है कि, कहीं गनीम चढ न आवे। चोरों का भय रहता है कि, कहीं वे राजलक्ष्मी को हर न ले जावें। अपने सगे-सम्बन्धियों का भय लगा रहता है कि, वे कहीं राज्य-लोभ से धोखे में मार न डालें। क्यों कि अनेक पुत्रों या भाइयों ने राज्य लोभ से राजा-बादशाहों को मार डाला है। दुर्योधन ने राज्य हड़पने के लिये भीम को विष दिया था पाँचों पाण्डवों को लाक्षाभवन में जीते ही जलाना चाहा था, कैकेयीने अपने पुत्र को राज्य दिलाने की गरज से रामचन्द्रजी को वनवास को [illegible] राज्य के लिये ही सुग्रीव ने बालि को मरवा [illegible] [illegible] के लिये ही कंस ने अपनी सगी [illegible] [illegible] डाली थी। औरङ्गजेब ने [illegible] [illegible] करवा [illegible]

और पूज्यपाद पिता को कैद कर दिया। इससे स्पष्ट है कि, राजा को भी सुख नहीं। राजा लोग भय के मारे कभी एक पलँग पर नही सोते। मखमली पलँग होने पर भी उन्हें सुख की नीद नही आती।

जिसके अतुल धन-सम्पत्ति है, वह स्त्री के व्यभिचारिणी होने या पुत्र के अभाव अथवा पुत्र के सुपुत्र न होने से दु.खी है। जो राजराजेश्वर है, वह राज्य के सदा बने रहने की चिन्ता से दु खी है। जिस के स्त्री-पुत्र प्रभृति हैं, वह उनके मरण हो जाने या वियोग से दु'खी है। कोई जवानी के चले जाने और बुढापे के आ जाने से दु.खी है। कोई मौत का खयाल करके दु खी है। साराश यह कि, ससार मे कोई भी सुखी नहीं। इस जीवन में सुख का नाम भी नहीं।

संसारी सुख अनित्य हैं।

सासारिक सुख-भोग असार, अनित्य और नाशमान् है। ये सदा स्थिर रहने वाले नही, आज जो लक्ष्मी का लाल है, वह कल दर-दर का भिखारी देखा जाता है, जो आज जवान-पट्ठा है, मिर्जा अकडबेग की तरह अकडता हुआ चलता है, वही कल बुढापे के मारे लकडी टेक-टेककर चलता है। जिसे पहले सब लोग खूबसूरत कहते थे और मुहब्बत से पास बिठाते थे, अब उसके पास खडा होना भी नहीं चाहते। मतलब यह है कि, यौवन, जीवन, मन, धन, शरीर-छाया और प्रभुत

ये सब अनित्य और चञ्चल हैं, अत दु ख के कारण है। काया में मरण, लाभ मे हानि, जीत में हार, सुन्दरता मे असुन्दरता, भोग में रोग, सयोग मे वियोग, सुख में दु ख—ये सब दु ख के कारण है। अगर बिना मृत्यु का जीवन, बिना रञ्ज की खुशी, बिना बुढापे की जवानी, बिना दु'ख का सुख, बिना वियोग का सयोग और सदा-सर्व्वदा रहने वाला धन होता, तो मनुष्य को इस जीवन में अवश्य सुख होता।

विषय-भोगो में सुख नही है। ये नसार है, केलेके पत्ते या प्याज के छिलकों की तरह सारहीन है। फिर भी मोहवश मनुष्य विषयों में फँसा रहता है। पर एक-न-एक दिन मनुष्य को इन विषय-भोगों से अलग होना ही पडता है। अलग होने के समय विषय-भोगी को बडा दु ख होता है। इससे विषय परिणाम में दु खदायी ही है।

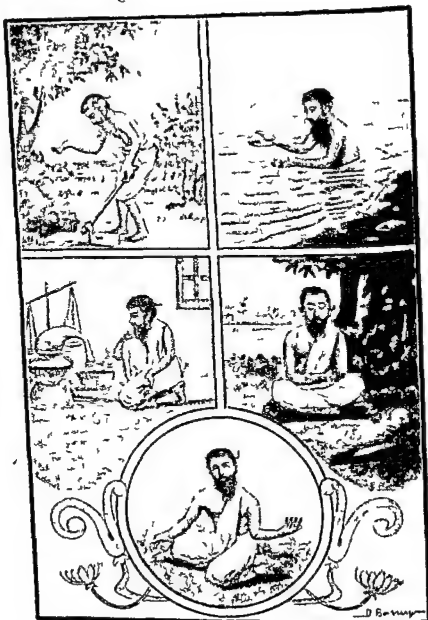
इसके सिवा, तरह-तरह के पुण्य सञ्चय करने, यज्ञ याग आदि करने अथवा दान करने से मनुष्य को स्वर्ग मिलता है। वहाँ वह अमृत पीता और अप्सराओ को भोगता है, कल्प-वृक्ष से मनवाञ्छित पदार्थ पाता है, पर पुण्य-कर्मो के नाश हो जाने या उनके फल भोग चुकने पर, वह स्वर्ग से नीचे गिरा दिया जाता है उसे फिर इसी मृत्युलोक में आना होता है। उस समय वह स्वर्ग-सुखों को याद कर करके मन-ही-मन रोता और दु खी होता है। इसीसे मुझे वे पुण्यफल भी भया-वह मालूम होते हैं। परिणाम में वे भी दु ख के ही कारण

होते है। तात्पर्य्य यह कि, संसार मिथ्या और सार-हीन है। इसके सुख-भोग अनित्य, चञ्चल और सदा न रहने वाले हैं। इसीसे दु:ख के कारण हैं। मृत्युलोक और स्वर्गलोक में कहीं भी प्राणी को सुख नहीं है।

शिक्षा—अगर मनुष्य दु:खों से दूर रहना चाहे, सदा सुख भोगना चाहे, तो उसे अनित्य और नाशमान् पदार्थों से अलग रहना चाहिये। उनमें मोह न रखना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, यौवन और स्वामित्व प्रभृति अनित्य हैं। ये आज हैं और सम्भव है कि, कल न रहें। स्त्री-पुत्र प्रभृति नातेदार हमारे सदा के सङ्गी नहीं। आज ये और हम सराय के मुसाफिरों की तरह मिल गये हैं, पर उम्मीद नहीं कि, फिर कभी मिलें। आज इनसे संयोग हुआ है, तो कल इनसे वियोग अवश्य होगा। ये तो क्या—जिस काया को हम सब से ज़ियादा चाहते हैं, मलते हैं, धोते हैं, सजाते हैं, वह भी तो एक दिन हमसे अलग हो जायगी। एक क्षण में जीव का जन्म होता है, दूसरे क्षण ही नाश हो जाता है। जो अज्ञानी ऐसे नाशमान् पदार्थों से राग करते हैं, उन्हें दु:खों के गहरे खड्डे में गिरना ही होता है। इसलिये बुद्धिमान् को लोक-परलोक की असारता और संयोग-वियोग का विचार करके अनित्य पदार्थों से प्रेम न करना चाहिये। उसे सदा नित्य, अविनाशी आत्मा या परमात्मा से प्रेम करना चाहिये। शरीर नाश हो जाता है। स्त्री-पुत्र धन आदि नाश हो जाते हैं, पर परमात्मा का कभी किसी काल में



नमकहराम दारोगा साहब दुराचारिणी असती रानी के दिये हुए अमरफल को अपनी प्रणयिनी वेश्या को दे रहे हैं।



धन के लिये मैंने अनेक उपाय किये, जमीन खोदी, समुद्र में गोते लगाये, धातुएँ फूँकीं, रात-रात भर श्मशान में मन्त्र जपे,—पर हाय! मुझे एक कानी कौडी भी न मिली।



नमकहराम दारोगा साहब रूपगर्विणी सत्ती
दिये हुए अमरफल को खाती गर्विणी वेश्या

इस घटना से भ्रसार महाराज के लिये बिल्कुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मन्त्री को सामने बुला, राज का सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पोशाक उतार कर उसे दे दी और

"भोगे रोगभय कुले च्युतिभय वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभय बले रिपुभय रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभय गुणे खलभय काये कृतान्ताद्भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वित भुवि नृणा वैराग्यमेवाभयम् ॥

"अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यातु दिवसा ।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपत ॥"

"विषयों के भोगने में रोगों का भय है, कुल में दोष होने का भय है, धन में राज का भय है, चुप रहने में दीनता का भय है, बल में शत्रुओं का भय है सौन्दर्य्य में बढ़ापे का भय है, गुणों में

पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामनियों के समूह में मेरी दृष्टि एकसी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

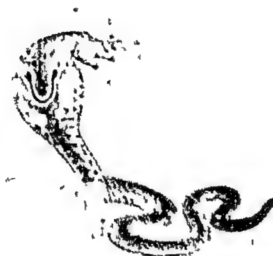
यह कहते हुए आपने सारा राज पाट धन दौलत प्रभृति एक क्षणमें त्याग कर वनका रास्ता लिया। चलने समय उन्होंने मन्त्री से औरभी कहा,—"मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रम के साथ बड़ा अन्याय किया। उस समय मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित-अनुचित का जरा भी ज्ञान नहीं रहा था। उस कुलटा ने मुझ पर जादू सा कर दिया था। मैं अब संसार के लोगों को सलाह देता हूँ कि, वे अगर सुख से जीवन बिताना चाहें, तो स्त्रियों का विश्वास न करें और जो परमपद के अभिलाषी हों, वे तो उनका नाम भी न लें। मन्त्रीवर! आप विक्रम का पता लगाना। यदि वह मिलजाय, तो उसे राजगद्दी पर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिङ्गला को जीती ही जमीन में गड़वा देते, उस दारोगा को तोप के मुँह से बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते, पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसार की असलियत को समझ गये थे, इसी से आपको संसार से घृणा हो गई। आपने उपभोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज पाट सब को तृण के समान समझ कर एक क्षण में त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नहीं हो सकता। ऐसा उनसे ही होता है, जिन पर जगदीश की दया होती है या

पूर्व्व सञ्चित पुण्यों का उदय होता है। मनुष्य से फूटे टूटे हाँडी बर्तन और गुदड़े ही नहीं छोडे जाते, कोरी इच्छाओं का भी त्याग नहीं होता, तब राजपाट और धन दौलत का छोडना तो बड़ी बात है।

महाराजा भर्तृहरि भूपालोंमें आदर्श भूपाल हो गये हैं। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य चन्द्रमा रहेंगे, जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक महाराज का प्रात स्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगोंकी जबान पर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह एक थियेटि्कल कम्पनी के तमाशे और एक पुराने पुस्तक के आधार पर लिखा है, जो हमने कोई २५ साल पहले एक पल्टन की लायब्रेरीमें अङ्गरेजी और हिन्दीमें देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमें उसका नाम ही याद है।





महाराजाधिराज भर्तृहरि की परमप्यारी रानी पिङ्गला, महाराज का दिया हुआ 'अमरफल' अपने यार दारोगा को दे रही है।

प्यारी पिङ्गला, मेरे सुखों की मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा ? इसलिये मैं इसे पिंगला को ही खिलाऊंगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य्य-प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहेगी, तो मैं उसी के साथ संसारी सुखों का आनन्द उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो, महाराजा फलको हाथ में लेकर रनवास को चल दिये।

महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही दासियों ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिङ्गला शीघ्रही तैयार हो उन्हें लेनेके लिये द्वार तक आई और उनके गले में हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा आप भी उनकी बगल में बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाजोनखरो से उनका मन अपने हाथ में करने लगी। शीघ्र में पूछा—"महाराज! आज असमय में इस दासी पर कैसे कृपा की ?" महाराज ने कहा—"प्रिये! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, उसमें ऐसा कौनसा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी चौडी तारीफ करते हैं ?

राजाने कहा—"रानी! यह फल, जिसे आप मेरे हाथ में देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मणको उसके

भी, नाश नही होता। यह जगत् मिथ्या, नाशमान्, जड और दु:खमय है, पर यह आत्मा—ब्रह्म—चेतन, नित्य और सुखमय है। इस देह रूपी देवमन्दिर में आत्मा ही देवता है। यही आत्मा ससार के सभी प्राणियो में वर्त्तमान है। इसी आत्मा का चिन्तन करो, तो सदा सच्चा सुख भोग करोगे, पर आत्म-चिन्तन करना सहज काम नही है। इसके लिये मन को वश में करना होगा, उसे विषयों से हटाना होगा, उसे वृत्तियों से अलगकर एकाग्र करना होगा। जब चित्त एकाग्र होगा, तभी सफलता हो सकेगी।

3 I do not see a good end of the deeds done in this world, and when I consider deeply even acts of benevolence which might have lost their usefulness after they have given the results, fill me with fear The objects of pleasure which have been acquired by the accomplishment of meritorious deeds and after long sustained efforts, do only give anxiety and torture to the pleasure-seeking mortals when they have to part with them in the fi ig-end

उत्खात निधिशङ्कया क्षितितल ध्माता गिरर्धातवो
निस्तीर्ण सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन सतोषिता ॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीता श्मशाने निशा
प्राप्त काणवराटकोऽपि न मया तृष्णऽधुना मुञ्चमाम् ४

धन मिलने की उम्मीद से, मैंने ज़मीन के देंदे तक खोद डाले अनेक प्रकार की पार्वतीय धातुएँ फूँक डालीं, मोतियों के लिये

प्यारी पिङ्गला, मेरे सुखों की मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा ? इसलिये मैं इसे पिंगला को ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उसकी सौन्दर्य्य प्रभा ज्यों की त्यों बनी रहेगी, तो मैं उसी के साथ संसारी सुखों का आनन्द उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो, महाराजा फलको हाथ में लेकर रनवास को चल दिये।

महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही दासियों ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिङ्गला शीघ्रही तैयार हो उन्हें लेनेके लिये द्वार तक आई और उनके गले में हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा आप भी उनकी बगल में बैठ गई और अपने हाव भाव और नाजोनखरों से उनका मन अपने हाथ में करने लगी। शिघ्र मैं पूछा—"महाराज! आज असमय में इस दासी पर कैसे कृपा की ?" महाराज ने कहा—"प्रिये! आज एक अपूर्व्व फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, उसमें ऐसा कौनसा गुण है, जिससे आप उसकी इतनी लम्बी चौड़ी तारीफ करते हैं ?

राजाने कहा—"रानी! यह फल, जिसे आप मेरे हाथ में देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मणको उसके

भी, नाश नहीं होता। यह जगत् मिथ्या, नाशमान्, जड और दुःखमय है, पर यह आत्मा—ब्रह्म—चेतन, नित्य और सुखमय है। इस देह रूपी देवमन्दिर में आत्मा ही देवता है। यही आत्मा संसार के सभी प्राणियों में वर्त्तमान है। इसी आत्मा का चिन्तन करो, तो सदा सच्चा सुख भोग करोगे, पर आत्म-चिन्तन करना सहज काम नहीं है। इसके लिये मन को वश में करना होगा, उसे विषयों से हटाना होगा, उसे वृत्तियों से अलगकर एकाग्र करना होगा। जब चित्त एकाग्र होगा, तभी सफलता हो सकेगी।

3 I do not see a good end of the deeds done in this world, and when I consider deeply even acts of benevolence which might have lost their usefulness after they have given the results, fill me with fear The objects of pleasure which have been acquired by the accomplishment of meritorious deeds and after long sustained efforts, do only give anxiety and torture to the pleasure-seeking mortals when they have to part with them in the final end

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः ॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम् ४

धन मिलने की उम्मीद से, मैंने ज़मीन के पेंदे तक खोद डाले, अनेक प्रकार की पार्वतीय धातुएँ फूँक डालीं, मोतियों के लिये

समुद्र की भी थाह ले आया, राजाओं को राज़ी रखने में भी कोई बात उठा न रखी, मन्त्रसिद्धि के लिये रात-रात भर श्मशान में एकाग्रचित्त से बैठा हुआ जप करता रहा, पर अफ़सोस की बात है, कि इतनी आफतें उठाने पर भी, एक कानी कौडी न मिली। इस लिये हे तृष्णे! अब तो तू मेरा पीछा छोड ॥४॥

यह जान-सुनकर, कि ज़मीन में धन है, मैंने ज़मीन को पेंदे तक खोद डाला, पर कुछ भी न मिला। रसायन सिद्ध करने या सोना चांदी बनाने के लिये, मैंने अनेक तरह की धातुयें फूँक डाली, पर रसायन न बनी। फिर मैंने यह जानकर, कि समुद्र रत्नों की खान है—उसमें मोतियों की इफ़रात है, मैं समुद्र में भी घुसा और उसकी थाह ले आया, मगर कुछ हाथ न आया। फिर यह सोचकर, कि राजाओं की सेवा करने से धन हाथ आता है, मैंने उनको सन्तुष्ट करने की भी भर-पूर चेष्टायें की, उन्हें सब तरह खुश किया, पर फिर भी धन हाथ न आया। शेष में, मैंने मन्त्रसिद्धि करनी चाही, इसलिये मैं रात-रात भर अकेला मरघट में मुर्दों के पास बैठकर मन्त्र जपता रहा, कि वशीकरण मन्त्र सिद्ध हो जाय और राजाओं को वश करके धन प्राप्त करूँ, पर यहाँ भी मुझे निराशा का ही सामना करना पडा। सारी चेष्टायें करने पर भी एक फूटी कौडी न मिली। इसलिये हे तृष्णा! अब मैं निराश हो गया हूँ। मुझे सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दीखता है। अब तो तू दया करके मेरा पीछा छोड दे।

इसका यही मतलब है कि, भाग्य के विरुद्ध चेष्टा करना वृथा है। जितना धन भाग्य में लिखा है, उतना तो बिना कोशिश किये, बिना किसी की खुशामद किये, बिना देश-विदेश डोले, घर बैठे ही मिल जायगा। भाग्य के लिखे से अधिक हजारों चेष्टायें करने पर भी न मिलेगा। सिकन्दर अमृत के लिये अँधेरी दुनिया में गया, पर अमृत के कुण्ड के पास पहुँच जाने पर भी, वह अमृत को चख न सका, क्योंकि उसके भाग्य में अमृत न था। मूर्ख मनुष्य भाग्य पर सन्तोष नहीं करता, धन के लिये मारा-मारा फिरता है। जब कुछ भी हाथ नहीं लगता, तो रोता और कलपता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा —

कवित्त।

जो कुछ विधाता तेरे लिख्यो ललाट-पाट,
ताही पर आपनो आप अमल करले।
सोनेको सुमेर भावे देख वार पार माँझ,
घटै बढै नहि यह निश्चय जिय धारले।
देवीदास कहै जोई होनहार सोई है है,
मन में विचार रैन दिन अनुसर ले।
वापी कूप सरिता भरे हैं सात सागर पै,
तू तो तेरे वासन-समान पानी भर ले।

शिक्षा—हे मनुष्य। यदि तू सुख-शान्ति से जीवन यापन

समुद्र की भी थाह ले आया , राजाओं को राज़ी रखने में भी कोई बात उठा न रखी , मन्त्रसिद्धि के लिये रात-रात भर श्मशान में एकाग्रचित्त से बैठा हुआ जप करता रहा , पर अफसोस की बात है, कि इतनी आफतें उठाने पर भी, एक कानी कौड़ी न मिली। इस लिये हे तृष्णे ! अब तो तू मेरा पीछा छोड़ ॥४॥

यह जान-सुनकर, कि ज़मीन में धन है, मैंने ज़मीन को पेंदे तक खोद डाला, पर कुछ भी न मिला। रसायन सिद्ध करने या सोना चाँदी बनाने के लिये, मैंने अनेक तरह की धातुयें फूँक डालीं, पर रसायन न बनी। फिर मैंने यह जानकर, कि समुद्र रत्नों की खान है—उसमें मोतियों की इफ़रात है , मैं समुद्र में भी घुसा और उसकी थाह ले आया, मगर कुछ हाथ न आया। फिर यह सोचकर, कि राजाओं की सेवा करने से धन हाथ आता है , मैंने उनके सन्तुष्ट करने की भी भरपूर चेष्टायें की, उन्हें सब तरह खुश किया, पर फिर भी धन हाथ न आया। शेष में, मैंने मन्त्रसिद्धि करनी चाही, इसलिये मैं रात-रात भर अकेला मरघट में मुर्दों के पास बैठकर मन्त्र जपता रहा, कि वशीकरण मन्त्र सिद्ध हो जाय और राजाओं को वश करके धन प्राप्त करूँ , पर यहाँ भी मुझे निराशा का ही सामना करना पड़ा। सारी चेष्टायें करने पर भी एक फूटी कौड़ी न मिली। इसलिये हे तृष्णा ! अब मैं निराश हो गया हूँ। मुझे सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दीखता है। अब तो तू दया करके मेरा पीछा छोड़ दे।

भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशंकया काकव-
त्तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥५॥

मैं अनेक दुर्गम और कठिन स्थानों में डोलता फिरा, पर कुछ भी नतीजा न निकला। मैंने, अपनी जाति और अपने कुल का अभिमान त्यागकर, पराई चाकरी भी की, पर उससे भी कुछ न मिला। शेष में, मैं कव्वे की तरह डरता हुआ और अपमान सहता हुआ पराये घरों के टुकड़े भी खाता फिरा। हे पाप कर्म कराने वाली और कुमतिदायिनी तृष्णे! क्या तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ? ॥५॥

धनके लालच में, मैं अपना देश और घर-द्वार छोड़कर ऐसे-ऐसे स्थानो में गया, जहाँ मनुष्य बड़ी कठिनाई से पहुँच सकते हैं, पर वहाँ जानेपर भी मुझे एक पाई न मिली। मैंने अपने द्विजत्व या ऊँची जाति के अभिमान को त्यागकर पराई नौकरी भी की और मालिक ने जो-जो नीच काम कराये वही किये, लेकिन उससे भी मुझे धन न मिला। शेष में, मैं मान-अपमान को छप्पर पर रखकर, बिना बुलाये ही लोगों के घर गया और कव्वे की तरह डरते-डरते खाता रहा। मुझे इन सब कामों में बड़ी ठेस लगी। मैंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये, मान खोया, लोगों के कुवचन सहे, पर फिर भी मेरी कामना सिद्ध न हुई। इसलिये तृष्णा! मैं तुझ से पूछता हूँ कि, कमबख्त! इतने कुकर्म कराकर भी तुझे सन्तोष हुआ या नहीं?

करना चाहता है, तो तृष्णा पिशाची के फन्दे से निकालकर भाग्य पर सन्तोष कर। सन्तोष के सिवा सुख-शान्ति लाभ करने का और उपाय नहीं है। यदि सन्तोष न करेगा, तो तृष्णा के मारे भटक-भटककर सारी उम्र योंही गँवा देगा, और अन्त में कुछ हाथ भी न आयेगा।

छप्पय।

खोदत डोल्यो भूमि, गड़ीहु न पाई सम्पति।
धौंकत रह्यो पखान, कनक के लोभ लगी मति॥
गयो सिन्धु के पास, तहाँ मुक्ताहु न पायो।
कौडी कर नहीं लगी, नृपनको शीश नवायो॥
साधे प्रयोग श्मशान में, भूत प्रेत वैताल साजि।
कितहूँ भयो न बाञ्छित कछू, अब तो तृष्णा मोहि ताजि॥४॥

4 I dug up the surface of the earth in search of treasure, burnt down various minerals in my hankering after alchemy, explored the ocean in search of pearls or in my greed after trade, tried my best to please the kings, and spent the whole nights in lonely cremation grounds reproducing chants with an all attentive mind, but it is a pity that I have gained not a single broken cowriealthough I did all this Do thou, O Greed, now leave me!

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला॥

मैंने नीचों की नौकरी करली। उनकी सेवा करते हुए मैंने उन दुष्टों के अवाने-तवाने, गाली-गलौज और दिल्लगी सभी कुछ बर्दाश्त की। उनके वाग्बाणों से मेरे कलेजे में छेद हो जाते थे, और हृदय रोने लगता था। उसके कारण से जो आँसू आते थे, उन्हें मैं रोक लेता था। भीतर से मेरा दिल एकदम मुर्झा गया था, पर फिर भी मैं उनके सामने हँसा करता और क्रोध को दबाकर और चित्त को स्थिर और शान्त करके उन मसखरों को मैंने हाथ भी जोड़े, पर फिर भी उनसे मुझे कुछ न मिला। हे आशा! निष्फला आशा। इतने नाच तो नचाये, अब और तेरे दिल में क्या है?

छप्पय।

सहे खलन के बैन इते, पर तिनहिं रिझाये।
नैनन को जल रोक, शून्य मन मुख मुसक्याये॥
देत नहीं कछु वित्त, तऊ कर जोर दिखाये।
कर कर चाव करोर, मोरही दौरत आये॥
सुनि आस प्यास तेरी प्रबल, तू अति अद्भुत गति रहत।
इहि भाँति नचायो मोहि अब, और कहा करिबो चहत॥६॥

6 I tolerated the jokes of evil minded persons some how or other in my efforts to please them and while trying to stop my tears, I smiled at heart with an extremely desolate heart and even clasped my hands in feigned satisfaction before these sneering persons while trying hard to

छप्पय ।

भटको देश-विदेश, तहाँ फल कछुहु न पायो ।
निज कुलको अभिमान छाड, सेवा चित लायो ॥
सहि गारी अरु सीस, हाथ झारत घर आयो ।
दूर करत हूँ दौरि, स्वान जिमि परगृह खायो ॥
इहि भाँति नचायो मोहि तैं, बहकायो दै लोभतल ।
अबहूँ न तोहि सन्तोष कहु, तृष्णा तू पापिन प्रबल ॥५॥

5 I roamed about many difficult and impassable lands but it was all fruitless I served others forsaking the reasonable pride of my tribe and family but it was of no use I even dined in other people's houses where no respect was shown to me and where I had always been in suspense like a crow Art thou not O evil natured Avarice, even now satisfied with having perpetrated so many misdeeds ?

खलोल्लापा सोढा कथमपि तदाराधनपरै-
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमतिशून्येन मनसा ॥
कृतश्चित्तस्तम्भ प्रहसितधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥६॥

मैंने दुष्टों की सेवा करते हुए उनकी तानेजनी और ठट्ठेबाजी सही, भीतर के दुःख से आये हुए आँसू रोके और उद्विग्न चित्त से उनके सामने हँसता रहा। उन हँसने वालों के सामने, चित्त को स्थिर करके, हाथ भी जोडे। हे झूठी आशा! क्या अभी और भी नाच नचायेगी? ॥६॥

नित्य हमारी आयु कम होती जा रही है। विचार कर देखने से बड़ा विस्मय होता है कि, दिन और रात कैसी तेज़ी से होते चले जाते हैं। जिनको कोई काम नहीं है अथवा जो दुखिया हैं, उन्हें तो ये बड़े भारी मालूम होते हैं, काटे नहीं कटते—एक-एक क्षण एक-एक वर्ष के बराबर बीतता है, पर जो कारोबार या नौकरी-चाकरी में लगे हुए हैं, उनका समय हवा से भी अधिक तेज़ी से उड़ा चला जाता है, किन्तु कारोबार या धन्धे में लगे रहने के कारण उन्हें मालूम नहीं होता। वे अपने कामों में भूले रहते हैं और मृत्युकाल तेजी से नजदीक आता जाता है। जिस तरह डाक गाड़ी में बैठने वाला यात्री अगर अकेला और उदासचित्त रहता है, तो उसको सफर का समय बड़ी कठिनाई से बीतता है, पर यदि उसके साथ दो-चार मित्र या स्त्री-पुत्र प्रभृति होते हैं और वे सब गाड़ी में हँसते बोलते, खाते-पीते या आनन्द करने लगते हैं, आपस में मनोरञ्जक कथा-वार्त्ता करते हैं, तो वह लोग तो आनन्द में मग्न रहते हैं, और गाड़ी अपनी पूरी तेजी से चली जाती है, उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि, कितनी राह तय हो गयी। जब सुनते हैं कि, देहली आ गयी, तब उन्हें विस्मयसा होता है, इसी तरह कारोबार में लगे हुए लोगों को मालूम नहीं होता और समय हवा से भी अधिक तेजी से उड़ा चला जाता है और अन्त में उनका अन्त करने वाला काल आ जाता है।

मनुष्य नित्य आँखों से देखता है कि, आज फलाँ मनुष्य

the indignation of my heart Wilt thou, O delusive Hope, make me dance still further ?

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥७॥

सूर्य के उदय और अस्त के साथ मनुष्यों की जिन्दगी रोज घटती जाती है। समय भागा जाता है, पर कारोबारों में मशगूल रहने के कारण, वह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगों को पैदा होते, बूढ़े होते, विपत्ति ग्रसित होते और मरते देखकर भी मन में भय नहीं होता। इससे मालूम होता है कि, मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा (शराब) के नशे में संसार मतवाला हो रहा है ॥७॥

देखते हैं, रोज ही सूर्य उदय होते हैं और अस्त होते हैं। रोज ही सवेरा होता है और रोज ही सन्ध्या होती है। सूर्य के उदयास्त के,साथ-ही-साथ मनुष्यों की आयु क्षीण होती जाती है, यानी उम्र घटती जाती है। किसी ने क्या खूब कहा है—

सुबह होती है शाम होती है ।
योंही उम्र तमाम होती है ॥

औरभी खुलासा।

रोज़ सवेरा होता है और रोज़ साँझ होती है, इस तरह



रोटीके टुकड़ोंके लिये बच्चे स्त्रीका कपड़ा खींच रहे हैं। इस अवस्थाको देखकर पुरुषके दिलमें कैसी वेदना हो रही है! संसार में स्त्री ही सब दुःखोंकी कारण है।

भय से रुका आता है अस्पष्ट भाषा या टूटे फूटे शब्दों में, गिड-गिडा कर "कुछ दीजिये" इन शब्दों को, अपने पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये, कहता ? ॥८॥

यदि किसी के घरमें ऐसी दुखिया स्त्री न हो, जिसके फटे हुए कपडों को दीनातिदीन बच्चे खींच रहे हों और जो घर के दूसरे मनुष्यों के अन्न के लिये रोने से दु खित हो, तो कौन धीर पुरुष है, जो अपना पेट भरने के लिये, याचना-भङ्ग होने के भय से, टूटे-फूटे शब्दों में गिड-गिडाकर "दीजिये" शब्द कहे ?

मतलब यह है, कि स्त्री के कारण से ही पुरुष को तरह-तरह के कष्ट उठाने और अपमान सहने पडते हैं, इस लिये स्त्री-पुत्र प्रभृति दु ख के कारण हैं। जब दरिद्रता में खाने को अन्न नहीं होता, बालक माँ के कपडे पकड-पकडकर खींचते और रोटी माँगते हैं, तब वह बेचारी एकदम से दु'खित हो जाती है। उसके मलिन चहरे को देखकर पुरुष, अपने मानापमान का खयाल छोडकर, भीख तक माँगने पर उतारू हो जाता है। उस समय, इस डरसे कि कहीं मुझे कोई भिक्षा देने से नाहीं न करदे, पुरुष का गला घुटता है, पर बेचारा लडखडाती जबान से "कुछ मुझे दीजिये" शब्द कहता ही है। यदि स्त्री न होती, तो कौन पुरुष अपने पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये ऐसा करता ?

संसार में पर से माँगने के समान मनुष्य का मान-नाश करानेवाली दूसरी बात नहीं है। माँगना और मरना दोनों समान

है। किसी-किसी का तो यह मत है कि, माँगने से मरना भला। याचना करने से त्रिलोकीनाथ भगवान् को भी छोटा होना पडा, तब औरों की कौन बात है ? इसीलिये तुलसीदासजी ने कहा है—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥

हाथ के ऊपर हाथ करो, पर हाथ के नीचे हाथ न करो। जिस दिन हाथ के नीचे हाथ करो, उस दिन मरण करो। यानी दूसरो को दो, पर दूसरों के आगे हाथ न फैलाओ। जि[स] दिन दूसरो के आगे हाथ फैलाने की नौबत आवे, उस दि[न] मरण हो जाय तो भला।

दरिद्रता में माँगने की बात कण्ठ तक आती है, फि[र] बडी-बडी तकलीफो से किसी तरह जबान तक आती है, प[र] जबान पर ताले लग जाते है, अत वहाँ से आगे नहीं निक[ल]ती। प्राणो की बाज़ी लगने पर भी, महत् पुरुषों की जबा[न] से "कुछ दो" ये शब्द नही निकलते पर स्त्री के लिये बडे बडो को भी नीचा देखना ही पडता है। अगर स्त्री न होती, [तो] महत् पुरुष अपने पापी पेट के लिये कभी किसी से याचना [न] करते, अत' स्त्री ही सब दु.खो की मूल है। इस स्त्री के लि[ये] पुरुष क्या-क्या कष्ट नहीं भोगता ? स्त्री-पुत्रों के पालन-पोष[ण] की चिन्ता में उसकी सारी आयु बीत जाती है, पर परमात्मा [के] भजन मे उसका मन नही लगता। मन तो तब लगे, जबकि

यह शुद्ध हो। उसे तो हरदम नोन-तेल लकडी और आटे दाल की चिन्ता लगी रहती है। ईश्वर में मन न लगने और शेष दिन आ जाने से, उसे फिर जन्म-मरण के झञ्झटों में फँसना होता है। अत जो लोग ससार में सुख-शान्ति से जीवन बिताना और मरने पर फिर ससार में न आना चाहें, वे स्त्री रूपी माया की कैद में न पडें। यह स्त्री-माया ही ससार-वृक्ष का बीज है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध उसके पत्ते, काम क्रोधादि उसकी डालियाँ और पुत्र-कन्या प्रभृति उसके फल हैं। तृष्णा-रूपी जल से यह ससार-वृक्ष बढता है। स्पष्ट है कि, ससार-बन्धन का कारण नारी ही है। जिसने नारी से नाता नहीं जोडा अथवा जिसने स्त्री को त्याग दिया, वह सच्चा ससारत्यागी है। उसे दु ख कहाँ? वह निश्चय ही मोक्ष पावेगा। पर जो इस पिशाची के फन्दे में फँस गया, उसे सुख कहाँ? वह न इस जन्म में सुख पा सकता है और न पर जन्म में ही। ससार-बन्धन से मुक्त होने में "कनक और कामिनी" ये दो ही बाधक हैं। कहा है —

चलूँ-चलूँ सब कोई कहै, पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय॥
एक कनक और कामिनी, ये लम्बी तरवारि।
चाले थे हरिमिलन को, बिचही लीने मारि॥
नारि नसावै तीन सुख, जेहि नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति अरु ज्ञान में, पैठ सके ना कोय॥

एक वार व्यासजी ने शुकदेवजी से शादी करने को कहा। व्यासजी ने समझाने मे घाटा न रखा, पर शुकदेवजी ने एक न मानी। उन्होंने कहा—"पिता जी। लोह और काठ की वेडियो से चाहे कभी छुटकारा हो जाय, पर स्त्री-पुत्र प्रभृति की मोहरूपी वेडियो से पुरुष का पीछा नही छूट सकता। हे पिता, गृहस्थाश्रम जेलखाना है, इसमें जरा भी सुख नही। स्त्री के लिये पुरुष को ससार में नीचे-से-नीचे काम करने पडते हैं। जिनके मुँह देखने से पाप लगता है, उनकी खुशामदें करनी पडती है, इस वास्ते मै स्त्री के वन्धन मे नही पडना चाहता।"

छप्पय

फट्यो पुरानो चीर, ताहि खेंचत अरु फारत।
छोटे छोटे वाल, दुखही दुःख पुकारत।
घरमाहीं नहिं अन्न, नारिहू निर्दय याते।
भई महा जडरूप, करत मुखसों नहिं वातें।
यह दशा देखि असरत्त चित, जीव थरथरत रुकत मुख।
अपने मुजरे या उदरहित, देह, कहै को सतपुरुष?॥८॥

8 If one had not to see the distressed face of a hous wife, wearing worn out clothes, the skirts of which are co tinually being drawn by miserable looking children and w has to feel the agony of listening to the cries of hunger st cken members of her family, who having a sense of se respect would utter, for the satisfaction of his own hung the word "Give" spoken in a faltering tone, owing to

uroat being choked by the fullness of his heart, in fear of is appeal for charity being refused.

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलित
समाना स्वर्याता, सपदि सुहृदो जीवितसमा ॥
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो धृष्ट कायस्तदपि मरणापायचकित ॥८॥

बुढ़ापे के मारे भोग भोगने की इच्छा नहीं रही, मान भी घट गया, हमारी बराबर वाले चल बसे, जो घनिष्ट मित्र रह गये हैं, वे भी निकम्मे या हम जैसे हो गये हैं। अब हम बिना लकड़ी के उठ भी नहीं सकते, आँखों में अँधेरी छा गई है। इतना सब होने पर भी, हमारी काया कैसी बेहया है, जो अपने मरने की बात सुनकर चौंक उठती है। ॥६॥

खुलासा यह है, कि हमारी जवानी चली गयी है, वह जोश-खरोश और चटक-मटक अब नहीं रही है, बुढ़ापे का दौरदौरा हो गया है, गालों में खड्डे हो गये हैं, बदन पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिर के बाल सफेद हो गये हैं, दाँतों ने जवाब दे दिया है,—यह तो हमारी दशा हो गयी है। लोगों में जो हमारा आदरमान था, अब वह भी घट रहा है। अब लोग हमें निकम्मा बूढ़ा समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हमारी उम्र के लोग हमारे देखते-देखते चल बसे। जो रह गये हैं, वे हम जैसे निकम्मे हैं। अब हम ऐसे कमज़ोर हो

गये हैं, कि बिना लकड़ी टेके चल भी नहीं सकते। आँखों से सूझता नहीं। इतने पर भी, हमारी काया मरने के नाम से काँप उठती है। जीवन के मोह की अजब हालत है॥

जगत् की विचित्र गति है। इस जीवन में ज़रा भी सुख नहीं है। मनुष्य के मित्र और नातेदार मर जाते हैं, आप निकम्मा हो जाता है, आँख-कान प्रभृति इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं, आँखों से सूझता नहीं और कानों से सुनाई नहीं देता, घर-बाहर के लोग अनादर करते हैं, बुढापे के मारे चला-फिरा नहीं जाता, खाने को भी कठिनाई से मिलता है तोभी मनुष्य मरना नहीं चाहता, बल्कि मरने की बात सुनकर चौंक उठता है। इसे मोह न कहें तो क्या कहें?

लकड़हारा और मौत।

एक वृद्ध अतीव निर्धन था। बेटे-पोते सभी मर गये थे। एकमात्र बुढिया रह गयी थी। बूढे के हाथ-पैरोंने जवाब दे दिया था। आँखों से दीखता न था। फिर भी, अपने और बूढी के पेट के लिये, वह जङ्गल से लकडी काटकर लाता और बेचकर गुजारा करता था। एक दिन उसने जीवन से निहायत दुखी होकर मौत को पुकारा। उसके पुकारते ही मौत मनुष्य-रूप मे उसके सामने आ खडी हुई। बूढे ने पूछा—"तुम कौन हो?" उसने कहा—"मै मृत्यु हूँ, तुम्हें लेने आई हूँ।" मौत का नाम सुनते ही लकडहारा चौंक उठा और कहने लगा—"मैं

आपको यह भारी उचवाने को बुलाया था।" मौत उसकी भारी उचवा कर चली गयी।

देखिये! बूढा लकडहारा हर तरह दु:खी था, उसे जीवन में जरा भी सुख न था, फिर भी वह मरना न चाहता था, बल्कि मौत को देखते ही चौंक पडा था। यही गति संसार की है।

एक दु:खित बूढ़ा सेठ।

एक वैश्य ने उम्र-भर मर-पचकर खूब धन जमा किया। बुढ़ापे में पुत्रों ने सारे धन पर कब्ज़ा कर, बूढे को पौली में एक टूटी सी खाट और फटीसी गुदडी पर डाल दिया और कुत्ता मारने के लिये हाथ में लकडी दे दी। सुबह-शाम घर का कोई आदमी बचा-खुचा बासी-कूसी उसे खानेको दे जाता। सेठ बडे दु:ख से अपनी ज़िन्दगी पार करता था। पुत्र-वधूएँ दिन-भर कहा करती थी—"यह मर नही जाते। सब को मौत आती है, पर इनको मौत नही। दिन-भर पौली में थूक-थूककर मैला करते हैं।" एक दिन एक पोता उन्हें पीट रहा था। इतने में नारदजी आ निकले। उन्होने सारा हाल देखकर कहा—"सेठजी! आप बडे दु:खी है। स्वर्ग में कुछ आदमियों की ज़रूरत है। अगर तुम चलो तो हम ले चलें।" सुनते ही सेठ ने कहा—"जारे बैरागीडा! मेरे बेटे-पोते मुझे मारते हैं चाहे गाली देते है तुझे क्या? तू क्या हमारा पच है? मैं इन्ही में सुखी

हूँ। मुझे स्वर्ग की जरूरत नही।" सेठ की बातें सुनते ही नारदजी को बडा आश्चर्य हुआ। कहने लगे—"ओह। ससार अपन ही मोह-पाश में फँसा है। मोह की मदिरा के मारे इसे होश नही। मनुष्य ने कब्र में पैर लटका रक्खे हैं, फिर भी विषयों में ही उसका मन लगा है।" किसी ने ठीक ही कहा है:—

गत तत्तारुण्य तरुणिहृदयानन्दजनक,
विशीर्णा दन्तालिर्निजगतिरहा यष्टिशरण।
जडीभूता दृष्टि. श्रवणरहित कर्णयुगल,
मनो मे निर्लज्ज तदपि विषयेभ्य स्पृहयति॥

तरुणियो के हृदय मे आनन्द पैदा करने वाली जवानी चली गई है, दन्तपंक्ति गिर गयी है, लकडी का सहारा लेकर चलता हूँ, नेत्र ज्योति सारी गयी है, दोनो कानो से सुनाई नही देता, तोभी मेरा वेहया मन विषयो को चाहता है।

छप्पय।

भयी रोगकी चाह, गयो गौरव गुमान सब।
मित्र गये सुरलोक, अकेले आप रहे अब।
उठत सु लकडी टेक, तिमिर आँखन में छायो।
शब्द सुनत नाहिं कान, वचन बोलत बहकायो।
यह दशा वृद्धतनकी तऊ, चकित होत भरिबौ सुनत।
देखो विचित्र गति जगत की, दुखहूँ को सुखसों लुनत॥६॥

9 Along with the approach of old age the power for the enjoyment of sensual pleasures has vanished and the great respect and honour paid by the people have also declined Our equals in age have already died Our surviving friends are not so better off in the world as to be of any use to us Owing to physical weakness we can only rise and that slowly with the help of a stick Our eyes has become dim with ever increasing darkness How shameless should our body be to think that notwithstanding all these disabilities it still fears to meet death ?

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रामरुत्कल्पितं
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥१०॥

विधाता ने हिंसा-रहित और विना उद्योग के मिलने वाली हवा का भोजन साँपों की जीविका बनाई, पशुओं को घास खाना और जमीन पर सोना बताया, किन्तु जो मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से भव-सागर के पार हो सकते हैं, उनकी जीविका ऐसी बनाई, कि जिसकी खोज में उनके सारे गुणों की समाप्ति हो जाय, पर वह न मिले ॥१०॥

विधाता या रचयिता ने साँपों के लिये तो हवा का भोजन बना दिया है, जिसके हासिल करने में किसी प्रकार की हिंसा भी नहीं करनी पड़ती, और वह विना किसी प्रकार की चेष्टा या उद्योग के उन्हें अपने वासस्थानों में ही मिल सकता है।

जानवरों के लिये घास चरने को और जमीन सोने को बताई इससे उनको भी अपने खाने के लिये किसी प्रकार की विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती, वे जङ्गल में उगी-उगाई घास तैयार पाते हैं और इच्छा करते ही पेट भर लेते हैं। उन्हें सोने के लिये पलँगों और गद्दे-तकियों की फिक्र नहीं करनी पड़ती जमीन पर ही जहाँ जी चाहता है पड़ रहते हैं। सर्प और पशुओं के साथ भगवान् ने पक्षपात किया, उन्हें बेफिक्री की ज़िन्दगी भोगने के उपाय बता दिये, किन्तु मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं किया। उन बेचारों को बुद्धि तो ऐसी दी, कि जिससे वे संसार-सागर से पार हो सकें अथवा दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त कर सकें, पर उन्हें जीविका ऐसी बताई, कि जिसकी खोज में उनकी सारी कोशिशें बेकार हो जायें, पर जीविका का ठिकाना न हो। यह क्या कुछ कम दुःख की बात है? यदि विधाता मनुष्यों को भी साँपों और पशुओं की सी ही जीविका बताता तो कैसा अच्छा होता? मनुष्य, जीविका की फिक्र न होने से सहज में ही अपनी बुद्धि के जोर से मोक्ष पा जाते।

उस्ताद जौक भी कुछ इसी तरह की शिकायत करते हैं,—

बनाया जौक जो इन्साँ को उसने जजवे जइफ।
तो उस जईफ से कुल काम दो जहाँ के लिए॥

ऐ जौक! ईश्वर को देखो, कि उसने मनुष्य को कितना कमजोर बनाया, पर काम उससे दोनों लोकोंके लिये। उ[illegible] इस लोक और परलोक दोनों की फिक्र लगादी।

किसी ने ठीक ही कहा है :—

घृतलवणतैलतण्डुल शाकेन्धनचिन्तयाऽनुदिनम् ।
विपुल मतेरापि पुंसो नश्यति धीर्मन्दविभवत्वात् ॥

घी, नोन, तेल, चाँवल, शाक और ईंधन की चिन्ता में बड़े-बड़े मतिमानों की उम्र भी पूरी हो जाती है, पर इस चिन्ता का ओर-छोर नहीं आता। इसी से मनुष्य को ईश्वर-भजन या परमात्मा की भक्ति-उपासना को समय नहीं मिलता। अगर मनुष्य इतनी आपदाओं के होते हुए भी परलोक बनाना चाहे, तो उसे चाहिये कि, अपनी जिन्दगी की जरूरियातों को कम करे, क्योंकि जिसकी आवश्यकतायें जितनी ही कम हैं, वह उतनाही सुखी है। इसीलिये महात्मा लोग महलों में न रहकर वृक्षों के नीचे उम्र काट देते हैं। वन में जो फल-फूल मिलते हैं, उन्हें खाकर और झरनों का शीतल जल पीकर पेट भर लेते हैं। आवश्यकताओं को कम करना ही सुख-शान्ति का सच्चा उपाय है।

छप्पय।

बिन उद्यम बिन पाप, पवन सर्पन को दीन्हीं।
तैसेही सब ठौर, घास पशुवन को कीन्हीं।
जिनकी निर्मल बुद्धि तरन भवसागर समरथ।
तिनकी दूषर वृत्ति, हरत गुण ज्ञान ग्रन्थ गथ।
...धि अवधि करी तें अति अधिक, यातें नर परघर फिरत।
...री घोंस पचत तनमन नचत, लचत रचत उरझत गिरत ॥१०॥

10 The Creator has designed the harmless and eas obtainable air to be the food of serpents The quadrupeds have been made to eat the green grass and to sleep on th flat earth But the tendency of human beings, who hav been endowed with sufficient reason to enable them to atta in a life of everlasting bliss, has been created such as to baffle all the faculties of an observer in his attempt to expl ain its working

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥११॥

हमने संसार-बन्धन के काटने के लिये, यथाविधि, ईश्वर के चरणों का ध्यान नहीं किया, हमने स्वर्ग के दरवाजे खुलवाने वा धर्म का भी सञ्चय नहीं किया और हमने स्वप्न में भी स्त्री के कठोर कुचों का आलिङ्गन नहीं किया। हम तो अपनी माँ के यौवन रूपी वन के काटने के लिये कुल्हाड़े ही हुए ॥११॥

हमने लोक-परलोक साधन के लिये, जन्म-मरण का फन्दा काटने के लिये अथवा परमपद की प्राप्ति के लिये, शास्त्रों में लिखी विधि से, परमात्मा के कमल-चरणों का ध्यान नहीं किया, उसकी पूजा-उपासना नहीं की, सारी उम्र पेट की चिन्ता में ही बिता दी। हमने पूर्वजन्म या वर्तमान जन्म के पापों के समूल नाश करने के लिये प्रायश्चित्त नहीं किये,

ीवों को अभय किया, न दानपुण्य किया, फिर हमारे लिये ग्गं का द्वार कैसे खुल सकता है? क्योंकि धर्म का सञ्चय रने से ही स्वर्ग का द्वार खुलता है। न हमने परमात्मा के दपङ्कजों का ध्यान किया, न धर्म सञ्चय किया और न स्त्री के ोनपयोधरों का स्वप्न में भी आलिङ्गन किया। मतलब यह है, न हमने ससार के मिथ्या विषय-सुख ही भोगे और न हमने ोक्ष या स्वर्ग-प्राप्ति के उपाय ही किये। "द्विविधा में दोनों ये, माया मिली न राम" अथवा "इधर के रहे न उधर के हे, खुदा ही मिला न विसाले सनम।" हमने योंही ससार में जन्म लेकर अपनी माता की जवानी और नाश की। अगर हम जैसे निकम्मे न पैदा होते, तो बेचारी की जवानी की रेट तो न होती।

छप्पय

विधि सों पूजे नाहिं, पाय प्रभु के सुखकारी।
प्रभु को धरो न ध्यान, सकल भव दुख को हारी।
खोले स्वर्ग कपाट, धर्महू करयो न ऐसो।
कामिन कुच के सग, रग भर रह्यो न तैसो।
हरि हाय २ कीन्हों कहा, पाय पदारथ नर जनम।
जननी यौवन वन दहन को, अग्नि रूप प्रगट भे हम ॥११॥

11 We did not meditate in an appropriate way upon he essence of Godhead for the termination once for all of

our ever recurring births and deaths Neither did we practise religion which is the surest means for throwing open the door leading to Paradise Nor did we embrace even in our dreams the pair of fat breasts or seductive niples of a woman Having done nothing for the present or the next world, we are only like an axe meant to hew down the wood of our mothers' youth.

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥१२॥

विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने हमारा ही भुगतान कर दिया , हमने तप को नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला , काल का खात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही खात्मा हो चला। तृष्णा का बुढ़ापा न आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आ गया ॥१२॥

हमने बहुत कुछ भोग भोगे, पर भोगों का अन्त न आया हाँ हमारा अन्त आ गया। काल या समय का अन्त न आया किन्तु हमारा अन्त आ गया—हमारी उम्र पूरी हो चली हमें जो धर्म-कार्य्य करने थे, वह हम न कर सके। हमने तप तो नहीं तपा, किन्तु ससारी तापों ने हमारे तईं तपा डाला— ससार के जञ्जालों मे फँसकर हम हो शोक-तापो से तप गये हमारा अन्त आ पहुँचा, हम निर्बल और वृद्ध हो गये , प

तृष्णा बूढी और कमजोर न हुई—हमें संसार से विरक्ति न हुई।
ऐसी ही बात उस्ताद जौक ने कही है—

दुनिया से जौक रिश्तये उल्फत को तोड दे।
जिस सर का है यह बाल उसी सर में जोड दे ॥१॥
पर जौक न छोडेगा इस पीरा जाल को।
यह पीरा जाल गर तुझे चाहे तो छोड दे ॥२॥

मतलब यह, कि लोग दुनिया को नहीं छोडते, दुनिया ही
उन्हें निकम्मा करके छोड देती है।

छप्पय।

भोग रहे भरपूर, आयु यह भुगत गई सब।
तप्यो नाहिं तप मूढ, अवस्था तपत भई अब।
काल न कितहूँ जात, वैस यह चली जात नित।
तृष्ण भई नहिं जीर्ण, वृद्ध वय भई छाँड हित।
अजहूँ अचेत चित चेतकर, देह-गेहसों नेह तज।
दुख दोष हरण मंगल करन, श्री हरिहरके चरण भज ॥१२॥

12 We did not exhaust the enjoyments of life, rather we ourselves were exhausted We did not practise penances, but it was rather undergoing a life of extreme misery It was not Time that passed, rather it was ourselves that passed away It is not Avarice that has become monotonous and weak, rather we ourselves have become so.

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशाश्च तप्तं तपः ॥
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितम् ॥१३॥

क्षमा तो हमने की, परन्तु धर्म के खयाल से नहीं की। हमने घरके सुख-चैन तो छोड़े, परन्तु सन्तोष से नहीं छोड़े। हमने सर्दी गर्मी और हवा के न सह सकने योग्य दुःख तो सहे, किन्तु हमने ये सब दुःख तप की गरज से नहीं, किन्तु दरिद्रता के कारण सहे। हम दिन-रात ध्यान में लगे तो रहे, पर धन के ध्यान मे लगे रहे—हमने प्राणायाम क्रिया द्वारा शम्भु के चरणों का ध्यान नहीं किया। हमने काम तो सब मुनियों के से किये, परन्तु उनकी तरह फल हमें नहीं मिले। ॥१३॥

हमने क्षमा तो की, परन्तु दयाधर्म-वश नहीं की, हमारी क्षमा असमर्थता के कारण से हुई, हम में सामर्थ्य नहीं थी, इसी से हम शान्त हो गये। हमने अच्छा खाना-पीना ऐश-आराम छोड़े, पर मजबूरी से छोड़े, अपनी भीतरी इच्छा से नहीं छोड़े। हमने उन्हें रोग प्रभृति के कारण या और किसी घटना के कारण त्यागा, पर सन्तोष से नहीं त्यागा। हमने गर्म-सर्द हवा के झोंके सहे, हमने सर्दी-गर्मी सही जरूर, पर तप की गरज से नहीं, किन्तु घर में पैसा न होने की वजह से। हम सोते-जागते आठ पहर चौंसठ घड़ी ध्यान तो करते रहे, पर पैसे या स्त्री-पुत्रो का अथवा ससार के और झगडो का। हमने

भोलानाथ के कमल-चरणों का ध्यान नही किया। साराश यह, हमने मुनियो की तरह विपय-सुख भी त्यागे, उनकी तरह सर्दी-गर्मी के दुस्सह कष्ट भी उठाये, उनकी तरह हम ध्यान-मग्न भी रहे—पर वे जिस तरह सामर्थ्य होते भी शान्त होते है—सन्तोषके साथ विपय-सुखों से मुँह मोड लेते है—शिव का ही ध्यान करते हैं, उस तरह हमने नहीं किया, इमी से हम उन फलों से वञ्चित—महरूम—रहे, जिनको वे लोग प्राप्त करते हैं।

जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयो को छोडते हैं, वे ही प्रशसा-भाजन होते हैं। सामर्थ्य न रहने या धातुओ के क्षीण होने पर जो लोग विषयों को छोडते हैं, वे तो मन से नही—लाचारी से छोडते हैं, इस लिये वे प्रशसा-भाजन नही हो सकते। घर-जञ्जाल मे रहकर, सर्दी-गर्मी और शोक-ताप आदि के कष्ट उठाने ही पडते हैं, फिर तप ही क्यो न किया जाय? क्योंकि घर-जञ्जालो के शोक-ताप से कोई लाभ नही, किन्तु तपसे स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। धन का ध्यान करने से सच्चा सुख नही मिल सकता। धनसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा है। इस लिये धन-ध्यान छोड-कर, आशुतोष भगवान् शिव के चरणो का ध्यान करना अच्छा, जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं और अन्त में जन्म-मरण के झगडो से छुटकारा मिलकर परमपद—मोक्ष मिल जाती है। हम बडे मूर्ख हैं, जो, कष्ट तो उठाते है, पर वे कष्ट नही उठाते, जिनसे उभय लोक साधन हो।

छप्पय ।

क्षमा क्षमा बिन कीन, बिना सन्तोष तजे सुख ।
सहे सीत तप घाम, बिना तप पाय महा दुख ।
धरयो विषैको ध्यान, चन्द्रशेखर नहिं ध्यायौ ।
तज्यौ सकल संसार, प्यार जय उन बिसरायौ ।
मुनि करत काज सोई करें, फल दीसत विपरीत अति ।
अब होत कहा, चिन्ता किये, अजहूँ कर हरचरणरति ॥१३॥

13, We forgave, but not for the sake of forgiveness We renounced the comforts of the home but not for the sake of renunciation and contentment We suffered the unbearabl rigours of cold, heat and the winds but it was through adv ersity that we did so and not for the sake of practising Tapa We meditated day and night with regulated breath on Ma mmon and not on God We practised the very deeds which the sages do, but devoid of the fruits which the latter reap of them

वलिभिर्मुखमाक्रांतं पलितैरंकितं शिरः ॥
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥१४॥

चेहरे पर झुर्रियाँ पड गई, सिरके बाल पककर सफेद हो गये, सारे अङ्ग ढीले हो गये,—पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है। ॥१४॥

बुढापा आ गया है, क्योंकि चहेरे का चमडा सुकड गया है, झुर्रियाँ पड गयी हैं, रङ्ग-रूप हवा हो गया है, हाथ पैर आदि अङ्ग शिथिल या ढीले हो गये हैं, किसी काम की सामर्थ्य नहीं

रही है। शरीर की तो यह दशा हो गयी, पर तृष्णा का न तो बुढापा आया, न बल घटा, वह तो उल्टी तेज हो रही है। हमारे शरीर का बुढापा आ गया, पर तृष्णा की तो जवानी चढ रही है। महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—

नैनन की पलही पलमें, क्षण आधि घरी घरी घटिका जु गई है।
जाम गयो जुग जाम गयो, पुनि साँझ गई तब रात भई है।
आज गई अरु काल गई, परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसे ही आयु गई, तृष्णा दिन ही दिन होत नई है।

आज सारा ससार तृष्णा के फेर में पडा हुआ है। अमीर और गरीब सभी इसके बन्धन में बँधे हैं। गरीबों की अपेक्षा धनियों को तृष्णा बहुत है। धनी हमेशा निन्नानवे के फेर में लगे रहते हैं। ९९ होने पर १०० पूरे करने की फिक्र रहती है। हजार होने पर दश हजार की, दस हजार होने पर लाख की, लाख होने पर करोड की और करोड होने पर अरब-खरब की तृष्णा लगी रहती है। इसी फेर में मनुष्य रोगी और बूढा हो जाता है, पर तृष्णा न रोगिणी होती है न बूढी। "सुभाषितावलि" में लिखा है .—

यौवन जरया ग्रस्तमारोग्य व्याधिभिर्हतम्
जीवितम् मृत्युरभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा।

जवानी बुढापे से, आरोग्यता व्याधियों से और जीवन मृत्यु से ग्रसित है, पर तृष्णा को किसी उपद्रव का डर नहीं।

पेट पसार दियो जितही तित
  तै यह भूख किती इक थापी।
और न छोर कछू नहि आवत।
  मैं बहु भाँति भली विधि मापी।
देखत देह भये सब जीरन।
  तू नित नूतन आदि अद्यापि।
सुन्दर तोहि सदा समुझावत,
  हे तृष्णा! अजहुँ नहि धापी॥

और भी.—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यत केशादन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यत,
जीर्य्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायति॥

जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते है, जीर्ण होने से दाँत जीर्ण हो जाते है, जीर्ण होने से आँख और कान भी जीर्ण हो जाते है, पर एक तृष्णा तरुण होती जाती है।

साराश यह कि, मनुष्य नितान्त निकम्मा और जर्जर शरीर होने पर भी तृष्णा को नहीं त्यागता, यही बडे आश्चर्य्य की बात है। शकराचार्य्य महाराज ने "मोहमुद्गर" में ठीक ही कहा है —

अङ्ग गलितं पलितं मुण्ड
  दन्तविहीनम् यात तुण्डम्।
करधृतकम्पितशोभितदण्डम्।
  तदपि न मुञ्चत्याशाभण्डम्॥

अग शिथिल हो गये हैं, बुढापे से सिर सन हो गया है, मुँह में दाँत नही रहे हैं, हाथ में ली लकडी की तरह शरीर काँपता है, तोभी मनुष्य आशा रूपी पात्र को नहीं त्यागता।

ससार आशा और तृष्णा के बन्धन मे बँधा है। तृष्णा न होती तो मनुष्य को स्वर्ग या मोक्ष पाने में कुछ भी दिक्कत न होती, क्योंकि तृष्णा का नाश ही तो मोक्ष या स्वर्ग है। शकराचार्यकृत "प्रश्नोत्तरमाला" में लिखा है.—

बद्धो हि को यो विषयानुरागी।
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्ति ॥
को वास्ति घोरो नरकस्स्वदेह—
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपद किमस्ति ?

बन्धन में कौन है ? विषयानुरागी।
विमुक्ति क्या है ? विषयो का त्याग।
घोर नरक क्या है ? अपना शरीर।
स्वर्ग क्या है ? तृष्णा का नाश।

और भी किसी ने कहा है—

कामाना हृदये वास ससार इति कीर्त्तित ।
तेषा सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभि ॥

हृदय में जो कामनाओं का निवास है, उसी को ससार कहते हैं और उनके सब तरह से नाश हो जाने को मोक्ष कहते हैं।

ससार में बारम्बार आना और यहाँ से जाना, यानी जन्म

लेना और मरना ये बहुत ही दुःखदायी है, अतः जिन्हें तई जन्म-मरण से मुक्त करना हो, वे कभी भूल कर भी तृष्णा राक्षसी के भुलावे में न आवें, क्योंकि इसके चक्कर मे पड़ने से इस लोक मे नीच से नीच कर्म करने होंगे और इतने पर भी तृष्णा शान्त न होगी और उधर परलोक भी न बनेगा। जो निस्पृह है, जिन्हें कामना या तृष्णा नहीं, वे मनुष्यरूप में ही देवता है। मरने पर वे स्वर्ग या मोक्ष के अधिकारी होंगे इसमें जरा भी सन्देह नही।

दोहा।

सेत चिकूर तन दशन बिन, बदन भयो ज्यौं कूप।
गात सबै शिथीलित भये, तृष्णा तरुण स्वरूप ॥१४॥

14 In old age, the face is marked with wrinkles, the head is lined with grey hair and the limbs all grow loose, but Desire alone becomes rejuvenated and predominant

येनेयाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमा ॥
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥१५॥

आकाश के जिस टुकडे को ओढकर चन्द्रमा रात बिताता है, उसी को ओढकर सूर्य्य दिन बिताता है। इन दोनों की कैसी दुर्गति होती है। ॥१५॥

आकाश के जिस हिस्से को रात के समय चन्द्रमा तय करता है, उसी को दिन में सूर्य तय करता है। सूरज और चाँद—ज्योतिष्कों मे सर्व्वश्रेष्ठ और सबसे बड़े हैं। जब ऐसे

सो को ऐसी दुर्गति होती है, कि बेचारो को रात-दिन इधर उधर और उधर से इधर चक्कर लगाने पडते है और परिणाम में कोई फल भी नहीं मिलता, तब हमारी आपकी कौन गिन्ती है ? जब ये पराधीनता की बेडियो में जकडे हुए है, न्हें जरासी भी आजादी नही है, एक दिन क्या—एक क्षण ो ये अपनी इच्छानुसार आराम नही कर सकते, तब इतर छोटे प्राणियों की क्या बात है ?

शिक्षा—बडो की दुर्दशा देखकर छोटो को अपनी विपति र रोना-कलपना नही, बल्कि सन्तोष करना चाहिये। ससार ं कोई भी सुखी नही है।

दोहा ।

इक अम्बर के टूकको, निशि में ओढत चन्द ।
दिनमें ओढत ताहि रवि, तू कत करत छछन्द ॥१५॥

15 The Sun has to move during the day through the ame parts of the heavens as the Moon does at night Being he two greatest Luminaries, mark how wonderful is their ependent career ! Can a tiny mortal hope to be more free ?

अवश्यं यातार श्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्त स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनस
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्त विदधति ॥ १६ ॥

विषयों का हम चाहे जितने दिनों तक क्यों न भोग. एक वे निश्चय ही हमसे अलग हो जायेंगे, तब मनुष्य अपनी इच्छा से ही क्यों न छोड दे? इस जुदाई में अगर वह न छोडेगा तो वे छोड देंगे। जब वे स्वय मनुष्य को छोड़ेंगे, तब उसे बडा दुख और मन क्लेश होगा। अगर मनुष्य उन्हें स्वय छोड देगा, तो उसे अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त होगी ॥१६॥

जिन विषय-सुखो को हम चिरकाल से भोगते आ रहे हैं वे सदा हमारे साथ न रहेंगे, निश्चय ही वे एक दिन हमारा साथ छोड देंगे। इससे, यदि हम ही उन्हें पहले से ही छोड दें, तो हमें महासुख और शान्ति मिलेगी। यदि हम न छोडेंगे और वे हमे छोडेंगे, तो हमें महादु:ख और मनस्ताप होगा।

जो लोग विषयो को पहले ही त्याग देते हैं, उन्हें उनके होने पर दु ख नहीं होता, किन्तु जो उन्हें नहीं छोडते, उन्हें उनके होने पर महाकष्ट होता है। जो बुद्धिमान् पहले से ही धन-दौलत स्त्री-पुत्र आदि से मोह हटा लेते हैं, उन्हें मरते समय कष्ट नही होता। जो अपना मन उनमें लगाये रहते हैं, वे मरते समय रोते हैं, पर ज़बान बन्द हो जानेसे अपने मन की बात जता नही सकते। इसलिये जो सुख से मरना चाहें, उन्हें पहले सेही विषयोंसे मुँह मोड लेना चाहिये। इस तरह जो आज नाना प्रकार के सुख भोग रहा है, यदि कल उसे वे सुख न मिलें तो वह बडा दु खी होता है, किन्तु

पयों को भोगते तो है, किन्तु उनमें आसक्ति नही रखते, हें विषय-सुखोंके न मिलने से या उनसे बिछुडने पर जरा ा कष्ट नहीं होता ।

शिक्षा—जो विषय एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड देंगे, न्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड दो ? तुम्हारे छोडने से तुम्हें नन्त सुख मिलेगा और उनके छोडने से तुम्हे घोर मनस्ताप ा मनोवेदना होगी ।

16 The objects of the sensual pleasure are sure to part om us, even if we enjoy them for a considerable length of ime A man can part with them of his own accord What is the difference in parting, if he does not follow the latter course ? They generate great agony and distress in our mind if they themselves leave us , but if we renounce them our selves they are sure to give us unbounded peace of mind and happiness

विवेकव्याकोशे विधति शमे शाम्यति तृषा
परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरा सा परिणति ॥
जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण-
स्तृषापात्र यस्या भवति मरतामप्यधिपति ॥१७॥

जब ज्ञान का उदय होता है, तब शान्ति की प्राप्ति होती है । शान्ति की प्राप्ति से तृष्णा शान्त हो जाती है, किन्तु वही तृष्णा विषयों के ससर्ग से बेहद बढती है । मतलब यह है, कि विषयों से तृष्णा कभी शान्त नहीं हो सकती । सुन्दरी के कठोर कुचों पर

दुबला, काना और लँगडा कुत्ता, जिसके कान और पूँछ नहीं हैं, जिसके जख्मों से राध वह रही है, जिसके शरीर में कीड़े किलबिला रहे हैं, जो भूखा और बूढ़ा है, जिसके गले में हाँडी का घेरा पडा है—कुतिया के पीछे पीछे दौडता है। कामदेव मरे हुए को भी मारता है ॥१८॥

जिस कुत्ते की ऐसी बुरी हालत है, वह कुत्ता भी मैथुन करने के लिये कुतिया के पीछे-पीछे दौडता है, तब मोटे-ताजे मावा-मलाई और मिष्टान्न खाने वाले अपनी कामवासना को कैसे रोक सकते हैं? इसी से बचने के लिये, ज्ञानी लोग अपनी देह को एकदम गला देते हैं, तरह-तरह के व्रत और उपवास करते हैं, धूनी तपते हैं और शीत-घाम सहते हैं। कामदेव बडा बलवान् है। जो उसके क़ाबू मे नहीं आते, वे सब से बलवान् और सच्चे योद्धा हैं। वे भीष्म और अर्जुन हैं।

18 The lean, blind and lame dog, without either ears or tail with blood oozing out of its wounds, hundreds and thousands of worms sticking to his body, hungry and old, with the upper portion of a broken earthen vessel hanging round his neck, is pursuing the bitch How cruel is Cupid to shoot his arrows at those who are already dead

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भू परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥१९॥



मरणासन्न कुत्ते को कुतिया के पीछे दौड़ते हुए देखकर कहना पड़ता है, कि ... है।

वह मनुष्य जो भीख माँगकर दिन में एक समय ही नीरस अलौना अन्न खाता है, धरती पर सो रहता है, जिसका शरीर ही उसका कुटुम्बी है, जो सौ थेगलियों की गुदड़ी ओढ़ता है, आश्चर्य है कि, ऐसे मनुष्य को भी विषय नहीं छोड़ते ॥१६॥

जो दिन-भर में एक बार अलौना—फीका अन्न खाते हैं और वह भी माँग-ताँग कर, जिनके पास सोने के लिये पलँग और गद्दे-तकिये नहीं, बेचारे पेड़ोंके नीचे या खुले मैदान में घास-पात पर सो रहते हैं, जिनके नाते-रिश्तेदार कोई नहीं, उनका अपना शरीर ही उनका नातेदार है, जिनके पास पहनने को कपड़े नहीं, बेचारे ऐसी गुदड़ी ओढ़ते हैं, जिसमें सैकड़ों चीथड़े लटकते हैं—ऐसे लोगों का भी विषय पीछा नहीं छोड़ते, तब धनियों का पीछा तो वे कैसे छोड़ने लगे, जहाँ उन्हें सब तरह के ऐशोआराम मिलते हैं। कहा है '—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कज सुललित दृष्ट्वैव मोहगता ।
शाल्यन्न सघृत पयोदधियुत ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

विश्वामित्र और पराशर प्रभृति ऋषि भी, जो हवा, जल और पत्ते खाते थे, स्त्री का कमल-मुख देखकर मोहित हो गये, फिर शालि, दही और घी मिला भोजन जो खाते हैं, उनकी इन्द्रियाँ यदि उनके वश में हो जायें, तो विन्ध्याचल पर्वत भी

समुद्र में तैरने लगे। मतलब यह है कि, पत्तों और जल पर गुज़र करने वाले ऋषि भी जब स्त्रियों पर मोहित होगये तब घी दूध खानेवालों की क्या बात है? कामदेव का वश करना बड़ा कठिन है। पराशर ऋषि ने दिन की रात कर दी और नदी को रेत में परिणत कर दिया, पर वे भी कामको वश में न कर सके। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े देवता भी काम को वशमें न कर सके। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश तकको काम ने जीत लिया। आत्मपुराण में लिखा है :—

कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरिः
कामेन विजितः शम्भुः, शक्रः कामेन निर्जितः॥

कामदेव ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र को जीत लिया।

पद्मपुराण में लिखा है,—शान्तनु नामक ऋषि की स्त्री का नाम अमोघा था। वह परमा सुन्दरी और पतिव्रता थी। एक दिन ब्रह्माजी ऋषि से मिलने गये। ऋषि उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। उस पतिव्रता ने ब्रह्माजी को आसन बिछा कर बिठाया। ब्रह्माजी उसका रूप देखकर मुग्ध हो गये। उनका वीर्य निकल गया, अतः वे लज्जित हो उठ गये। इतने में ऋषि आ गये। उन्होंने वीर्य पड़ा देख स्त्रीसे पूछा—"यह क्या?" उसने कहा—"स्वामिन्! ब्रह्माजी आये थे।" सुनकर ऋषि ने कहा—"स्त्री का दर्शन ही ऐसा है कि, जिससे देवता भी धैर्य त्याग देते हैं।"

एक वार महादेवजी समाधिस्थ थे। वहीं वन में मनुष्यों की सुन्दरी और युवती स्त्रियाँ क्रीडा कर रही थीं। शिवजी का मन चल गया। उन्होंने अपने तपोबल से उन्हें आकाश में ले जाकर उनसे भोग किया। अन्त में पार्वतीजी ने स्त्रियों को नीचे गिरा दिया और शिवजी को समाधि में लगाया।

विष्णु भगवान् ने जलन्धर नामक राक्षस की वृन्दा नामक पतिव्रता स्त्री से छल कर भोग किया। उसने उन्हें शाप दिया।

इन्द्रने गौतम ऋषिकी स्त्री अहिल्या से छलसे भोग किया। और इतने में ऋषि आ गये। उन्होंने इन्द्र को देख शाप दिया। इन्द्र के शरीर में भग-ही-भग हो गयी।

एक बूढा तपस्वी किसी मन्दिर में अकेला रहता था। वह पूरा जितेन्द्रिय था। दैवात् एक युवती उस मन्दिर के सामने से निकली। तपस्वी मुग्ध हो गया और उसके पीछे हो लिया जब वह अपने घर पहुँची, तब ऋषि भी द्वार पर जाकर उससे प्रार्थना करने लगा। उसने द्वार बन्द करना चाहा और ऋषि ने सिर घडा कर घुसना चाहा। उसने जोर से द्वार बन्द करने की चेष्टा की। इससे ऋषि का सिर कट गया और वह मर गया। ऐसे-ऐसे बूढे और अभ्यासी जितेन्द्रिय पुरुष जब स्त्रियों को देखते ही पागल हो जाते हैं, तब औरों का क्या कहना?



consist of an old and dirty sheet with hundreds of hanging from it. But what a pity that the objects of pl sure do not desert even such a man !

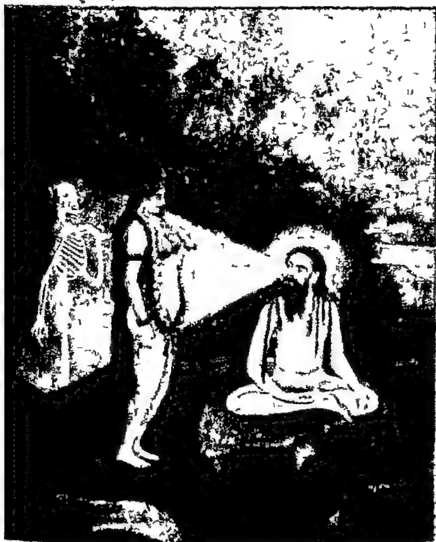
स्तनौ मासग्रन्थी कनककलशावित्युपामतौ
मुख श्लेष्मागार तदपि च शशाकेन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्न कारेवरकरस्पर्धि जघन
महो निन्ध रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्

स्त्रियों के स्तन मास के लौंदे हैं, पर कवियों ने उन्हें कलशों की उपमा दी है। स्त्रियों का मुँह कफका घर है, पर उसे चन्द्रमा के समान बताते हैं और उनकी जाँघों को पेशाव प्रभृति बहते रहते हैं, श्रेष्ठ हाथी की सूँड के समान बताते हैं। स्त्रियों का रूप घृणायोग्य है, पर कवियों ने उसकी तारीफ की है। ॥२०॥

स्त्री नरककुण्ड है।



स्त्रियो की छातियाँ, जिनपर विषयो मरे मिटते है, जिनकी कवियो ने बडी-बडी प्रशंसाये की है, जिन्हें वे सोने के कलश अथवा अनार और नारङ्गियो के समान बताते है—वास्तव में मास की पोटली है। उनके मुख को वे चन्द्रमा के समान बताते है, पर वास्तव मे वे काफ के आगार है। जिन जाँघों को वे गजवर की सूँड के समान बताते है, वास्तव में वे मू



महापुरुष ज्ञान-दृष्टिसे कामिनी की असलियत को देख रहे हैं। कामी लोग भी स्त्रियों की असलियत को बगौर देखें और उनसे घृणा करें। वास्तवमें, स्त्री में कुछ भी नहीं है। मांस-चर्म हीन स्त्री भयकर ककाल है। (पृ० ५८)

र सफेदे के टपकने से सूगली रहती हैं। स्त्रियो का शरीर वैसा निन्दायोग्य है, उसमे प्रशंसा की कोई बात नही, पर ज्ञानी और मूर्ख विषयी उन पर मरे मिटते है। यह उनकी री भूल है।

महात्मा सुन्दर दासजी कहते है—

(१)

कामिनी को तन, मानु कहिये सघन वन।
वहाँ कोउ जाय, सो तौ भूले ही परत है॥
कुञ्जर है गात, कटि केहरी को भय जामें।
वेनी काली नागिनीऊ, फनिकुँ धरत है॥
कुच है पहार जहाँ, काम चोर बसे तहाँ।
सन्धि के कटाच्छ बाण, प्राण कूँ हरत है॥
सुन्दर कहत, एक और डर जामें अति।
राचसी बदन, खाउँ-खाउँ ही करतु है॥१॥

(२)

कामिनी को अङ्ग अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार है॥
हाड मास मज्जा मेद, चामसुँ लपेटि राखे।
ठौर-ठौर रकत के, भरेहू भण्डार है॥
मूत्रहु पुरीष आँत, एकमेक मिलि रही।
और ही उदर माँहि, विविध विकार है॥

सुन्दर चाहत, नारी नखशिख निन्दा रूप ।
ताहि जो सराहे, सो तो बडोइ गँवार है ॥२॥

(२)

(राग सोरठ)

अनाडी मन ! नारी नरक का मूल ।
रङ्ग रूप पर भया लुभाना,
क्यों भूल गया हरि नाम दिवाना ।
इस धन यौवन का नाहि ठिकाना,
दो दिन में हो जाय धूल ॥१॥
कञ्चन भरे दो कलश बतावे,
ताहि पकड आनन्द मनावे ।
यह तो चमडे की थैली है मूरख,
जिन पै रह्यो तू भूल ॥२॥
जा मुख को तू चन्दा कर मानै,
थूक राल वामें लिपटानै ।
धिक धिक धिक तेरे या मुख पै,
भिष्टा में रह्यो तू भूल ॥३॥
कैसा भारी धोका खाया,
तन पर कामिन के ललचाया ।
कहैं कबीर आँख से देखा,
यह तो माटी का स्थूल ॥४॥

(४)

उदर में नरक अध द्वारन में नरक,
कुचन में नरक नरक भरी छाती है।
कण्ठ में नरक गाल चिबुक नरक बिम्ब,
मुख में नरक जीभ लालहु चुचाती है।
नाक में नरक आँख कान में नरक बहे,
हाथ पाँउ नखशिख नरक दिखाती है।
सुन्दर कहत नारी नरक को कुण्ड यह,
नरक में जाइ परे सो नरक पाती है॥

स्त्री में रूप नहीं।



स्त्रियों के जिस शरीर की कामियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, तत्त्वविद् वेदान्तियों ने उसकी पेट-भर निन्दा की है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। असल में नारी उतनी सुन्दरी नहीं, जितनी कि कवियों ने लिखी है। गुम्बद पर कलई है। सचमुच ही नारी नरक का कूप है, इसके भीतर मल-मूत्र थूक और खखार भरे हैं। पर लोग ऊपर की चमक-दमक पर मरे मिटते हैं, असलियत पर ध्यान नहीं देते। ज्ञानियों को जो नरक-कुण्ड मालूम होता है, अज्ञानियों को वही परमशोभा की खान मालूम होता है। शान्तिशतक में कहा है —

ममाङ्गिप्यत्युच्चैः पिगितघनपिण्ड स्तनधिया।
मुखं लालापूर्णं पिबति चषकं सासवमिति॥
अमेध्यक्लेटार्द्रे पथि च रमते स्पर्शरसिको।
महामोहान्धाना किमपि रमणीयं न भवति॥

स्त्री सब तरह गन्दी है, पर स्पर्श के रसिया गन्दे रास्ते ही रमते हैं। मोह से अन्धों के लिये कौनसी चीज रम नही होती ?

स्त्री में प्रीति नहीं।



अव्वल तो स्त्री में प्रीति है नही, और यदि है भी, तो व अपने मतलब की प्रीति है, यानी अपने सुखके लिये स्त्री पति को चाहती है, पति के सुख के लिये प्रेम नही करती। अग यह मान लें कि, स्त्री पति के सुख के लिये प्रेम करती है, त उसे रोगी, ऋणी, नपुसक और निर्धन पति से भी प्रेम कर चाहिये पर यह बात तो ससार में देखी नही जाती। आ पुराण मे लिखा है :—

१ दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वत् क्रमिदूषितम्॥
ब्रह्मादिभ्यो विवाहेभ्य प्राप्ता नारी पतिव्रता।
भर्तुर्दरिद्रस्य मृतिं वाञ्छति क्षुधयार्दिता॥

जिस तरह कीड़ों से दूषित मुर्दे को कोई छूना नहीं
ता, उसी तरह काम से आतुर होने पर भी स्त्री अपने
द्री पति को छूना नहीं चाहती।

धर्म-शास्त्र के अनुसार विवाही हुई पतिव्रता स्त्री भी यदि
ो हो, तो दरिद्री पति की मृत्यु की कामना करती है।

याज्ञवल्क्यजी मैत्रयी से कहते हैं —

न वारे पत्यु कामाय पति प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय पति प्रियो भवति॥

अपने मतलब के लिये स्त्री को पति प्यारा होता है। पति
लिये स्त्री को पति प्यारा नहीं होता।

जो लोग यह समझते हैं कि, स्त्री हमको प्यार करती है,
ह बड़ी गलती पर हैं। जब तक मनुष्य निरोग रहता है,
उसमें बल-वीर्य रहता है, उसके पास धन-सम्पद् रहती है,
ह स्त्री की इच्छाओं और फरमायशों को पूरा करता है, तभी
क कदाचित् स्त्री पुरुष को चाहती है। अनेक स्त्रियाँ तो
पने रूपवान्, बलवान्, धनवान् और कोकादि सर्व कलाकुशल
ति को भी त्याग देती है, इसीलिये शास्त्रों में लिखा है कि,
ी का विश्वास न करना चाहिये। कहीं-कहीं तो यहाँ तक
खा है कि, गोद में बैठी स्त्री का भी विश्वास नहीं करना
ाहिये। किसी ही पुण्यात्मा को ऐसी स्त्री मिलती है जो
से दिल से चाहती हो। स्त्री का स्वभाव है कि, वह देखती

किसी को है, बात किसी से करती है और चाहती किसी को है।

स्त्री की प्रीति-परीक्षा।

एक सेठ का पुत्र, सत्संग के लिये, नित्य, किसी महात्मा के पास जाया करता था। माँ बाप को उसका महात्मा के पास जाना पसन्द न था। उन्हें भय था कि, हमारा पुत्र वैरागियों की संगति में कहीं वैरागी न हो जाय, इसलिये उन्होंने शीघ्र ही उसकी शादी कर दी। घर में बहू आ गयी। फिर भी लडके का महात्मा के पास जाना कम न हुआ। तब सेठ सेठानी ने बहू से कहा कि, तू इसकी ऐसी सेवा कर, जो यह महात्मा के पास जाना छोड दे। बहू ने अपनी सेवा-टहल और नाज़-नखरों से पति को वशमें कर लिया। लडके का मन महात्मा की संगति से हटने लगा। पहले वह रोज़ जाता था, अब दूसरे-तीसरे दिन जाने लगा। एक दिन स्त्री ने कहा—"आप अक्सर रात को चले जाते हैं, मैं अकेली पडी रहती हूँ। रात में स्त्री का अकेला रहना अच्छा नहीं, इसके सिवा, रात को मुझे डर भी लगता है। यह बात सुनकर, लडके ने महात्मा के पास जाना कतई छोड दिया।

एक दिन महात्मा कहीं जा रहे थे। राह में वही लडका उन्हें मिल गया। उन्होंने उससे न आने की वजह पूछी। लड़के

—"महाराज! मेरी स्त्री बड़ी ही पतिव्रता है। वह मुझे तरह सुखी रखती है। मेरे बिना वह क्षण-भर भी अकेली रह सकती। मेरे लिये वह प्राण देती है। उसकी सच्ची देखकर मैं उसके वश में हो गया हूँ और इसी से आपकी में नहीं आ सकता।"

महात्माने कहा—"भैया! सब अपने मतलब से प्रीति करते तुम्हारी स्त्री भी अपने सुख के लिये तुमसे प्रीति करती तुम्हारे सुख के लिये नहीं। अगर विश्वास न हो, तो आज़श कर लो।" लड़का इस बात पर राजी हो गया। महात्मा उसे श्वास रोकने की विधि समझा दी और कहा कि, "एक तुम अपनी स्त्री से कहना कि, आज हम खीर-पूरी येंगे। जब वह खीरपूरी बनाने लगी, तब तुम श्वास रोककर वे पड़ जाना। जब वह समझेगी कि तुम मर गये, तब ारी बातकी सचाई की परीक्षा हो जायगी।"

एक दिन लड़के ने घर पहुँचतेही स्त्री से कहा—"आज हमारा खीर-पूरी खाने पर है।" स्त्रीने कहा—"स्वामिन्! अभीी बनाती हूँ।" यह कह वह खीर-पूरी बनाने लगी। उधर ड़का साँस चढाकर पड़ गया और मुर्दा हो गया। थोड़ी देर द जब खीर-पूरी बन गयी, स्त्रीने आवाज़ दी,—"आइये खाना लीजिये।" जब वह न आया, तो स्त्री स्वयम् आयी। देखा लड़का मरा पड़ा है। कहीं साँस नहीं है। स्त्री ने विचार या, यह तो मर गया। अगर मैं अभी रोना-पीटना आरम्भ

करती हूँ, तो न जाने कब तक भूखी मरूँगी, और
बिगड़ जायगी। इसलिये पहले खालूँ और जो बचे उसे
पर रख दूँ। स्त्री ने अपने विचारानुसार पहले खूब खी
खाई, और शेष रख दी। इसके बाद रोना और छाती-माथा
कूटना शुरू किया। उसका रोना सुन घर के लोग इकट्ठे
गये और पूछा, "यह कैसे मर गया?" स्त्री ने कहा—"पे
दर्द बताते थे, शायद उसीसे मरे हैं।" लोगों ने कहा—"अब
करना व्यर्थ है। इसे शीघ्र श्मशान पर ले चलो।" वे लोग
उठाने लगे, लेकिन उसके पैर दो खभों में फँस जाने से
निकले। तब लोगोंने कहा कि, इन खभों को काटकर
निकालने चाहिये। यह सुनते ही स्त्री ने कहा—"ऐसा
करो, खभे कट जायेंगे, तो फिर कौन बनवा देगा? दूसरा
थभ न कटाकर, इसके पैर ही काट डालो, क्योंकि पाँव आ
जलाये ही जायेंगे।" लोगों ने कहा "ठीक है।" ज्योंही उ
पैर काटने को कुल्हाड़ा उठाया कि, लड़का उठ बैठा
बोला—"मेरा दर्द मिट गया।" यह देख लोग अपने
ठिकाने चले गये। लड़का महात्मा के पास गया और क
लगा—"महात्मन्! आपका कहना राई-रत्ती सच है।
मुझे जरा भी शक नहीं। स्त्री अपने ही लिये पति को प
करती है। सब की प्रीति झूठी है। अब मैं गृहस्थाश्रम में
रहूँगा। बस, उसी दिनसे उसने अपनी स्त्री को त्यागकर वैर
ले लिया।

स्त्री आफतों की जड है।



स्त्री अनेक आपदाओं की मूल है। अनेक रूपवती स्त्रियों
ारण उनके पतियों के प्राण नष्ट हुए है। नूरजहाँ के कारण
अफ़गन की जान मारी गई। स्त्री के पीछे सुन्द-उपसन्द
ास में लडकर मर गये। स्त्री के पीछे राजा नहुष को स्वर्ग
गरना पडा। स्त्री के कारण वालि मारा गया और रावण
सर्वनाश हुआ एव शिशुपाल का सिर काटा गया। स्त्री
ीछे ही भारत को गारत करने वाला महाभारत हुआ।
साँप से भी भयङ्कर है। साँप के काटने से मनुष्य मरता है,
स्त्री की रूप-चिन्तना-मात्र से ही मनुष्य मर जाता है।
खाने से मनुष्य एक बार ही मरता है, पर स्त्री-विष के
न्ध से मनुष्य को बारबार जन्म लेना और मरना पडता है,
कि मरते समय पुरुष का मन अपनी स्त्री में जरूर जाता
मरण-समय जिसकी वासना रहती है, वह उसे अवश्य
ाता है। कहा है —

वासना यत्र यस्य स्यात्तत स्वप्नेषु पश्यति।
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम्॥

जिसमें जिसकी वासना रहती है, वह उसे स्वप्न में दीखता
स्वप्न की तरह ही मरण को समझो। मरणकाल में जिसकी

शंकराचार्य्यकृत प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है:—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा ?
मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽति धीरश्च समोऽस्ति कोवा ?
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥

संसार में सबसे बड़ा शूरवीर कौन है ? जो काम-बाण से पीड़ित नहीं है। प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है जिसे स्त्री के कटाक्षों से मोह नहीं होता।

महात्मा तुलसीदासजी को स्त्री से विरक्ति।



एक बार महात्मा तुलसीदासजी की स्त्री अपने पीहर चली गई। महात्माजी को आधी रात के समय स्त्री-प्रसंग की इच्छा हुई। आप की ससुराल और आप के गाँव के बीच में नदी पड़ती थी। आप फौरन ही घर छोड़ ससुराल को चल दिये। भयंकर रात में प्रबल वेग से बहती हुई नदी को पार कर आप सुसराल पहुँच गये। लेकिन जब घर के द्वार पर पहुँचे तो पोली का द्वार बन्द पाया। अब आप मकान में चढ़ने की तरकीब सोचने लगे। इतने में आपको एक रस्सी सी नज़र आई, आप उसे पकड़ कर चढ़ गये और अपनी स्त्री के



गोस्वामि तुलसीदासजी नदी पार कर ससुराल पहुँचे, द्वार बन्द पाकर सर्प को रस्सी समझ उसे पकड़ ऊपर चढ़ गये। जब स्त्री के सामने पहुँचे—स्त्री कहने लगी —"आप का जितना प्रेम मुझ में है, उतना उस जगदीश में हो, तो आपका भला हो जाय।

पृ० ७४

जा पहुँचे। स्त्री आप को देखते ही चौकन्नी सी हो गयी। पने कहा—"प्यारी! मैं तेरे लिये इस समय महा कष्ट भोग र आया हूँ। मेरी अभिलाषा पूर्ण कर।"

स्त्री आप को देखते ही पलँग से नीचे बैठ गई और बोली "हे मेरे पतिदेव! देखिये तो रात कैसी भयावनी हो रही । बादलों की गडगडाहट और बिजली की कडक से मनुष्य ा हृदय कांप उठता है। उधर नदी चढ रही है। आपने पने शरीर की परवा न कर मुझे दर्शन दिये, इसलिये मैं आप ो अनुग्रहीत हूँ। परन्तु स्वामिन्! यह तो बताइये, आप कान में आये कैसे, क्योंकि द्वार बन्द है?" आपने कहा— एक रस्सी लटक रही थी, उसी के सहारे मैं चढ आया।" स्त्री ने ाकर देखा, तो वह रस्सी नहीं, वरन् एक लम्बा-चौडा काल सर्प था। देखते ही स्त्री के सिर मे चक्कर आगया। उसके मुँह से इतनाही निकला—"स्वामिन्! जितना प्रेम आप का मुझ में है, यदि इतना ही हरि मे होता, तो आप का निश्चय ही बडा उपकार होता।

"जितना प्रेम हराम से, उतना हरि से होय।
चला जाय बैकुण्ठ को, पला न पकडे कोय।"

कहते हैं, तुलसीदासजी तत्क्षण उसे गुरु कह कर वन को चले गये।

पुरुष जिस तरह दिन-रात स्त्री की सेवा करता है। उसे

हर तरह प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है। उसको पालन के लिये तैयार रहता है। आप नाना प्रकार के सहता, जने-जने की खुशामद करता, नर्म-गर्म सहता, पर स्त्री के लिये तो कुछ न कुछ लेकर ही घरमें घुसता है, रात दिन बाहर-भीतर उसी का ध्यान रखता और उसके लिये अपने प्राणों तक की परवा नहीं करता। इसके एवज़ में स्त्री से उसे क्या मिलता है? भग या पेशाब का पात्र। दिन-रात चिन्ता और अशान्ति। यहाँ नरक और वहाँ नरक। अगर पुरुष इतनी ही या इससे कुछ कम भक्ति भी परमात्मा की करे, तो निश्चय ही उसका उपकार हो सकता है। इस जन्म में उसे सुख-शान्ति मिले और देह छोडने पर स्वर्ग या परमपद मिले। शङ्कराचार्यजी ने कहा है —

> काम क्रोध लोभ मोहं त्यक्त्वात्मानं पश्य हि कोऽहम्।
> आत्मज्ञानविहीना मूढा ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः॥

काम, क्रोध, लोभ और मोह को छोडकर आत्मा में देखो कि मैं कौन हूँ। जो आत्मज्ञानी नहीं है, जो अपने स्वरूप या आत्मा के सम्बन्ध में नहीं जानते, वे मूर्ख नरकों में पडे हुए पकते हैं।

जहाँ स्त्री होगी, वहाँ काम, क्रोध, लोभ और मोह अवश्य होंगे, और जहाँ ये होंगे, वहाँ भगवान् नहीं होंगे। मतलब यह है कि, जब मनुष्य के हृदय में काम, क्रोध आदिक नहीं रहते, तब उसका हृदय शुद्ध रहता है। शुद्ध हृदय में ही आत्मा का

यन होता है। जिस तरह साफ आइने में मुँह स्पष्ट दीखता स्थिर और निर्मल जल में सूर्य-बिम्ब साफ दीखता है, उसी रह शुद्ध, स्थिर और निर्मल मनमें परमात्मा साफ दीखता है।

शिक्षा—जो परमात्मा के दर्शन करना चाहे, जो सदा ख भोगना चाहे, जो भव-बन्धन से पीछा छुड़ाना चाहे, उन्हें ामिनी और काञ्चन में आसक्ति न रखनी चाहिये। जो इन मन लगाये रहते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—भगवान् नसे सदा दूर रहते हैं।

छप्पय।

कुच आमिष की गाठ, कनकके कलश कहत छवि।
मुखहु कफ को धाम, कहत शशी के समान कवि।
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुर्गन्ध ठौर सब।
ताकौ चपकबेळ कहत, रस रेल ठेल दब।
यह नारि निहारी निन्दतन बहँके विषयी बावरे।
याकौ बढाय, वाकौ विरद, बोले बहुत उतावरे ॥२०॥

20 The breasts of a woman which are nothing but lum- of flesh, are likened by poets to a pair of vessel made of old Her mouth which is only a depository of saliva is like ed to the moon Her thighs although wet with falling ops of urine are likened to the trunk of an elephant Oh ow contemptible is the person of a woman which is so ser lely flattered by the poets!

अाजानन्माहात्म्य पततु शलभो दीपदहने
स मीनोप्यज्ञानाद्वडिशयुतमश्नातु पिशितम्॥
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिला-
न्नमुञ्चाम कामानहह गहनो मोहमहिमा॥२१॥

अज्ञानवश, पतङ्ग दीपक की लौ पर गिरकर अपने तईं भस्म कर लेता है, क्योंकि वह उसके परिणाम को नहीं जानता, इसी तरह मछली भी काँटे के मास पर मुँह चलाकर अपने प्राण खोता है, क्योंकि वह उससे अपने प्राण-नाश की बात नहीं जानती। परन्तु हम लोग तो अच्छी तरह जान-बूझकर भी विपद्-मूलक विषयोंकी अभिलाषा नहीं त्यागते। मोह की महिमा कैसी विस्मयकर है! ॥२१॥

पतङ्ग दीपक के रूप पर मरता है, उसके प्रेम में रंगा रहता है, इसलिये उसको आलिङ्गन करने के लिये उस पर झपटकर गिरता है और अपना नाश कराता है। पतङ्ग को ज्ञान नही है, कि इस पर गिरने से मेरी मौत हो जायगी। इसी तरह मछली मछुए के लगाये हुए काँटे के मास पर मुँह लपकाती है और कण्ठ में काँटा लगने से मर जाती है, क्योंकि वह नहीं जानती, कि यह मेरी मृत्यु का सामान है। पतङ्ग और मछली तो अज्ञानवश अपनी जान खोते है, पर आश्चर्य तो यह है कि, मनुष्य—जिसे भगवान् ने समझ दी है, जो जानता है कि, विषयो की कामना आफत की जड है, विषयों में सुख

ही, घोर विपद् है, विषय विष से भी अधिक दु खदायी है,—
षयो की इच्छा करता है। इससे कहना पडता है कि,
ह की माया बडी कठिन है। महात्मा कबीर दास कहते
—

शकर हूँ ते सबल है, माया या ससार।
अपने बल छूटे नही, छुडावे सिरजनहार॥

21 The moth may burn itself by falling over the flame a lamp, because it is ignorant of the result of its action he fish may swallow the bait hung by a fisherman, bec e it is similarly ignorant How wonderful should the rce of attachment be, that we, being thoroughly conver nt with the result of action, do not care to renounce e network of desires which brings distress and misery in e end !

विसमलमशनाय स्वादु पानाय तोय
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च ।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तु नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

खाने के लिये फलों की इफ़रात है, पीने के लिये मीठा जल , पहनने के लिये वृक्षों की छाल हैं, फिर हम धनमद से मतवाले र्खों की बातें क्यों सहें ? ॥२२॥

जबकि भगवान् ने हमारे लिये खाने को फल-ही-फल दा कर दिये है, पीने को मीठा शीतल जल जगह-जगह भर देया है, पहनने के लिये दरख्तों की छाल पैदा कर दी है

फिर क्या ज़रूरत, जो हमें धन से मतवाले लोगों के कठोर वचन सहे ?

मनुष्य को सन्तोष नहीं, उसे तृष्णा नहीं छोड़ती, इसी वह विषयों के भोगने की लालसा से धनियो की खुशा करता है, उनकी टेढ़ी-सूधी सुनता है, अपनी प्रतिष्ठा खोता निरादर और अपमान सहता है। अगर वह सन्तोष कर ले, प उसे ऐसे दुष्टों और धन-मद से मतवाले शैतानों की खुशाम क्यों करनी पड़े ? अपनी मानहानि क्यों करानी पड़े ? परमा इन शैतानो से बचावे। एक तो नातजरुबेकार और तंगदि लोग वैसे ही शैतान होते हैं, पर जब उन पर दौलत का न चढ़ जाता है, तब उनकी शैतानी का क्या ठिकाना ? उस्ता ज़ौक़ कहते हैं और खूब कहते हैं—

> *नशा दौलत का बद अतवार को, जिस आन चढ़ा।*
> *सर पै शैतान के, एक और भी शैतान चढ़ा॥*

शिक्षा—जिसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, वह कि की खुशामद क्यों करेगा ? वह अपना मान क्यों खोयेग निस्पृह के लिये तो जगत् तिनके के समान है। इसलिये, चाहो तो इच्छाओं को त्यागो।

अगर आप आशा, तृष्णा और इच्छा को न त्यागें धनियों के पीछे-पीछे फिरोगे, तो आपको सिवा मानहानि बे-इज्जती के कुछ भी न मिलेगा, पर यदि आप कुछ भी इ

ओगे, किसी के भी पास न फटकोगे तो दुनिया आपको
मद करेगी, आपकी पूजा-प्रतिष्ठा व रेगी और लक्ष्मी
की चेरी हो कर आपके क़दमों में पडो रहेगी। किसीने
ही कहा है —

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की, तो बे करार आनेको है॥

दोहा।

भूमि शयन वल्कल वसन, फल भोजन जल पान।
धनमद माते नरन को, कौन सहत अहमान॥२२॥

2 While there is plenty of fruit to eat, delicious water drink, the surface of the earth to sleep upon and the of trees to wear, we should not care to bear the taunts il minded persons whose senses have all been taken oner by newly got wealth

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा।
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते।
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥२३॥

कोई तो ऐसे बडे दिलवाले लोग हुए, जिन्होंने प्राचीनकाल में
जगत् की रचना की ; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने इस जगत् को
नी भुजाओं पर धारण किया , कुछ ऐसे हुए जिन्होंने समग्र

पृथ्वी जीती और फिर तुच्छ समझकर दूसरो को दान कर और कुछ ऐसे हैं जो चौदह भुवन का पालन करते हैं। जो थोड़े से गाँवों के मालिक होकर, अभिमान के ज्वर से हो जाते हैं, उनके सम्बन्ध में हम क्या कहें ? ॥२३॥

इस जगत् मे ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने जगत् की रच कर डाली, पर उन्हें ज़रा भी अभिमान न हुआ। कुछ ऐ लोग भी हुए, जिन्होंने इसे अपनी भुजाओ पर रक्खा, पर अभि मान न किया। कुछ ऐसे हुए, जिन्होंने सारी दुनियाँ को जी लिया और इसे तुच्छ समझ कर दान भी कर दिया, पर उ अभिमान न हुआ। कोई ऐसे हैं, जो संसार का पालन क है और इस पर आधिपत्य रखते है, पर इन्हें ज़रा भी घम नही। फिर वे लोग जो चन्द गाँवो के मालिक बन जाते घमण्ड के मारे क्यों ऐंठने लगते है ?

सज्जन लोग धनैश्वर्य और प्रभुता पाकर कभी अहङ्क नही करते, ओछे या नीच ही थोडीसी विषय-सम्पत्ति पा अभिमान किया करते है। नीति-रत्न में लिखा है:—

> दिव्य चूतरस पीत्वा, न गर्व याति कोकिलः।
> पीत्वा कर्दमपानीय भेको मकमकायते॥
> अगाधजलसञ्चारी न गर्व याति रोहितः
> अङ्गुष्टोदकमात्रेण सफरी फरफरायते॥

उत्तम रसाल रस को पीकर कोकिल गर्व नही क

तु कीचड मिला पानी पीकर ही मैंडक टरटराया करता

अगाध जल में रहने वाली रोहित मछली गर्व नहीं करती,
तु अँगूठे जितने जल में सफरी मछली खुशी से नाचती
ती है।

बस छोटे और बडे, पूरे और ओछे लोगो में यही अन्तर
जो जितना छोटा है, वह उतनाही घमण्डी और उछल कर
ने वाला है और जो जितनाही बडा और पूरा है, वह उत-
ही गंभीर और निरभिमानी है। नदी नाले थोड़े से जल से
रा उठते हैं, किन्तु सागर जिसमें अनन्त जल भरा है, गभीर
ता है।

अभिमान या अहंकार महा अनर्थो का मूल है। यह
प की निशानी है। अहकारी से परमात्मा दूर रहता है।
मसे परमात्मा दूर रहता है, उसके दु खो का अन्त नही,
। मनुष्यो। अभिमान को त्यागो। जो आज टुकडो का
ताज है, वह कल राजगद्दी का स्वामी दिखाई देता है और
ज जिसके सिरपर राजमुकुट है, सभव है कि, कल वह गली-
गी मारा-मारा फिरे। ससार की यही गति है, इसलिये
भमान वृथा है। परमात्मा ने एक से एक बढ कर बना
या है। कहा है —

एक-एक से एक-एक को बढकर बना दिया।
दारा किसी किसी को सिकन्दर बना दिया॥

आप को किस बात का गर्व है ? यह राज्य दौलत क्या सदा आपके कुल में रहे गे या आपके साथ जो रावण लंकेश्वर था, जिसने यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और देवताओं तक को अपने अधीन कर लिया था, आज वह कहाँ है ? क्या उसका धन-वैभव उसके साथ गया ? जिस राम ने समुद्र का पुल बाँध कर, वानर-सेना से रावण का नाश किया, वही राम आज कहाँ है ? जिस वालि ने रावण जैसे त्रिलोक-विजयी को अपने पुत्र के पालने से बाँध रखा था, आज वह वालि कहाँ है ? जिस सहस्त्रबाहु ने रावण के सिर पर चिराग रख कर जलाया था, वह सहस्त्रबाहु ही आज कहाँ है ? चारो दिशाओं को अपने भुजबल से जीतने वाले भीमार्ज्जुन आज कहाँ हैं ? हरिश्चन्द्र, कर्ण और बलि से दानी आज कहाँ हैं ? इस पृथ्वी पर अनेक एक से एक बली राजा और शूरवीर हो गये, पर यह पृथ्वी किसी के साथ न गई। क्या आप की धन-दौलत ज़मीन्दारी या राजलक्ष्मी अटल और स्थिर है ? यह क्या आप के साथ जायगी ? हरगिज़ नहीं। आप जिस तरह खाली हाथ आये थे, उसी तरह खाली हाथ जायेंगे।

अभिमानियों का नशा उतारने के लिये उस्ताद जौक ने भी खूब कहा है :—

दिखा न जोशो खरोश इतना, जोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर चढ़ कर॥

हे मनुष्य ! ज़ोर में आकर इतना जोश-खरोश न दिखा, इस दुनिया में बहुत से दरिया चढ-चढ कर उतर गये,—कितने ही बाग लगे और सूख गये।

महात्मा कबीरदास कहते हैं—

धरती करते एक पग, करते समन्दर फाल।
हाथो परवत तोलते, ते भी खाये काल॥
हाथो परवत फाडते, समुन्दर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, कहा कोई गर्व कराय॥

छप्पय।

भये जगत में धन्य, धीर जिन जगत रच्यो है।
काहू धारी शीश, अजा वह नाहिं लच्यो है॥
काहू दीनो दान, जीत काहू बस कीनो।
भुवन चतुर्दश भोग कियो, काहू जस लीनो॥
इमिअधिक एक सों एकभे, तुम हो तिनमें तुच्छार्पित।
दश बीस नगर के नृपति ह्वै, यह मदको ज्वर तोहि कित २३

23 There were many large hearted people in the past who helped in the early creation of the world There were others who maintained it by the force of their arms and still others who won the whole earth and then gave it away to the needy valuing it no better than a straw There ar some even now in this world who enjoy the overlordship of the fourteen region . What should we say of the fera

of vanity contracted by persons who won only a few villa ges ?

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥२४॥

अगर तू राजा है, तो हम भी गुरु की सेवा से सीखी विद्या के अभिमान से बडे हैं। अगर तू अपने धन और वैभव लिये प्रसिद्ध है, तो कवियों ने हमारी विद्या की कीर्त्ति चारों ओर फैला रक्खी है। हे मानभञ्जन करने वाले, तुझमें और हममें ज़ियादा फ़र्क़ नहीं है। अगर तू हमारी ओर नहीं देखता, तो हमें भी तेरी परवा नहीं है ॥२४॥

अगर तुझे अपने बल और धन का अभिमान है, तो हमें भी अपनी विद्या का अभिमान है। तुझमें और हममें कोई बडा भेद नहीं है। यदि तुझे हमारी ज़रूरत नहीं है, तो हमें भी तेरी जरूरत नहीं है, क्योंकि हमें तुझसे कुछ लेना नहीं।

छप्पय ।

तुम पृथ्वीपति भूप भरे, अभिमान विराजत ।
हम पाई गुरु गेह बुद्धि, बल ताके गाजत ।
तुम धनसों विख्यात, सुकवि गावत कुछ पावत ।
हम यशसों विख्यात, रहत नित शौस पढावत ।

तुम हमहिं बीच अन्तर बड़ौ, देखो सोच विचारचित ।
एते पर जो मुख फेरहो, तौ हमको एकान्तहित ॥२४॥

24 If thou art a king, we too are great in our pride of knowledge learnt by serving our teacher If thou art famous thy power and riches, the poets have proclaimed the fame of our knowledge far and wide Thus O thou who dost not honour anybody, there is not much difference between both If thou dost not care to look towards us, we too are absolutely without any desire to court thy attention

अभुक्ताया यस्या क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमान क्षितिभुजाम् ।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडा. प्रत्युत मुदम् ॥२५॥

सैकड़ों हजारों राजा इस पृथ्वी को अपनी-अपनी कहकर चले गये, पर यह किसी की भी न हुई, तब राजा लोग इसके स्वामी होने का घमण्ड क्यों करते हैं? दु ख की बात है, कि छोटे-छोटे राजा छोटे-से-छोटे टुकड़े के मालिक होकर अभिमान के मारे फूले नहीं समाते! जिस बात से दु ख होना चाहिये, मूर्ख उससे उल्टे खुश होते हैं ॥२५॥

इस पृथ्वी पर रावण, सहस्रबाहु प्रभृति एक-से-एक बढ़कर राजा हो गये, जिन्होंने त्रिलोकी अपनी अङ्गुली पर नचा डाली। वह कहते थे, कि हमारे बराबर जगत् मे दूसरा कोई नहीं है। यह पृथ्वी सदा हमारे ही पास रहेगी, पर वे सब एक दिन इसे छोड़कर चल बसे, यह उनकी न हुई, वे इसे सदा न भोग सके।

of vanity contracted by persons who won only a few villa ges ?

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः॥२४॥

अगर तू राजा है, तो हम भी गुरु की सेवा से सीखी हुई विद्या के अभिमान से बढे हैं। अगर तू अपने धन और वैभव के लिये प्रसिद्ध है, तो कवियों ने हमारी विद्या की कीर्त्ति चारों ओर फैला रक्खी है। हे मानभञ्जन करने वाले, तुझमें और हममें जियादा फर्क नहीं है। अगर तू हमारी ओर नहीं देखता, तो हमें भी तेरी परवा नहीं है ॥२४॥

अगर तुझे अपने बल और धन का अभिमान है, तो हमें भी अपनी विद्या का अभिमान है। तुझमें और हममें कोई बडा भेद नहीं है। यदि तुझे हमारी ज़रूरत नहीं है, तो हमें भी तेरी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमें तुझसे कुछ लेना नहीं।

छप्पय।

तुम पृथ्वीपति भूम भरे, अभिमान विराजत।
हम पाई गुरु गेह बुद्धि, मल ताके गाजत।
तुम धनसों विख्यात, सुकवि गावत कछु पावत।
हम यशसों विख्यात, रहत नित धौंस पढावत।

तुम हमहिं बीच अन्तर बड़ो, देखो सोच विचारचित ।
एते पर जो मुख फेरहो, तौ हमकों एकान्तहित ॥२४॥

24 If thou art a king, we too are great in our pride of knowledge learnt by serving our teacher If thou art famous for thy power and riches, the poets have proclaimed the fame of our knowledge far and wide Thus O thou ! who dost not honour anybody, there is not much difference between us both If thou dost not care to look towards us, we too are absolutely without any desire to court thy attention

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम् ।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडा प्रत्युत मुदम् ॥२५॥

सैकड़ों हजारों राजा इस पृथ्वी को अपनी-अपनी कहकर चले गये, पर यह किसी की भी न हुई, तब राजा लोग इसके स्वामी होने का घमण्ड क्यों करते हैं? दुःख की बात है, कि छोटे-छोटे राजा छोटे-से-छोटे टुकड़े के मालिक होकर अभिमान के मारे फूले नहीं समाते। जिस बात से दुःख होना चाहिये, मूर्ख उससे उल्टे खुश होते हैं ॥२५॥

इस पृथ्वी पर रावण, सहस्रबाहु प्रभृति एक-से-एक बढ़कर राजा हो गये, जिन्होंने त्रिलोकी अपनी अङ्गुली पर नचा डाली। वह कहते थे, कि हमारे बराबर जगत् में दूसरा कोई नहीं है। यह पृथ्वी सदा हमारे ही पास रहेगी, पर वे सब एक दिन इसे छोड़कर चल बसे, यह उनकी न हुई, वे इसे सदा न भोग सके।

तब आजकल के छोटे-छोटे राजा, जो अपने तईं ५ ...पति
कर अभिमान के नशे में चूर रहते हैं, इसके लिये लड़ते हैं, ...
खराबी करते हैं, क्या यह उनकी अज्ञानता नहीं है? उनकी ...
छोटी सी प्रभुता—मनिकाई सदा-सर्वदा न रहेगी, यह बिज...
कीसी चमक और बादल कीसी छाया है। इस पर घमण्ड कर...
बड़ी भूल की बात है। महात्मा कबीर कहते हैं :—

चहुँदिशि पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकी-खिरकी पाहरु, गज बँधा दरबार॥
चहुँदिशि तो योद्धा खड़े, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखता, काल ले गया मार॥
आस पास योद्धा खड़े, सबै बजावें गाल।
मञ्झ महल ते ले चला, ऐसा परबल काल॥

यह दुनिया नापायेदार है, मनुष्य-शरीर का कोई ठिका...
नहीं, फिर भी मनुष्य के अभिमान की सीमा नहीं। थोड़ी...
विषय-सम्पत्ति पर वह इतना इतरा उठता है, कि ईश्वर को...
माल नहीं समझता। उस्ताद ज़ौक़ ने ठीक ही कहा है—

मौत ने कर दिया लाचार, वगर्ना इन्साँ।
है वह खुदबीं, कि खुदा का भी न कायल होता॥

मनुष्य के घमण्ड का कुछ ठिकाना है—किसी को कुछ ...
समझता। मौत ने इसे लाचार कर रक्खा है, नहीं तो ...
ईश्वर को भी कुछ न समझता।

शिक्षा—अगर अपना भला चाहते हो तो अभिमान को त्यागो, यह बड़ा भारी शत्रु है। जिन्होंने इसकी संगति की, उनका नाश ही हुआ। अभिमान से ही लङ्काधिपति रावण का नाश हुआ, जिसने त्रिलोकी को अपने अधीन कर रक्खा था, जो देवताओं से सेवा और हवा और पानी से टहल कराता था। अभिमान से ही मध्याह्न के मार्त्तण्ड की भाँति तपते हुए दिल्ली के मुगल बादशाह औरङ्गजेब की सल्तनत की जड़ हिल गई, मुगलिया खान्दान से बादशाहत विदा हो हो गई। अभिमान ने ही जर्मन कैसर को राव से रङ्क बना दिया, जिसने छोटे से देश का राजा होकर भी, सारी पृथ्वी को चार साल तक अपनी उँगली पर नचाया। भाइयो, इन दृष्टान्तों को ध्यान में रखकर, अपने प्रबल शत्रु अभिमान का नाश करो।

छप्पय।

छिनहूँ छाँडी नाहिं, भोग भुगती यह भूपनि।
कुलटासी यह भूमि, लाभ मानत महीप मनि।
ताहू के इक अंग के सु, अगहि को पावत।
रातत हैं करि कष्ट, दिवस निशि चहुँ दिशिधावत।
अपनी ओरकी होत यह, यातें पचि पचि रचि रहे।
पछितैबौ तजि जग विषयसों, जड़ उल्टे मुख मानि रहे॥२५

25 Why should kings feel so much pride in the ownership of the earth, which has successively been owned by hundreds of kings without the break of even a second It is a

pity that petty kings who possess even a very small port of it, foolishly find pleasure in the possession of their estate while really they ought to grieve over it as their power is not going to endure for ever

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणु
रङ्गीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते ।
तद्दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्योऽपि ये॥२४॥

अव्वल तो यह पृथ्वी स्वयं ही बड़ी नहीं है। यह मिट्टी का एक लौंदा है, जो चारों ओर से पानी से घिरा हुआ है। दूसरे सैकड़ों हज़ारों राजाओं ने आपस में अनेक लड़ाइयाँ लड़ लड़कर इसके भागों पर अपना-अपना कब्ज़ा कर रखा है। ऐसे क्षुद्र और सकीर्ण हृदय-राजाओं को जो दानी समझते हैं और उनके मुँह की ओर ताकते हैं कि, वे कुछ देंगे, ऐसे नीचे लोगों को धिक्कार है। ऐसे तुच्छ और दरिद्रियों से धन पाने की आशा करना व्यर्थ है॥२४॥

अव्वल तो पृथ्वी कोई चीज़ ही नहीं है। फिर, यह ज़रासा मिट्टी का लौंदा है, चारों ओर से सीमा-बद्ध है, चारों ओर इसके समुद्र है। फिर इस क्षुद्र पृथ्वी को भी अनेक राजाओं ने आपस में युद्ध कर-करके अपने-अपने अधिकार में कर रखा है। ज़रासी चीज़ के हज़ारों टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ों के मालिकों को जो लोग बड़े और दानी समझते हैं और उनसे कुछ पाने की आशा करते हैं, उनको बारम्बार धिक्कार है। क्योंकि उन नाम के भूपतियों के पास रक्खा ही क्या है? वे स्वयं

ऽ है। जब वे स्वय दरिद्र और मुहताज हैं, तब वे किसकी
ा पूरी कर सकते है ? इसलिये ऐसे क्षुद्रो का मुँह ताकना
ों का काम है। मुँह उसका ताकना चाहिये, जो किसी
क हो। मनुष्य को जो माँगना हो, सर्वशक्तिमान् भगवान्
ांगना चाहिये, वही सब की इच्छा पूरी कर सकता है।
धनियों की खुशामद में समय गँवाना, वृथा जन्म खोना
वे आप दीन है। उनकी इच्छायें क्या पूरी हो गई है ?
र-गरीब सभी जरूरतें रखते है। इस लिये दोनो ही दीन
अमीरों की जरूरतें गरीबो से जियादा हैं, इस लिये वे
तिदीन है। ऐसे दीनो से भी जो माँगते है, वे बड़े ही
द्धि है। अगर माँगना ही है तो बादशाहों के बादशाह से
ो। महात्मा कबीरदास कहते है—

कबिरा जग की कहा कहूँ, जो भल बूडे दास।
पारब्रह्म पति छाँडि के, करै मनुष्य की आस॥
रामहि थोरा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, माया के आधीन॥
राम धनी सिर पर खड़ा, कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छांडे पास॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अन्त तिहुँकाल।
पलक एक में परगटे, पल में करे निहाल॥
जाको गाँठी राम है, ताके है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढी सबैं, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

कबीरदास कहते हैं कि, मैं जगत् के विषय में क्या लोग बुरी तरह डूब रहे हैं, जो परमब्रह्म परमात्मा को कर क्षुद्र मनुष्यों की आशा करते हैं।

लोग राम को तो कम समझते हैं और दुनियाँ के प दीनता करते हैं, माया के वश होकर जीवों को राजा कहते है

हे दास ! राम जैसा मालिक तेरे सिर पर खड़ा है, तु क्या अभाव है ? उसकी कृपा से ऋद्धि-सिद्धि तेरी सेवा क और मुक्ति तेरे पीछे फिरेगी।

अगर सेवक दुःखी रहता है तो परमात्मा भी तीनों क में दुःखी रहता है। वह दास को कष्ट में देख कर क्षण भ प्रकट होता और उसे निहाल कर देता है।

जिसकी गाँठ में राम है, उसके पास सब सिद्धियाँ हैं। उ आगे अष्ट सिद्धि और नौ निधि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है —

गरल सुधा रिपु करै मिताई, गोपद सिन्धु अनल सितलाई
गरुअ सुमेरु रेणु सम ताही, राम कृपा करि चितवहि जाहि

भगवान् जिसकी ओर कृपा से देखते हैं, उसके लिये वि अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समन्दर में चरण डूबें उतना जल हो जाता है, आग शीतल हो जाती भारी सुमेरु पर्वत रेणु के समान हो जाता है।

बहुत से मूर्ख इन धनमत्तों से यहाँ तक कह बैठते

गुर! हम बडे सङ्कट में है, हमारी नाव मँझधार में है, उसे
लगाइये।" यह बडी भद्दी भूल की बात है। नाव का पार
ाना मनुष्य के हाथ नहीं, डूबती हुई नाव को वह सर्व-
क्तिमान् ही पार लगा सकता है, अत बुद्धिमान् लोग उसी
भरोसे रहते है, वह तुच्छ मनुष्यो के ऐहसान सिर पर
हीं लेते।

उस्ताद जौक़ ने क्या खूब कहा है .—

अहसाने नख़ुदा के, उठाये मेरी वला।
किश्ती ख़ुदा पै छोड दूँ, लंगर को तोड दूँ॥

माँझी के अहसान मेरी वला उठाये, मैं तो अपनी नाव को
श्वर का नाम लेकर छोड दूँगा और उसका लङ्गर तोड दूँगा।

छप्पय।

इक मृतिकाको पिण्ड, रहत जलमाँहि निरन्तर।
सोऊ सब ही नाहिं, तनकसौ ताहू में डर।
करत हजारन अग, भूप तब भोग करत वित।
मिटत आपनी प्यास, दान को होते कहा चित।
ऐसे दरिद्र दुखसों भरे, तिनहू सों जो चहत धन।
धिक्कार जन्म वा अधम को, सदा सर्वदा लीन मन॥२६॥

26 In the first place this earth, which is surrounded on sides by a line of water, is not large enough itself Sec dly it is divided and owned by multitudes of kings after

fighting hundreds of battles These, small and narrow m ded kings are waited upon by needy whose mined are al ys in suspense whether they will be given something or Fie on the mean persons who hope to get a little from such givers who are so small and poor in heart them selves

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धय.।
नृप सद्मनि नाम के वयं कुचभारानमिता न योषित.॥२

न तो हम नट या बाजीगर हैं, न हम नचैये-गवैये हैं, न हमें चुगलखोरी आती है, न हमें दूसरो की बर्बादी की बन्दिशें बाँधनी आती हैं, न हम स्तनभारावतनं स्त्रियाँ ही हैं, फिर हमारी पूछ राजाओ के यहाँ क्यों होने लगी ? ।।२७।।

राजाओं के दरबारों मे नटो, बाज़ीगरो, नाचने-गाने वाले तथा पराये नाश की तदबीरें करने वालो, चुगलखोरी करने वालो, इधर की उधर लगाने वालों अथवा ऐसी सुन्दरियों की पूछ होती है, जो रूपवती है और जिन की कमर उनके स्तनों के भार से लची जाती है—हममें इनमें से एक भी बात नहीं फिर हमारा प्रवेश राजसभा में कैसे हो सकता है ? वहाँ तो उन्हीं की पूछ है—उन्ही का आदर है—जो उनकी विषय-वासनाएँ पूरी करते है ।

दोहा ।

नट भट विट गायन नहीं, नहिं वादिन के माँहि ।
कौन भाँति भूपति मिलन, तरुणी भी हम नाहिं ॥२७॥

7 We are neither jugglers nor dancers nor musicians, ire our minds wellversed in scheming other people's fall are not even women walking low witn the burden of breasts Then what sould be our business in the pala of kings who welcome only such persons as are ready to them in gratifying their desires ?

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवता क्लेश हतये।
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम्।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुज शास्त्रविमुखा
नहो कष्ट सापि प्रतिदिनमऽधोध प्रविशति ॥२८॥

पहले समयों में विद्या केवल उन लोगों के लिये थी, जो सिक क्लेशों से छुटकारा पाकर चित्त की शान्ति चाहते थे। के बाद वह विषय-सुख चाहने वालों के काम की हुई। अब राजा लोग शास्त्रों को सुनना ही नहीं चाहते, वे उससे परा मुख हो गये हैं, इस लिये वह दिन-ब-दिन रसातल को चली ती है। यह बड़े ही दुःख की बात है ॥२८॥

पहले ज़माने में जो विद्या शान्तिकामी लोगों के अशान्त तों को शान्त करने, उनकी मनोवेदनाओं को दूर करने, नकी शोक-ताप की आग में जलने से बचाने के काम आती , होते-होते वह विद्या विषय-सुख भोगने का ज़रिया हो ई। लोग भाँति-भाँति की विद्यायें सीखकर राजाओं और नियों को खुश करते और उनसे धन पाकर स्वयं विषय-सुख गते थे। यहाँ तक तो खैर थी, किन्तु अब राजा लोग ऐसे

हो गये हैं कि, वह विद्या और विद्वानों की ओर नजर उठा कर भी नहीं देखते, पण्डितों से धर्मशास्त्र नहीं सुनते, इस लिये अब कोई विद्या नहीं पढता। कदर न होने से विद्या अब अधोगति को प्राप्त होती जाती है। क्या यह दुःख का विषय नहीं है ?

दोहा।

विद्या दुखनाशक हती, फेरि विषय सुख दानि।
जात रसातल को चली, देखि नृपन्ह मतिहीन ॥१८॥

21 Formerly learning was only meant for the pacification of the mental troubles of those who longed for peace of mined alone Later on, it became an instrument for pleasure-seeking person to gain the objects of their pleasure Now a-days the king having become unmindful of listening to the holy books which were expounded to them by learned men it is painful to think that the same learning is daily sinking down and down ioto oblivion

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविषये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥२१॥

प्राचीन काल में ऐसे पुरुष हुए हैं, जिनकी खोपडियों की माला बनाकर स्वयं शिव ने शृङ्गार के लिये अपने गले में पहनी। अब ऐसे लोग हैं, जो अपनी जीविका निर्वाह के लिये सलाम करते

ालों से ही प्रतिष्ठा पाकर, अभिमान के ज्वर (मद) से गरम हो
ते हैं ॥२६॥

दोहा ।

ऐसेहू जग में भये, मुण्डमाल शिव कीन ।
धनलोभी नर नवत लखि, तुमको मद ज्वर दीन ॥२९॥

29 There have been even such great men before, that heir skulls were made into a wreath and worn round his eck for the sake of adornment by the great Shiva Himself What should we think of the boundless vanity of people ho become so proud of their position now-a-days even if hey are greeted respectfully by a few persons desirous of onducting their living somehow or other?

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं न ।
सेवन्ते त्वा धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा
मय्यप्यास्था न चेतत्त्वयि मम सुतरामेषराजन्गतोऽस्मि ॥३०॥

यदि तुम धनके स्वामी हो, तो हम वाणीके स्वामी हैं। यदि म युद्ध करनेमें वीर हो, तो हम अपने प्रतिपक्षियों से शास्त्रार्थ रके उनका मद ज्वर तोडने में कुशल हैं। यदि तुम्हारी वा धन कामी करते हैं, तो हमारी सेवा अज्ञान-अन्धकार का श चाहनेवाले, शास्त्र सुनने के लिए करते हैं। यदि तुम्हें हमारी रज नहीं है, तो हमें भी तुम्हारी गरज नहीं है। लो, हम चलते ॥ ३० ॥

छप्पय ।

तुम अवनी के ईश, ईश हमहूँ वाणी के ।
तुम हो रण में धीर, बीर गाढे अति जीके ।
त्योंही विद्यावाद करत, हमहूँ नहिं हारे ।
प्रतिपक्ष के मान मारे, अपने विस्तारे ।
सब लोभी नर सेवत तुम्हें, हमको शिव श्रोता भले ।
तुमको न हमारी चाह, तो हमहूँ ह्याँसे उठ चले ॥३०॥

30 O king, if thou art the lord of the wealth, we too are the lord of speech If thou art brave in fight, our pl... ck too is unanswerable in breaking down the vanity of our adversary in literary discussions If thou art served by m... hankering after wealth, we too are waited upon by people who are desirous of listening to our learned discourses for the sake of dispelling the ignorance from their mind. If thou dost not care for us, we too cherish no regard for thee Look, we are off ?

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्ध समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मन ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत ॥३१॥

जब मैं बहुत थोडा सा जानता था, तब हाथी के समान म... से अन्धा हो रहा था, मैं समझता था, कि मैं सर्वज्ञ हूँ । अ... मुझे बुद्धिमानों की सुहबत से कुछ मालूम हुआ, तब मैंने समझ...

मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मेरा झूठा मद ज्वर की तरह उतर
ा॥ २१॥

जो लोग बहुत थोड़ा ज्ञान रखते हैं, समझते हैं कि, हम
जानते हैं—दुनिया की सारी अक्ल हममें ही है, हमारे
वा और सब पशु हैं। अल्पज्ञता के कारण उन्हें बड़ा घमण्ड
ता है, किन्तु जब वे बुद्धिमान् और विद्वानों की सुहबत में
ते हैं और कुछ सीख जाते हैं, तब वे समझते हैं, कि हम
कुछ भी नहीं जानते थे, हमारा अभिमान मिथ्या था। उस
मय उनका अभिमान हवा हो जाता है।

उस्ताद जौक़ ने भी ठीक ऐसी ही बात कही है —

हम जानते थे, इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी।

वाल्टेयर नामक पाश्चात्य विद्वान् ने भी ऐसी ही बात कही
—"*The more we have read, the more we have learn*
d, the more we have medicated, the better Condi
ioned we are to affirm that we know nothing" अधि-
काधिक पढ़ने, सीखने और विचारने से हमें कहना पड़ता है
कि, हम तो कुछ भी नहीं जानते। किसीने ठीक ही कहा
है—"अल्प विद्यो महागर्वी" थोड़ी विद्यावाला बहुत घमण्डी
होता है। पर जब वह विद्वानों की संगति में और सीखता
समझता है, तब उसका नशा किरकिरा हो जाता है, उसे

जिस पुरुष को स्त्रियों की असलियत मालूम हो जाने से
ाक्ति हो गई है, वह कहता है—अब हमारी स्त्रियों के भोगने-
य अवस्था—जवानी चली गई। अब वह लौटकर आयेगी
ी, और यह बुढ़ापा जायगा नहीं। यह बला जवानी में ही
छो लगती है—यह बीमारी जवानी में ही जोर करती
। किसी ने ठीक ही कहा है —

इश्क़ का जोश है जब तक, कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याम में खास॥

अब तो बुढ़ापे का दौरदौरा है, इस उम्रमें हम नाज़नियों
साथ ऐश कर भी नहीं सकते। इसके सिवा अब हम साव-
ान भी हो गये हैं। हमने बेवक़ूफ़ी छोड़ दी है। हम बहुत
ानों तक विषयोंमें लीन रहे, हमने बहुत कुछ विषय-भोग
ागे। अब हम उनसे थक गये, उनसे हमारा जी ऊब गया
नसे हमें कुछ भी सुख नहीं मिला। इस लिये अब हम गङ्गाजी
े किनारे बैठकर, संसार-बन्धन की मूल और नरक की नसैनी
न्द्रियों की ममता छोड़, शिव से प्रीति करेंगे और दिन-रात
न्हीं का पवित्र कल्याणकारी नाम जपेंगे, जिससे हमारा अन्त-
ाल तो सुधर जाय।

दोहा।

रमणकाल यौवन गयो, थक्यो भ्रमत संसार।
देहु गंगतट शेष वय, शिव–शिव जपत विसार॥३२॥

मानना पडता है कि मैं तो एकदम मूर्ख हूँ—मैं तो भी नही जानता ।

छप्पय ।

जब हों समझों नेक, तबहि सर्वज्ञ भयो हौं ।
जैसे गज मदमत्त, अधता छाय गयो हौं ।
जब सतसगति पाय, कछुक हौं समझन लाग्यौ ।
तबहि भयो अति गूढ, गर्व गुण को सब भाग्यौ ।
ज्वर चढत-चढत अति ताप ज्यों, उतरत सीतल होत तन
त्योंही मनको मद उतरिगो, लियो शलि सन्तोषपन ॥३१॥

31 As long as I knew only very little I was blind w madness like an elephant and my mind was filled with idea that I knew all But when I came to learn a little by tercourse with wise men, my false conceit vanished a with the realisation that I knew no thing

अतिक्रान्त कालो लटभललनाभोगसुभगो
भ्रमन्त श्रान्ता स्म सुचिरमिह संसारसरणौ।
इदानीं स्व सिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिर॰
सुतारै फूत्कारै शिवशिवशिवेति प्रतनुम. ॥३२॥

जेवरों से सजी हुई स्त्रियोंके भोगने योग्य जवानी व गई, और हम चिरकाल तक विषयों के पीछे दौडते-दौडते थक गये । अब हम पवित्र जाह्नवी-तट पर, (ललचाने वाली) स्त्रियों निन्दा करते हुए, शिव शिव जपेंगे ॥३२॥

जिस पुरुष को स्त्रियों की असलियत मालूम हो जाने से
रक्ति हो गई है, वह कहता है—अब हमारी स्त्रियों के भोगने-
य अवस्था—जवानी चली गई। अब वह लौटकर आयेगी
ी, और यह बुढापा जायगा नहीं। यह बला जवानी में ही
ही लगती है—यह बीमारी जवानी में ही जोर करती
। किसी ने ठीक ही कहा है —

इश्क़ का जोश है जब तक, कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याम में खास॥

अब तो बुढापे का दौरदौरा है, इस उम्रमें हम नाज़नियों
साथ ऐश कर भी नहीं सकते। इसके सिवा अब हम साव-
न भी हो गये हैं। हमने बेवक़ूफ़ी छोड दी है। हम बहुत
नों तक विषयोंमें लीन रहे, हमने बहुत कुछ विषय-भोग
गे। अब हम उनसे थक गये, उनसे हमारा जी ऊब गया,
नसे हमें कुछ भी सुख नहीं मिला। इस लिये अब हम गङ्गाजी
के किनारे बैठकर, ससार-बन्धन की मूल और नरक की नसैनी
न्द्रियों की ममता छोड़, शिव से प्रीति करेंगे और दिन-रात
न्हीं का पवित्र कल्याणकारी नाम जपेंगे, जिससे हमारा अन्त-
ाल तो सुधर जाय।

दोहा।

रमणकाल यौवन गयो, थक्यो भ्रमत ससार।
देहु गगतट शेष वय, शिव–शिव जपत निसार॥३२॥

32 The time of our youth, when we were fit for the company of jewel bedecked women, has gone We tired of hankering after the pleasures of the world for long time, Now we will pass our days on the holy bank of the heavenly Ganges cursing the misleading guiles women and repeating the name of the Great Shiva prayer

मानेम्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने।
युक्तं केवलमेतदेव सुधिया यज्जह्नुकन्यापय'
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥३३

जब लोगों में इज्जत-आबरु न रहे, धन नाश हो जाय, याच लौट-लौट कर जाने लगें, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और नाते-रिश्ते मर जायँ, तब बुद्धिमान को चाहिए, कि किसी ऐसे पर्वत गुहाके कोने में जा बसे, जिसके पत्थर गंगाजी के जल से प हो रहे हों ॥ ३३ ॥

जब लोगो मे अपना मान न रहे, लोग नफरत की नज़र देखने लगें, अपनी धन-दौलत जाती रहे, जो याचक पहले पाते थे, वे अब निर्धनता के कारण विमुख हो-होकर लौट जाते हों, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र प्रभृति नातेदार दूसरी दुनिया को चले गये हों, तब तो बुद्धिमान् को चाहिये कि ससार को त्याग दे, इसमें मोह न रक्खे और किसी ऐसे पहाड की गुफा में जा रहे, जिसके पत्थरो को पवित्र गङ्गाजल पखार-पखारकर पवित्र

रता हो। ऐसी हालत में, ससार में रहकर वृथा समय खोना
। कम-से-कम उस समय तो बुद्धिमान, एकान्त में बैठकर, सब
रह की आशा-तृष्णा छोड़कर, भगवान् के चरणकमलों में मन
गावे।

दोहा ।

गयो मान यौवन सुधन, भिक्षुक जात निराश ।
अब तो मोकों उचित यह, श्रीगगा तट वास ॥३३॥

13 When all our respect has gone, our riches have flown way, when the poor and the needy who came to us for elp before and were given what they wanted have begun be sent away with refusal, when all our relations and ar ones have left this world, it is but desirable for a wise an to take up his abode somewhere in the corner of some ountain cave whose stones are washed by the holy waters the Ganges

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतु विशसि हृदय क्लेशकलितम् ॥
प्रसन्ने त्वय्यन्त स्वयमुदितचिन्तामणि गुणे
विमुक्त सकल्प किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥३४॥

हे मलिन मन ! तू पराये दिल को प्रसन्न करने में किसलिए
ा रहता है ? यदि तू तृष्णा को छोड़कर सन्तोष करले, अपने
ही सन्तुष्ट रहे, तो तू स्वयं चिन्तामणि स्वरूप हो जाय। फिर
े कौनसी इच्छा पूरी न हो ? ॥ ३४ ॥

मन ही सब कामो का कर्त्ता है। सभी इन्द्रियाँ मन के ही अधीन और मन की ही अनुगामिनी है। मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मनुष्य मन से ही पाप-पुण्य और प्रभृति का भागी होता है। मन ही मनुष्य को बुरा-भला साधु-असाधु सब कुछ बना देता है। मन की वृत्ति सुधरने से ही मन के वासना-हीन होने से ही, सब कुछ त्यागने से ही, वह आत्मसाक्षात्कार के योग्य हो जाता है, इसीलिये कोई ज्ञानी पुरुष मन को सम्बोधन करके कहता है,—

"अरे मन ! तू स्वय तो मलिन और दु.ख के भार से दबा हुआ है, फिर तू औरो के दिल खुश करने की इतनी कोशिश क्यो करता है, क्यो आफतें उठाता है, क्यों मान खोता है और क्यों अपमान सहता है ? इससे तुझे क्या लाभ होगा ? मेरी बात माने तो तू इच्छा को त्याग दे, किसी भी चीज की इच्छा मत रख, तब तुझे शान्ति मिलेगी—परमानन्द की प्राप्ति होगी। जब तू चिन्तामणि की भाँति स्वच्छ हो जायगा, जब तू अपने स्वरूप को पहचान जायगा, तब तुझे आत्मसाक्षात्कार हो जायगा, तुझे ब्रह्मज्ञान हो जायगा, तू ब्रह्म के प्रेम में लीन हो जायगा, हर्ष-विषाद और शोक मोह तेरे पास न आवेंगे अष्टसिद्धि, और नवनिधि तेरे सामने हाथ बाँधे खडी रहेंगी उस समय तेरी कोई अभिलाषा पूरी होने से बाकी न रहेगी इसीलिये कहता हूँ, कि तू दूसरों को राजी करने को अपने तईं ही राजी कर, इससे तुझे निश्चय ही उसकी प्रा

है, जिसके समान त्रिलोकी में और कोई नहीं है। जिस समय उसकी अनुपम छवि तेरी आँखों में समा जायगी, उस समय तुझे और कुछ अच्छा न लगेगा, केवल वही अच्छा लगेगा। महाकवि रहीम ने कहा है—

प्रीतम छवि नयन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय "रहीम" लखि, आप पथिक फिर जाय॥

जब आँखों में प्यारे कृष्ण की सुन्दर मनमोहिनी छवि समा जाती है, तब उनमें और किसी की छवि समा नहीं सकती। जब तक नयनो में मुरली मनोहर की छवि नहीं समाती, जब तक उसकी छवि से खाली रहते हैं, तभी तक मामूली छवि उनमें समाती रहती है। जिस तरह सराय को भरी हुई देख कर, उसमें कोठरियाँ खाली न पाकर मुसाफिर लौट जाते हैं उसी तरह नयनों में मनमोहन की बाँकी छवि देखकर और सारी मिथ्या खूबसूरतियाँ नयनों के पास भी नहीं फटकती। जब दिलमें परम प्यारे कृष्ण का डेरा लग जाता है, तब उसमें सुन्दरी कामिनियों और लक्ष्मी प्रभृति किसी को भी स्थान नहीं मिलता, अर्थात् दिल को उसके मुकाबले में संसार के अच्छे से अच्छे पदार्थ—स्त्री और पुत्र, धन-दौलत प्रभृति—तुच्छातितुच्छ जँचते हैं।

मतलब यह है कि, मनुष्य अज्ञानता से भटकता है, अलीक सुख पानेके लिये वृथा नीचों की खुशामद करता है।

जिस सुख के लिये वह इतनी आफ़तें उठाता है, उस सच्चा सोता स्वय उसके दिलमें मौजूद है। किसी विद्वान्ने खूब कहा है—"The source of true h... is inherent in the heart, he is a fool who s... it elsewhere" सच्चे सुखका सोता दिल के अन्दर मौजूद जो उसे अन्यत्र खोजता फिरता है, वह मूर्ख है। निश्चय ही मन में है और मनके निरोध से वह मिलता है। जिसका स्थिर है, उसे सदा सुख है, जिसका चित्त स्थिर नहीं, उसे ... नहीं, अत. मनुष्यो! भटकना छोड कर सन्तोषको शरण ग... निश्चय ही आपको अपने भीतर ही परम सुख-शान्ति मिलेगी

दोहा।

तुही रीझत क्यों नहीं, कहा रिझावत और।
तेरेही आनन्द से चिन्तामणि सब ठौर ॥३४॥

34 O my unhappy mind, why dost thou try to entert... the hearts of others by doing thy utmost to please th... while thou art thyself heavy with the burden of afflictio... If thou becomest contented by giving up thy desires, ... not thou gain all thou wantest, when all the good quali... of a pure mind are produced within thyself like a Chin... mani which has the power of giving everything that a ... desires ?

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्,
मानं दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।

शास्त्रे वादभय गुणे खलभय काये कृतांताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥३५

विषयों के भोगने में रोगों का डर है, कुल में दोष होने का
है, धनमें राजका भय है, चुप रहने में दीनता का भय है,
में शत्रुओं का भय है, सौन्दर्य्य में बुढापे का भय है, शास्त्रोंमें
क्षियों के वाद का भय है, गुणों में दुष्टों का भय है, शरीर में
का भय है, ससार की सभी चीजों में मनुष्यों को भय है।
ऽ "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है ॥३५ ॥

यदि मनुष्य विषय-सुखों को भोगता है, तो उसे रोगो का
य रहता है। यदि चन्दन आदि शीतल पदार्थो का लेपन
या जाता है, तो बादी हो जाती है। यदि स्त्री से मैथुन
या जाता है, तो बल घटता है और बहुत करने से क्षय रोग
लाता है। यदि उच्च कुल में जन्म होता है, तो सदा उसके
ान या उसमें कोई दोष होने का डर लगा रहता है, क्योंकि
ल मे किसी के भी दुराचारी होने से कुल का नाम बदनाम
जाता है अथवा प्लेग वगैर के होने से कुल का नाम डूब
जाता है। इसी तरह अधिक धन होने से राजा का डर
ा रहता है, कि कहीं राजा सारा धन न छीन ले। चुप
ने में अप्रतिष्ठा और दीनता का भय रहता है, क्योंकि चुप
ने वालेको सभी दीन-हीन समझ लेते हैं। सग्राम में शत्रुओं
भय रहता है। यदि सूरत सुन्दर होती है, तो सूरत के

विगड जाने का भय रहता है, बुढ़ापे में रूप-रङ्ग नष्ट हो
जाता है। शास्त्रों के जानने वाले को प्रतिपक्षियों का भय रहता
है, क्योंकि प्रतिपक्षी सदा उसे नीचा दिखाना और उसका अप
मान करना चाहते है। पुण्य या सद्गुणों में दुष्टों का भय रहता
है, दुष्ट लोग अच्छे-से-अच्छे कामों में दोष निकाल कर
उनका उल्टा अर्थ लगाने लगते है, वे निन्दा या अपवाद करके
गुणी के गुणों का मूल्य घटाने की भरपूर चेष्टा किया करते हैं।
शरीर को मृत्यु का भय रहता है, क्योंकि काया का नाश
अवश्यम्भावी है। जो शरीर में आया है, जिसने यह शरीर रूपी
वस्त्र पहना है, उसे अपना शरीर छोडना ही होगा—यह चोला
बदलना और नया पहनना होगा।

इस तरह विचार करने से यही सिद्ध होता है, कि मनुष्य
को सासारिक सभी पदार्थों में भय ही भय है। फिर भय किस
में नही है? केवल वैराग्य या त्याग अथवा सन्यास ही ऐसा है
जिसमें किसी भी बात का भय नही है।

यो तो संसार में जरा भी सुख नहीं—सर्वत्र भय ही भय
है, पर दुष्ट और नीचों का भय सब से भारी है। दुष्टों से त
हो कर ही, महाकवि गालिब आदमियो की बस्ती में भी बसना
पसन्द नहीं करते और कहते है —

रहिए अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हमसख़ुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो॥ १॥

ये दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो ॥ २ ॥
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाख़ाँ कोई न हो ॥ ३ ॥

संसार में ज़रा भी सुख नहीं है, सर्वत्र भय-ही-भय है। एक
... एक खानेको दौड़ता है। जिसे देखो वही जल मरता है।
हाँ ईर्षा-द्वेष का बाज़ार ज़ोरों से गर्म रहता है, इस वास्ते
सी जगह में चल कर रहना चाहिये, जहाँ कोई न हो, हमारी
ात कोई न समझे और हम किसी की न समझें। मकान
ी ऐसा ही हो, जिसमें दरवाज़े और दीवार न हों, अर्थात्
ाफ जङ्गल हो। न हमारा कोई साथी हो, न पड़ोसी, अगर
ीमार हो जायँ, तो कोई खबर लेनेवाला और तीमारदारी
ानी शुश्रूषा करनेवाला न हो। अगर सौभाग्य से मर जायँ,
ा कोई शोक करनेवाला भी न हो।

महात्मा सुन्दर दासने भी कहा है —

सर्प डसै सु नहीं कछु तालक,
बीछु लगै सु भलो करि मानो ॥
सिंह हु खाय तु नाहिं कछु डर
जो गज मारत तौ नहि हानौ ॥
आगि जरौ जल बूडि मरौ गिरि
जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ ॥

सुन्दर और भले सब हो यह
दुर्जन संग भलो जिन जानौ ॥

साराश यह कि, ससार से दु खित और उदासीन के लिए वन मे जाकर रहने मे ही शान्ति है। इन पंक्तियों के लेखक का भी जी अनेक बार ऐसा ही चाहने लगता है। ससार से दिल लगाना इसमें रहना अच्छा नहीं मालूम होता, पर, वकील उस्ताद जौक़, कुछ मजबूरी ऐसी आ पडती है, कि सरता नही। आपने फरमाया है,—

बेहतर तो है यही, कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें, जो काम न बे दिल्लगी चले॥

ससार से दिल लगाना अच्छा नही, पर क्या करें कि दिल लगाये चलता भी तो नही।

साराश यह है कि, यदि सच्चो सुख शान्ति चाहते हो, स्त्री, पुत्र, धन, दौलत और जमीन-जायदाद को ममता छोड़ कर वैराग्य ले लो, यानी इन सब को छोड कर वनमें जा बसो और एक मात्र परमात्मा में मन लगाओ। ससार को त्यागने के सिवा सुख की और राह नही। हमने अनेक बार ससार त्यागने का इरादा किया, पर हमारे अज्ञानी मन ने हमें वैसा करने से बारम्बार रोका। हम मन की बातो की करते रहे। अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि, मन की समझ ठीक नहीं। हमारा गन्दा मन हमें शैतान की त

ाह कर रहा है। जिस सुख की खोज में हमने ४० वर्ष
ा गँवा दिये, उस सुखका लेश भी हमें न मिला। इस
। में हमें सदा शोक-तापों से जलना पड़ा। हमारी सुबुद्धि
से कह रही है कि, शैतान के भरमाने में मत आओ। जो
री काम करने हैं, उन्हें जल्दी-से-जल्दी निपटा कर, सब को
। वन को चले जाओ और मन को शुद्ध करके उसे परमात्मा
लगाओ। देर न करो, कहीं ऐसा न हो कि, तुम अपने
न ही निपटाते रहो और काल आपहुँचे और तुम्हारे मन
मनमें रह जाय। मन की राह पर न चलो, बल्कि मनको
नी राह पर चलाओ। "सच्चा सुख वैराग्य में ही है" इस
ावाक्य को क्षणभर भी न भूलो।

छप्पय।

बहुत भोग को संग, तहाँ इन रोगन को डर।
धनहूँ को डर भूप, अग्नि अरु त्योंहीं तस्कर।
सेवामें भय स्वामि, समर में शत्रुन को भय।
कुलहू में भय नारि, देह को काल करत क्षय।
अभिमान डरत अपमान सों गुन डरपत सुन खल शब्द।
सब गिरत परत भयसों, फेर अभय एक वैराग्यपद ॥३५॥

35 In the enjoyment of pleasures there is always the
ar of disease Membership in a high family is accompan-
d by the fear of the latter's downfall Wealth is ever haun
d by the fear of kings Silence is associated with thefear of

है। मनुष्यों को अपनी ज़िन्दगी को चन्दरोज़ा समझ कर कामों से बचना चाहिये।

कुण्डलिया।

जैसे पकज पत्र पर, जल चचल ढरि जात।
त्योंही चचल प्राणहू, तजि जैहैं निज गात।
तजि जैहैं निज गात, बात यह नहिं जानत।
तोहू छाँडि विवेक, नृपन की सेवा ठानत।
निज गुन करत बखान, निलजता उघरी ऐसे।
भूल गयो शतज्ञान, मूढ अज्ञानी जैसे ॥३६॥

36 For the sake of prolonging our life-breath which is restless as the drops of water lying on a lotus leaf what measures were left undone by us even discarding all discrimination between right and wrong ? So much, so that we had to indulge in the sin of shameless self praise in the presence of wealthy men whose mind is filled with extreme vanity and unscrupulousness

भ्रात कष्टमहो महान्स नृपति. सामन्तचक्र च त
त्पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बानना॥
उद्रिक्त स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ता. कथा
सर्व यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नम॥

ऐ भाई! कैसे कष्ट की बात है। पहले यहाँ कैसा राजा राज्य करता था, उसकी सेना कैसी थी, उसके राजपुत्रों का समूह कैसा

सकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी-कैसी चन्द्रानना थी, कैसे अच्छे-अच्छे चारण भाट और कहानी कहनेवाले यहाँ थे ! वे सब जिस काल के वश हो गये, उसी काल नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

कोई शख्स किसी प्रतापी राजा की राजनगरी को उजड़ कर शोक करता और कहता है कि, यहाँ का राजा जबर्दस्त था, उसके पास अनगिन्ती सेना थी, उसके पास -अच्छे शूर-सामन्त थे, उसके बड़े-बड़े शूरवीर राजपुत्र सके यहाँ चन्द्रमा को भी लजानेवाली स्त्रियाँ थी, उसकी सभा इन्द्र की सभा को भी मात करती थी, उसकी सभा में एक बुद्धिमान मन्त्री, चारण, भाट, विदूषक प्रभृति एक दिन ये सब थे, पर आज न वह राजा है, न राज-ी है, न राजसभा है, न वह चतुरङ्गिणी सेना है, न वे शूर-न्त हैं और न वे विधुवदनी मोहिनी स्त्रियाँ है । वे सब कहाँ ? उन सब को काल खागया । आज उनका नाम-निशान संसार में नहीं है । ओह ! जो काल ऐसा बली है, जिसने को स्वप्नवत् कर दिया है, मैं उस बली काल को ही नम-र करता हूँ । महात्मा कबीरदास कहते हैं —

मातो शब्द्ज बाजते, घर घर-होते राग ।
से मन्दिर खाली परे, बैठन लागे काग ॥
परदा रहती पदमिनी, करती कुलकी कान ।
छडी थ पहुँची कालकी, डेरा हुआ मैदान ॥



हे भाई ! कैसे कष्ट की बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उस की राजसभा कैसी थी, उस के यहाँ कैसे कैसे शूर सामन्त और सेना एवं चन्द्रानना स्त्रियाँ थी, पर आज सब सूना है। सबको काल खा गया !! पृ० ११५

सकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी-कैसी चन्द्रानना थीं, कैसे अच्छे-अच्छे चारण भाट और कहानी कहनेवाले यहाँ थे। वे सब जिस काल के वश हो गये, उसी काल नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

कोई शख्स किसी प्रतापी राजा की राजनगरी को उजड़ कर शोक करता और कहता है कि, यहाँ का राजा जबर्दस्त था, उसके पास अनगिन्ती सेना थी, उसके पास -अच्छे शूर-सामन्त थे, उसके बड़े-बड़े शूरवीर राजपुत्र सके यहाँ चन्द्रमा को भी लजानेवाली स्त्रियाँ थीं, उसकी सभा इन्द्र की सभा को भी मात करती थी, उसकी सभा क से एक बुद्धिमान मन्त्री, चारण, भाट, विदूषक प्रभृति एक दिन ये सब थे, पर आज न वह राजा है, न राज- ी है, न राजसभा है, न वह चतुरङ्गिणी सेना है, न वे शूर- न्त हैं और न वे विधुवदनी मोहिनी स्त्रियाँ हैं। वे सब कहाँ ? उन सब को काल खागया। आज उनका नाम-निशान संसार में नहीं है। ओह! जो काल ऐसा बली है, जिसने को स्वप्नवत् कर दिया है, मैं उस बली काल को ही नम- र करता हूँ। महात्मा कबीरदास कहते हैं:—

सातों शब्द्ज बाजते, घर घर-होते राग।
ते मन्दिर खाली परे, बैठन लागे काग ॥
परदा रहती पदमिनी, करती कुलकी कान।
छड़ी जु पहुँची कालकी, डेरा हुआ मैदान ॥

40 Should we sojourn by the banks of the heavenly Ganges practising penances, or should we enjoy the company of women possessing the high qualities of beauty, always addressing them in a befitting manner, or should we drink in the ambrosial essence of the religious books or literary treatises? We are quite at a loss to know what course we should have recourse to in so short a life

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य,
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंका,
सम्प्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृंगकण्डुविनोदम् ॥४१॥

अहा! वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम गंगा किनारे, हिमालय की शिलाओं पर, पद्मासन लगाकर, विधान अनुसार आँख मूँद कर, ब्रह्म का ध्यान करते हुए, योग-निद्रा में मग्न होंगे और बूढ़े बूढ़े हिरन निर्भय हो, हमारे शरीर की रगड़ से, अपने शरीर की खुजली मिटाते होंगे? ॥४१॥

संसारी माया-जाल में सुख नहीं है। इसमें जो सुखी दीखते हैं, वे भी वास्तव में दुखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं है। हम उन्हें गाड़ी और मोटरों में चढ़ते देख, उन्हें बढ़िया-बढ़िया महलों में आनन्द करते देख उनके यहाँ द्रव्य की बहुलता देख, सुखी समझते हैं, पर वास्तव में वे सुखी नहीं है। असल बात यह है, संसार में सुख है ही नहीं। सुख केवल "वैराग्य" में है। इसीलिये कहते



वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम (इन योगिराज की तरह) गंगातट पर पद्मासन लगा, योगनिद्रा में मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन हमारे शरीर की रगड़ से अपनी खुजली मिटाते होंगे ?

ना कहता है, वे दिन कब आवेंगे, जब हम गङ्गा किनारे, मालय की शिला पर बैठ, पद्मासन लगाकर, ब्रह्म के ध्यान लीन होंगे ? उस ध्यान में जब हमारी सुध-बुध जाती रहेगी, समय बूढ़े हिरन हमें जीता-जागता मनुष्य न समझ, कोई र्जीव पदार्थ समझ, नि शङ्क होकर, हमारे शरीर से अपना ीर रगड-रगडकर, अपने शरीर की खुजली मिटायेंगे। जिन रुषों को यह सुख प्राप्त है, वही सच्चे सुखिया हैं—उन्हीं का वन धन्य है।

प्रेमिक के प्रेम में तन्मय हो जाने में ही मज़ा है। जब रा-पूरा ध्यान लग जाता है, तब शरीर पर पक्षी बैठें या जान-र, खुजली मिटावें या चाहे जो करें, कोई खबर नहीं रहती। से ध्यानियों को ही सिद्धि मिलती है। महाकवि दाग हते हैं .—

कमाल इश्क है, ऐ दाग महव हो जाना।
मुझे खबर नहीं, नफा क्या जरर कैसा॥

प्रेम में जो लोग तन्मय हो जाते हैं, उन्हीं का प्रेम—प्रेम है। बेना तन्मयता के प्रेम थोथा है। मैं तन्मय हूँ, इसलिये मुझे ाटे लाभ की फिक्र तो क्या, खबर ही नहीं।

कबीर कहते हैं—

प्रेम-प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावे सोय॥

दोहा ।

देव ईश सुरसरि सरित, दिशा वसन गिरि गेह ।
सुहृत्काल वट कामिनी, व्रत अदैन्य सुख एह ॥१३॥

13 Let the Great God be the only god for us, the heav... Ganges the only river, a cave the only house, the direction... the open space the only clothing, time the only friend and vow of non supplication the only vow- What more should we... then that a banyan tree in the forest may be our only ... half ?

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अधो गंगा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥४४॥

देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके ... से हिमालय पर्वत पर, हिमालय पर्वत से पृथ्वी पर, और पृ... से समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेक हीनों... पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है ॥४४॥

जो विचारपूर्वक काम नहीं करते, जो अक्ल से काम... लेते, उनको तरह-तरह से नीचा देखना पड़ता है। ... यहाँ गङ्गा का दृष्टान्त दिया है और खूब दिया है

शिक्षा—जो विवेक-हीन है, जो अहङ्कारी है, वे... नीचा देखते है, और बार-बार नीचे गिरते है, अतः मनु...



देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके
र से हिमालय पर्वत पर, हिमालय से पृथिवी पर, पृथिवी
समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेक-भ्रष्टों
पद पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

ार भी घमण्ड न करना चाहिये और खूब विचार कर करना चाहिये।

शेखसादी ने कहा है—

> हर्कें बेहुदा गर्दन अफराज़द।
> खेश्तन रा बगर्दन अन्दाज़द॥

जो कोई अपनी गर्दन ऊँची करता है, वह मुँह के बल ता है।

Loo! how the great Ganges has fallen low r and lower t her abode of stupendous elevation ' from the Swarga down o the head of the God Shiva, from thence to the summit of mountain, from the mountain to the plain earth and from ace down to the sea Similar is the fate of men devoid of triminating reason who undergo a downfall in hundreds of ys

> आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
> रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
> मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
> तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥२५॥

आशा एक नदी है, उसमें इच्छा रूपी जल है। तृष्णा उस की तरङ्गें हैं, प्रीति उसके मगर हैं, तर्कवितर्क या दलीलें सके पक्षी हैं, उसमें मोहरूपी भँवर है, चिन्ता ही उसके किनारे यह धैर्यरूपी वृक्ष को गिरानेवाली है, इस कारण उसके

होना बड़ा कठिन है। जो शुद्धचित्त योगीश्वर उसके पार जाते हैं, वे बड़ा आनन्द उपभोग करते हैं ॥४५॥

नदी का नाम क्या है ? आशा-नदी। उसमें जल क्या है ? इच्छा का जल है। उसमें मगर कैसे हैं ? उसमें प्रीतिरूपी मगर हैं। उसमें जलचर पक्षी कैसे हैं ? नाना प्रकार के तर्क वितर्क उसके पक्षी हैं। वह किनारे के किन वृक्षों को गिराती है ? धैर्यरूपी दरख्तों को गिराती है। उसमें भँवर कैसे हैं ? उसमें मोहरूपी भँवर हैं। उसके किनारे किसके हैं ? चिन्ता के। उसको कौन पार कर सकते हैं ? वही पार कर सकते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जिनके ये सब बलायें छुट गई हैं, जिनका चित्त केवल ब्रह्ममें लीन है।

साराश,—यदि आनन्द चाहो, तो आशा, इच्छा, तर्क-वितर्क, मोह, चिन्ता प्रभृति को एकदम छोड़कर हो जाओ और अपने आत्मा या ब्रह्म के ध्यान में तन्मय हो जाओ।

छप्पय।

नदीरूप यह आश, मनोरथ पूर रह्यो जल।
तृष्णा तरल तरग, राग है ग्राह महाबल।
नाना तर्क विहग, सग धीरज तरु तोरत।
भ्रमर भयानक मोह, सबद को गहि गहि बोरत।
नित बहत रहत चित भूमिमें, चिन्तातट अतिही विकट।
काढि गये पार योगी पुरुष, उन पायो सुख तेहि निकट ॥४५॥

आशा
नदी
मोह
म नो र थ

15 Hope is just like a river with water in the shape of res, agitated by currents in the shape of avarice, with gators in the shape of attachments with watery birds in shape of motely designs with the power of destroying one's everance in place of uprooting trees, difficult to cross owing he presence of whirl pools in the shape of wordly love, excee gly deep and possessing banks in the shape of very great es. Happy are the great Yogis, who pure in mind, have ceeded in stepping over it

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीवस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥४६॥

ओ भाई ! मैं सारे संसार में घूमा, तीनों भुवनों में खोज की, र ऐसा मनुष्य न मैंने देखा न सुना, जो अपनी कामेच्छा पूर्ण रने के लिये हथिनी के पीछे दौड़ते हुए मदोन्मत्त हाथी के समान, नको वश में रख सकता हो ॥४६॥

भाई ! मैंने त्रिलोकी खोज डाली, पर मुझे एक भी आदमी ऐसा न दीखा, जो विषयरूपी हथिनी के पीछे लगे हुए मन-रूपी गजको रोक सकता हो। इसका खुलासा यह है,— विषयों में फँसे हुए मन को काबू में रखना अथवा उसे विषयों से हटाना असम्भव है।

मन बड़ा जबर्दस्त है। इसके पङ्ख नहीं, पर पक्षी की तरह उड़ने वाला है, कभी यह आकाश में जाता है कभी पाताल

मे आता है। मन शरीर को जिधर घुमाता है, शरीर घूमता है। मन ही मनुष्य को परमात्मा से अलग रखता है मनही उसमे मिला देता है। इसकी चञ्चलता अच्छी नहीं। चञ्चलता ही साधना मे बाधक है। महात्मा कबीर कहते हैं

मन पक्षी तब लगि उडे, विषय-वासना माँहि।
ज्ञान बाज की झपट में, जब लगि आया नाँहि॥
मन के बहुते रङ्ग हैं, छिन-छिन बदले सोय।
एक रङ्ग मे जो रहै, ऐसा बिरला कोय॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौरि।
सहजै हीरा ऊपजै, जो मन आवै ठौरि॥
मन के मते न चालिये, मन का मता अनेक।
जो मन पर असवार है, ते साधू कोई एक॥

उस्ताद जौक कहते हैं—

दुनियाँ से मैं अगर, दिले मुजतर को तोड दूँ।
सारे तिलिस्म, वहम मुकद्दर को तोड दूँ॥

ससार मे लगे हुए मन को यदि मैं तोड दूँ, तो धोखे और बुराई में डालने वाले इस प्रपञ्च को ही तोड डालूँ। ससार पाश में बँधे हुए मन को तोडना मुश्किल है।

उस्ताद जौक एक जगह फिर कहते हैं—

बडे मूज़ी को मारा, नफ्से अम्मारे को गर मारा।
नहगो अजदहाओ, शेर नर मारा तो क्या मारा।

पने दिल को मार, अभिमान को मार, इसमें तेरी बड़ाई
बड़े-बड़े ख़ूँख़ार जानवरों के मारने में वीरता नहीं है।
भिमान-शून्य होना, है बड़ा कठिन। जिस बासन में
न या प्याज़ रक्खे जाते हैं, उसमें से उनकी गन्ध बड़ी
ाई से जाती है इसी तरह अभिमान भी बड़ी कठिनाई
ाता है।

इसके नाश का उपाय विवेक या ज्ञान है। जब ज्ञान का
ा हो जाता है, तब जिस तरह पका आम आपसे आप गिर
ा है, उसी तरह अभिमान भी आपसे आप दूर हो जाता
अभिमान के नाश होते ही चित्त शुद्ध हो जाता है। चित्त
ुद्ध होने से परमात्मा के दर्शन होने की राह साफ़ हो
ी है।

मनुष्यो! अभ्यास करो, अभ्यास से सब कठिनाइयाँ हल हो
ी हैं। जैसे भी हो, मन को वासना-हीन बनाओ। वासना-
न, निर्मल चित्त वाले व्यक्ति पर उपदेश जल्दी असर करता
और उस में ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

दोहा।

ऐसो मैं ससार में, सुन्यो न देख्यो धीर।
विषया हथिनी सग लग्यो, मनगज बाँधे बीर ॥४६॥

46 *O brother, wandering all the world over and seeking throughout the three Regions, we have neither seen nor heard of man who has been successful in curbing the wild restlessness*

of his mind which is like a male elephant turned wild cupidity and pursuing his female for the gratification sensual desires

ये वर्द्धन्ते धनपतिपुर प्रार्थनादु खमाजो
ये चाल्पत्व दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः ।
तेषामन्त. स्फुरितहसित वासराणा स्मरेय
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्ण ॥४३

वे दिन जो धन के लिये धनवानों की खुशामद करने के मे बडे मालूम होते थे और वे दिन जो विषयासक्ति में लगते थे, उन दोनों प्रकार के दिनों को हम पर्वत की एकान्त में पत्थर की शिला पर बैठे हुए, आत्मध्यान में मग्न होकर, करण में हँसते हुए याद करेंगे ॥४१॥

जिन लोगो को अनेक प्रकार के ऐशोइशरत और भोग विलास के सामान मयस्सर है, जिनके यहाँ किसी भी प्रकार भोग-विलास की सामग्री का अभाव नहीं है, जिनके मृगनयनी कामिनी सेवा करने को है, जिनके दास-दासी जिनके बाग-बगीचे हे, जिनके गाडी-घोडे और मोटर है, जि पीछे अनेक तरह के खुशामदी लगी रहते हैं, जिनके हाथ में है अथवा जिन पर राजकृपा है—ऐसे लोगो के दिन बडी आ कटते है । उन्हे दिन-रात बीतते मालूम हो नही होते, लम्बे दिन भी छोटे प्रतीत होते है , किन्तु जिन लोगों को तरह का अभाव है, जो हर बात के लिये तङ्ग हैं,

इच्छा पूरी करने के लिये धनियों से धन मांगते हैं, खुशामद करते हैं, उनकी दुत्कार-फटकार सहते हैं, नत होते हैं, उनके लिये वे ही दिन बड़े भारी मालूम —काटे भी नही कटते। किन्तु जो लोग विषयों का होते हुए भी विषय-सुख नहीं भोगते, और अभाव होने इच्छा नही रखते, इसलिये धनियोके देहरे नही ढोकते, खुशामद नही करते, अपने आत्माराम में ही मस्त रहते सुखी हैं, उन्हें दिन बड़े और छोटे नही लगते। जसने दोनों प्रकार के दिन देखे हैं, पर शेष मे उसे ऐसे से विरक्ति हो गई है, वह कहता है,—मैं एकान्त गुफा त शिला पर बैठा हुआ, आत्मा का ध्यान करूँगा और देनों की याद करके उन पर घृणा से हँसूँगा।

कुण्डलिया।

छोटे दिन लागत तिन्हें, जिनके बहुविधि भोग।
बीत जात विलसत हसत, करत सुरत सजोग।
करत सुरत सजोग, तनक से लागत तिनको।
जे हैं सेवक दीन, निपट दीरघ हैं तिनको।
हम बैठे गिरि शृंग, अग याही ते मोटे।
सदा एक रस थोप, लगत हैं बड़े न छोटे ॥४७॥

47 *We shall now, seated in self-contemplation on a stone ...ome lonely cave of a mountain, remember with a smile the ...t days which appeared to us to have become intolerably long*

when we suffered from the hardship of appealing to rich men for help and which became quite short when our mind was lost in the enjoyment of worldly pleasures

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता ।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिता
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥४८॥

न तो हमने निष्कलङ्क विद्या पढी, न धन कमाया, न हमने शान्त चित्त से माता-पिता की सेवा ही की, और स्वप्न में भी हमने दीर्घनयिनी कामिनियों को गले से न लगाया । हमने इस जगत् में आकर कव्वे की तरह पराये टुकडों की ओर ताक लगाने के सिवा क्या किया ? ॥४८॥

जिस मनुष्य ने औरो की खुशामद-बरामद या लल्लो-पत्तो करके अपना पेट भरा, टुकडों के लिये सदा पराये मुँहकी ओर देखता रहा, वही शख्स शेषमें दुःखित होकर कहता है,—हाय मैंने बे-ऐब इल्म भी न पढा, धन भी उपार्जन न किया, मृगनयनी कामिनियोंका आलिङ्गन भी न किया, माता-पिता की सेवा भी न की—मैंने वृथा जन्म लिया और अपना जीवन वृथा गँवाया ।

जो ससार में आकर न हरि-भजन करते है, न विद्या अध्ययन करते हैं, न धनोपार्ज्जन कर के सुख भोगते है, न ससार के दुःखियों के दुःख को दूर करते हे, उनका इस दुनिया में आना वृथा है । किसी ने कहा है—

इधर के रहे न उधर के रहे।
खुदा ही मिला न विसाले सनम॥

और भी किसी ने कहा है—

कहा कियो हम आय के, कहा करेंगे जाय।
इतके भये न उतके, चाले मूल गँवाय॥

मतलब यह है, विद्या पढना, विद्या-बुद्धि से धन-उपार्ज्जन करना, सुख भोगना, माँ-बापकी सेवा करना अच्छा, पर खाली पेट भरने के लिये, कव्वेकी तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है, तो उस परमात्मा का ताको, जो अभावशून्य है और सबका दाता है। उससे ही आप की इच्छा पूरी होगी। अगर आप उसीका भरोसा करेंगे, तो वह आप के सब अभाव दूर करेगा, आप के दुःखों में दुःखी और आपके सुखों में सुखी होगा। उसके बिना आपकी भूख न मिटेगी। रहीम कहते हैं और सच कहते हैं—

रामचरण पहिचान बिन, मिटी न मन की दौर।
जनम गँवाये वादिही, रटत पराये पौर॥

तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी पति दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहि।
कर्महीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहि॥
राम गरीबनिवाज हैं, राम देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहि, घुरविनिया की बानि॥

छप्पय ।

विद्या रहित कलंक, ताहि चित में नहिं धारी।
धन उपजायो नाहिं, सदा संगी सुखकारी ।
मात पिता की सेव सुश्रुषा, नेक न कीन्हीं ।
मृगनयनी नवनारि, अंक भर कबहुँ न लीन्हीं ।
योंहीं व्यतीत कीन्हों समय ताकत डोल्यो काक ज्यों ।
लै भज्यो टूक पर हाथ तें, चंचल चोर चलाक ज्यों ॥४८॥

48 We did not acquire knowledge pure of all blemishes, nor did we hoard wealth. We did not even serve our parents with a patient mind, or embrace youthful women with large and restless eyes even in our dreams What did we do in this world except passing our days like a crow expecting to be given a morsel by others ?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदया
स्मरन्त ससारे विगुणपरिणामावधिगती ॥
वय पुण्यारण्ये परिणितशरच्चन्द्रकिरणै-
ने स्त्रियामा नैष्यामो हरचरणचित्तैकशरणा ॥४६॥

सर्व्वस्व त्यागकर (अथवा सर्व्वस्व नष्ट हो जाने पर)करुणापूर्ण हृदय से, ससार और ससार के पदार्थों को सारहीन समझकर, हम केवल शिव-चरणों को अपना रक्षक समझते हुए, शरद् की चाँदनी में, किसी पवित्र वन में बैठे हुए कब रातें वितायेंगे ? ॥४६॥

वह दिन कब आवेंगे, जब हम सर्वस्व त्याग कर, ससार को असार समझ कर, ससार के सुखों को अनित्य समझ कर, ससार के भोग-विलासों को दु ख मूल समझ कर, विषयों को विष समझ कर, किसी पवित्र वन मे बैठे हुए शरद् ऋतु को चाँदनी रात को शिव-शिव की रटना लगाते हुए व्यतीत करेंगे ? अर्थात् हमारे ये दिन जो ससारी जञ्जालों में बीते जा रहे हैं, वृथा नष्ट हो रहे हैं। जब हम सब को त्याग कर भगवान् का भजन करेंगे, तभी हमारे दिन ठीक रूपसे कटेंगे। हम उन्ही दिनो को सार्थक हुए समझेंगे। ससारी सुखो से तो हम अघा गये।

तुलसीदासजी कहते हैं—

दुखदायक जाने भले, सुखदायक भजि राम।
अब हमको ससार को, सब विधि पूरन काम॥

हे मन! अब परमात्मा मे मन लगा, ससारी सुखों मे अब हमारी इच्छा नही, इनकी पोल हमने देखली।

19 Now having renounced everything with our hearts full of deep emotions and looking back on the downfall brought about by evil actions done in the world, we will end our life passing our nights in a sacred forest where the rays of the winter moon are spreading, our hearts taking shelter only in the feet of the Great Shiva

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्व च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषाविशेष ॥

स तु भवति दरिद्री यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टकोऽर्थवान्को दरिद्र ॥५०॥

हम वृक्षों की छाल पहनकर सन्तुष्ट हैं, आप लक्ष्मी से सन्तुष्ट हो। हमारा तुम्हारा दोनों का सन्तोष समान है, कोई भेद नहीं। वही दरिद्र है, जिसके दिल में तृष्णा है। सन्तोषी के लिये धनी और निर्धन दोनों बराबर है ॥५०॥

जिसे सन्तोष है, वह सदा सुखी है। उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छायें बडी-बडी हैं। जिसे सन्तोष नही है, वह सदा दु:खी है। सन्तोष बडी भारी दौलत से भी अच्छा है। जो सुखी होना चाहे, वह तृष्णा को त्यागे और परमात्मा जो दे उसमें सन्तोष करे। सन्तोषीके लिए कोई व्याधि नहीं है। सन्तोषी का चित्त, मन और काया सदा सुखी रहते हैं। सन्तोषी किसी को खुशामद नहीं करता।

उस्ताद जौक कहते हैं —

जो कुञ्जे कनाअत में हैं, तकदीर पर शाकिर।
है जौक बराबर, उन्हें कम और जियादा ॥

जो सन्तोषी हैं, तकदीर पर भरोसा रखते हैं, उन्हें कम और जियादा सभी बराबर हैं। उन्हें जो मिल जाय, उसी पर सन्न है।

शेख सादी ने गुलिस्ताँ में लिखा है --

ऐ कनाअत तवन्गरम गरदाँ ।
के वराये तो हेच नेमत नेस्त ॥

हे सन्तोष ! मुझे धनी बना दे—क्योंकि ससार की कोई दौलत तुझसे बढकर नहीं है।

मनुष्य को चाहिये, कि सूखी रोटी और चिथडों से बनी गुदड़ी में सुखी रहे। मनुष्यों के ऐहसानों का भार उठाने से अपने दु खों का भार हलका न समझे। जो तगनज़र हैं, जो लोभी हैं, उनको या तो सन्तोष से सुख मिलता है अथवा मर जाने से। सन्तोष की तारीफमें महात्मा कबीर की भी सुनिये—

गो-धन गज-धन वाजि-धन, और रतन धन खानि ।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥

तुलसीदासजी की भी सुनिये —

जहाँ तोष तहाँ राम है, राम तोष नहीं भेद ।
"तुलसी" देखो गहत नहि , सहत विविध विधि खेद ॥

छप्पय ।

तुम धनसों सन्तुष्ट, हमहुँ हैं वृक्षबकल तें ।
दोऊ भये समान, नैन मुख अग सकल तें ।
जाने जात दरिद्र, बहुत तृष्णा है जिनके ।
जिनके तृष्णा नाहिं, बहुत सम्पत है तिनके ।
तुमही विचार देखो हगन, को निर्धन धनवन्त को ।
जुत पाप कौन निष्पाप को, को असन्त अरु सन्तको ॥५०॥

50 *We are contented here only with the possession of the bark of trees, whilst thou art content with the possession of wealth Contentment being the same the difference between us is equalised He is always poor whose desires are predominant in his mind while to a contented man the rich and the poor are all alike*

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ।
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥५१॥

स्वाधीनतापूर्वक जीवन अतिवाहित करना, बिना माँगे खाना, विपद् में साहस करने वाले मित्रों की संगति करना, मन को वश में करने की तरकीबें बताने वाले शास्त्रों का पढना-सुनना, चञ्चल चित्त को स्थिर करना—हम नहीं जानते, यह किस पूर्व तपस्या के फल से प्राप्त होते हैं ?

पराधीन मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, उसे पैड-पैड पर अपमानित, लाञ्छित और दु खित होना पडता है। जो स्वाधीन है, किसी के अधीन नहीं हैं, वे ही सच्चे सुखिया हैं। जिनको अपने पेट के लिए किसी के सामने गिडगिडाना नहीं पडता—किसी के सामने दीन वचन कहने नहीं पडते, जिनके दु समय में सहायता देनेवाले, बिना कहे कष्ट निवारण करने वाले मित्र हैं, जो मन को शान्त करनेवाले और उसकी चञ्चलता दूर करनेवाले शास्त्रों को पढते हैं—वे भाग्यवान् हैं।

उन्होंने ये उत्तम फल पूर्वजन्म के किसी कठोर तपके फल से पाये हैं।

दोहा ।

सत्सगति स्वच्छन्दता. बिना कृपणता भक्ष ।
जान्यो नहिं किहि तप किए. यह फल होत प्रत्यक्ष ॥५१॥

51 I do not know which austere Tapa practised in the previous existence gives rise to the following fruits —Living an independent life, dining without begging for food, company of friends ready to help in difficulty, listening to Shastras in such a way as will enable one to prepare for the vow of self control, the slackening of mental restlessness and even when the mind grows restless, trying to restrain it by thoughtful consideration

पाणि पात्र पवित्र भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्न
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममल तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषा नि सगतागीकरणपरिणति स्वात्मसन्तोषिणस्ते
धन्या सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकरा कर्मनिर्मूलयन्ति ॥५२॥

वे ही प्रशसाभाजन हैं, वे ही धन्य हैं, उन्होंने ही कर्म की जड काट दी है—जो अपने हाथों के सिवा और किसी बासन की जरूरत नहीं समझते, जो घूम घूमकर भिक्षा का अन्न खाते हैं, जो निर्मल आकाश को ही अपना वस्त्र समझते हैं, जो जमीन को ही अपनी शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, जो दीनता से घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मा में ही सन्तोष कर लिया है।

जिन्होंने सबसे मन हटा कर, सब तरह के विषयों को त्याग कर, संसारी माया-जाल काट कर, अपने आत्मा में ही सन्तोष लाभ कर लिया है, जो किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखते, यहाँ तक कि जल पीनेको किसी बर्तन को भी पास नहीं रखते, अपने हाथ से ही बर्तन का काम ले लेते हैं, खाने के लिए घर में सामान नहीं रखते, कल के भोजन की फिक्र नहीं करते, आज इस गाँव में माँग कर पेट भर लेते हैं, तो कल दूसरे गाँव में जा माँगते हैं, एक गाँव में दो रात नहीं बिताते, जो शरीर ढकने के लिए कपडों की भी ज़रूरत नहीं रखते, दिशाओं को ही अपना वस्त्र समझते हैं, जो पलँग-तोशक और गद्दे तकियों की आवश्यकता नहीं समझते, ज़रासी जमीन को ही अपनी खाट समझते हैं, जब नींद आती है, अपने हाथ का तकिया लगाकर सो जाते हैं, जो किसी का सङ्ग नहीं करते, अकेले रहते हैं, किसी के सामने दीनता नहीं करते— अपने स्वरूपमें ही मग्न रहते हैं, वे पुरुष सचमुच ही महापुरुष हैं। ऐसे पुरुषरत्न धन्य हैं। उन्होंने सचमुच ही कर्म-बन्धन काट दिया है। वे ही सच्चे त्यागी और सन्यासी हैं। ऐसेही महापुरुषों के सम्बन्ध में महात्मा सुन्दरदासजी ने कहा है '—

काम ही न क्रोध जाके, लोभ ही न मोह ताके।
मद ही न मत्सर, न कोऊ न विकारो है॥
दुःखही न सुख माने, पाप ही न पुण्य जाने।
हरष न शोक आने, देह ही तें न्यारो है॥

निन्दा न प्रशसा करै, राग हो न द्वेष धरै ।
लेन हो न देन जाके, कुछ न पसारो है ॥
सुन्दर कहत, ताको अगम अगाध गति ।
ऐसो कोउ साधु, सो तो रामजी कूँ प्यारो है ॥

छप्पय ।

भोजन कों कर पट्ट, दशों दिशि बसन बनाये ।
भखै भीख को अन्न, पलँग पृथ्वी पर छाये ।
छाँडि सबन को सग, अकेले रहत रैन दिन ।
नित आतम सों लीन, पैान सन्तोष छिनहिं छिन ।
मनको विकार, इन्द्रीन को डारै तोर मरोर जिन ।
वे धन्य २ सन्यास, कर्म किये निर्मूल तिन ॥५२॥

52 Praiseworthy are those and they alone who cut down the roots of Karma, who do not need any other vessel but their own hands for the purposes of drinking water etc, who eat only the food procured by leading the life of a wandering mendicant, who consider the endless space to be the only fit garments for them, who have the wide earth alone for their bed and whose mind has been trained into the habit of non attachment by practising self-contentment

दुराराध्य स्वामी तुरगचलचिता क्षितिभुजो
घय तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनस
जरा देहं मृत्युर्हरति सकल जीवितमिद
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपस ॥५३॥

मालिक को राजी करना कठिन है। राजाओं के दिल घोड़ों के समान चञ्चल होते हैं। इधर हमारी इच्छाएँ बडी भारी हैं, उधर हम बडे भारी पद—मोक्ष के अभिलाषी हैं। बुढापा शरीर को निकम्मा करता है और मृत्यु-जीवन नाश करती है। इसलिये हे मित्र! बुद्धिमान् के लिये, इस जगत् में, तप से बढकर और कल्याण-मार्ग नहीं है ॥५३॥

सेवा-धर्म बडा कठिन है। हजारों प्रकार की सेवायें करने, अनेक प्रकार की हाँ में हाँ मिलाने, दिन को रात और रात को दिन कहने, तरह-तरह की खुशामद करने से भी मालिक कभी सन्तुष्ट नहीं होता। राजाओं के दिल अशिक्षित घोडों की तरह चचल होते हैं। उनके चित्त स्थिर नहीं रहते, ज़रासी देर में वे प्रसन्न होते हैं, ज़रासी देरमें वे अप्रसन्न हो जाते हैं, क्षणभर में गाँव के गाँव बख्शते और क्षण भरमें शूली पर चढाते हैं, इसलिये राजसेवा में बडा खतरा है, उसमें ज़रा भी सुख नहीं है, जान की भी खैर नहीं है। एक तरफ तो हमारी इच्छाओं और हमारे मनोरथों की सीमा नहीं है, दूसरी ओर हम परमपद के अभिलाषी है, इसलिये यहाँ भी मेल नहीं खाता। बुढापा हमारे शरीर को निर्बल और रूपको कुरूप करता है एवं सामर्थ्य और बल का नाश करता है मृत्यु सिरपर मँडराती है। ऐसी दशा में, मित्रवर! कहीं सुख नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो, तो परमात्मा का भजन करो। उस से आपके इहलोक और परलोक दोनो

सुधरेंगे, आप जन्म-मरण के कष्टों से छुटकारा पाकर मोक्ष-पद पायेंगे। साराश यह है, कि सच्चा और नित्य सुख केवल वैराग्य और ईश्वर-भक्तिमें है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं।

"तुलसी" मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु छाँह।
जब लगि द्रवै न करि कृपा, जनक-सुता को नाह॥
हित सन हित रति राम सन, रिपु सन वैर विहाय।
उदासीन ससार सन, "तुलसी" सहज सुभाय॥

मनुष्य चाहे कल्पवृक्ष के नीचे क्यों न चला जाय, जब तक सीतापति की कृपा न होगी, तब तक उसके दुःखों का नाश नहीं हो सकता, इसलिये शत्रुता-मित्रता छोड़, ससार से उदासीन हो, भगवान् से प्रीति करो।

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं —

काहे कुँ फिरत नर, दीन भयो घर-घर।
देखियत तेरो तो, आहार इक सेर है॥
जाको देह सागर में, सुन्यो शत योजन को।
ताहू कूँ तो देत प्रभु, यामे नहि फेर है॥
भूखो कोउ रहत न, जानिये जगत माहि।
कीरी अरु कुंजर, सबन ही कूँ देत है॥
"सुन्दर" कहत, विश्वास क्यू न राखे शठ।
वेर-वेर समझाय, कह्यो केती वेर है॥१॥

काहे कूँ दौरत है दशहुँ दिशि,
तू नर देख कियो हरिजू को।
बैठि रहे दुरिके मुख मूँदि,
उघारत दाँत खवाइहि टूको।
गर्भ थके प्रतिपाल करी जिन,
होइ रह्यो तबही जड मूको।
"सुन्दर" क्यूँ बिल्लात फिरे अब,
राख हृदे विश्वास प्रभु को॥२॥

सारांश यह, कि बुद्धिमान को दुनिया के घमण्डी लोगों की खुशामद छोड, केवल उसकी खुशामद और नौकरी करनी चाहिये, जिस के दिल में न घमण्ड है और न क्रूरता। जो उसकी शरण मे जाता है, उसी की वह प्रतिपालना करता और उसके दुख दूर करने को हाजरा हुजूर खडा रहता है। मनुष्य! तेरी जिन्दगी अढाई मिनट की है। इस अढाई मिनट की जिन्दगी को वृथा बर्बाद न कर। इसे खतम होते देर न लगेगी। राजाओं और अमीरों को सेवा-टहल और लल्लो-चप्पो में यह शीघ्र ही पूरी हो जायगी और उनसे तेरी कामना भी सिद्ध न होगी। यदि तू सबका आसरा छोड, जगदीश की ही चाकरी करेगा, तो निश्चय ही तेरा भला होगा—तेरे दुखों का अवसान हो जायगा, तुझे फिर जन्म लेकर घोर कष्ट न सहने होंगे, तुझे नित्य और चिरस्थायी शान्ति मिलेगी।

अरे ! तू सारी चतुराई और चालाकियों को छोड़ कर, एक इस चतुराई को कर, क्योंकि यही चातुरी सच्ची चातुरी है । जो जगदीश को प्रसन्न कर लेता है, वही सच्चा चतुर है । कहा है —

या राका शशि-शोभना गतघना सा यामिनी यामिनी ।
या सौन्दर्य्य-गुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी ।
या गोविन्द-रस-प्रमोद मधुरा सा माधुरी माधुरी ।
या लोकद्वय साधनी तनभृतां सा चातुरी चातुरी ॥

मेघावरणशून्य पूर्ण-चन्द्रमा से शोभायमान जो रात्रि है, वही रात्रि है । जो सुन्दरी है, गुणवती है और पति में भक्ति रखनेवाली है, वही कामिनी कामिनी है । कृष्णके प्रेम के आनन्द से मनोहर मधुरता ही मधुरता है । शरीरधारियों का दोनो लोकों में उपकार करनेवाली जो चतुराई है, वही चतुराई है ।

दोहा ।

नृप सेवा में तुच्छ फल, बुरी कालकी व्याधि ।
अपनो हित चाहत कियो, तौ तू तप आराधि ॥५३॥

53 Masters are not easily pleased and kings are restless in mind like untrained horses We have great desires and we still cherish in our mind the hope of reaching the great goal of salvation. The body is susceptible to old age and life itself is liable to be destroyed by Death O friend, there is no better thing in this world for a wise man than practising Penance

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला
आयुर्वायुविघट्टताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भङ्गुरम् ॥
लोला यौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥५४॥

देहधारियों के भोग—विषय सुख—सघन बादलों में चमकने वाली बिजली की तरह चञ्चल हैं। मनुष्यों की आयु या उम्र हवा से छिन्न-भिन्न हुए बादलों के जल के समान क्षणस्थायी या नाशमान् है। जवानी की उमङ्ग भी स्थिर नहीं है। इसलिये बुद्धिमानो, धैर्य्य से चित्त को एकाग्र करके उसे योगसाधन में लगाओ ॥५४॥

संसार और संसार के सारे पदार्थ नाशमान और असार हैं। यहाँ जो दिखाई देता है वह स्थिर न रहेगा। यह जो अथाह जल से भरा हुआ समुन्दर दिखाई देता है, किसी दिन मरुस्थल में परिणत हो जायगा, पानी की एक बूँद नहीं मिलेगी। यह बागीचा जो आज इन्द्र के बगीचे की बराबरी कर रहा है, जिसमें हज़ारों तरह के फूलों के वृक्ष लग रहे हैं, हौज़ बने हुए हैं, छोटी-छोटी नहरें काटी हुई हैं, संगमरमर और संगमूसा के चबूतरे बने हुए हैं, बीच में इन्द्र-भवन के जैसा महल खड़ा है, किसी दिन उजाड़ हो जायगा, इसमें स्यार, लोमड़ी और जरख प्रभृति पशु बसेरा लेंगे। यह जो सामने महलों की नगरी दीखती है, जिसमें हज़ारों दुमज़िले, तिमज़िले, चौमज़िले

और सतमंज़िले आलीशान मकान खड़े हुए आकाश को चूम रहे हैं, जहाँ लाखों मनुष्यों के आने-जाने और काम-धन्धा करने के कारण पीठ से पीठ छिलती है, किसी दिन यहाँ घोर भयानक वन हो जायगा। मनुष्यों के स्थान में सिंह, बाघ, हाथी, गैंडे, हिरन और स्यार प्रभृति पशु आ बसेंगे। और तो क्या— यह सूर्य, जो अपने तेज से तीन लोक में प्रकाश फैलाता है, अन्धकार-रूप हो जायगा। यह अमृत से पूर्ण सुधाकर— चन्द्रमा भी शून्य हो जायगा। इसकी शीतल चाँदनी न जानें कहाँ विलीन हो जायगी। हिमालय और सुमेरु जैसे पर्वत एक दिन मिट्टी में मिल जायेंगे। यह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी शून्य हो जाँयगे। सारा जगत् नाश हो जायगा। ये स्त्री पुत्र और रिश्तेदार न जाने कहाँ छिप जायँगे। युगों की सहस्र चौकड़ियों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। उस दिन के पूरे होते ही प्रलय होती है। तब यह जगत् की रचना करने वाला ब्रह्मा भी नाश हो जाता है। आज तक अनगिन्ती ब्रह्मा हुए। उन्होंने जगत् की रचना की और अन्त में नष्ट होगये। जब हमारे पैदा करनेवाले का यह हाल है, तब हमारी क्या गिन्ती?

यह काया,—जिसे मनुष्य अपना सर्व्वस्व समझता है, इसे मल-मल कर धोता, इत्र-फुलेल से सुवासित करता, नाना प्रकार के रत्नजटित, मनोहर गहने पहनता, कष्ट से बचने और सुखी होने के लिये नरम-नरम मखमली गद्दों पर सोता, पैरों

को तकलीफ से बचाने के लिए जोडी-गाडी या मोटर में चढता है,—एक दिन नाश हो जायगी, पाँच तत्वो से बनी हुई काया पाँच तत्वों में ही लीन हो जायगा। जिस तरह पत्ते पर पडी हुई जल की बूँद चणस्थायी होती है, उसी तरह यह काया चणभंगुर है। दीपक और बिजली का प्रकाश आता-जाता दीखता है, पर इस काया का आदि-अन्त नही दीखता। यह काया कहाँ से आती है और कहाँ जाती है? जिस तरह समुद्र में बुदबुदे उठते और मिट जाते है, उसी तरह शरीर बनते और चणभर में नष्ट हो जाते है। सच तो यह है कि, यह शरीर बिजली की चमक और बादल की छाया की तरह चचल और अस्थिर है। जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन मौत पीछे पड गई, अब वह अपना समय देखती है, और समय पूर्ण होते ही प्राणीको नष्ट कर देती है।

जिस तरह जलकी तरगें उठ-उठ कर नष्ट हो जाती हैं, उसी तरह लक्ष्मी आकर चण में विलीन हो जाती है। जिस तरह बिजली चमक कर गायब हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मी दर्शन देकर गायब हो जाती है। हवा और चपला को रोकना अत्यन्त कठिन है, पर शायद कोई उन्हें रोक सके, आकाश का चूर्ण करना अतीव कठिन है, पर शायद कोई आकाश को भी चूर्ण करने में समर्थ हो जाय, समुद्र को भुजाओं से तैरना बहुत कठिन है, पर शायद कोई तैर कर उसे भी पार कर सके, इतने असम्भव काम शायद कोई सामर्थ्यवान् करले, पर चचला लक्ष्मी

को कोई भी स्थिर नहीं कर सकता। जिस तरह अञ्जलि में जल नहीं ठहरता, उसी तरह लक्ष्मी भी किसी के पास नहीं ठहरती। जिस तरह वेश्या एक पुरुष से राज़ी नही रहती, वह नित नवीन पुरुषों को चाहती है, उसी तरह लक्ष्मी भी किसी एक के पास नही रहती, वह नित नये पुरुषो को भजती है। इसीसे लक्ष्मी और वेश्या दोनो को चपला कहते हैं।

जिस तरह सासारिक पदार्थ लक्ष्मी और विषय-भोग तथा आयु चञ्चल और चणस्थायी हैं। वैसे ही यौवन या जवानी भी चणस्थायी है। जवानी आते दीखती है, पर जाते मालूम नहीं होती। हवा की अपेक्षा भी तेज़ चाल से दिन-रात होते हैं और उसी तेजी से जवानी झट खतम हो जाती है और बुढापा आ जाता है। उस समय विस्मय सा होने लगता है। यह शरीर तभी तक सुन्दर और मनोहर लगता है, जब तक बुढापा नहीं आता। बुढापा आते ही वह उछल-कूद, वह अकड-तकड, वह चमक-दमक, वह सुर्खी, वह छातियों का उभार, वह नयनों का रसीलापन न जाने कहाँ गायब हो जाता है। असल में यौवन के लिये बुढापा राहु है। चन्द्रमा को जब तक राहु नहीं ग्रसता, तब तक प्रकाश रहता है, उसी तरह जब तक बुढापा नहीं आता, तभी तक शरीर का सौन्दर्य्य और रूप-लावण्य बना रहता है। प्राणियों को बाल्यावस्था के बाद युवावस्था और युवावस्था के बाद वृद्धावस्था अवश्य आती है।

युवावस्था सदा नहीं रहती, अच्छी तरह गहरा विचार करने से जवानी क्षण भर की मालूम होती है।

संसार में जो नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे मनभावन पदार्थ दिखाई देते हैं, ये सभी नाशमान् हैं। ये सब वास्तव में कुछ भी नहीं, केवल मनकी कल्पना से इनकी सृष्टि की गई है। मूर्ख ही इनमें आस्था रखते हैं, ज्ञानी नहीं।

इस जगत् में ज्ञानी का जीवन सार्थक और अज्ञानी का निरर्थक है। अज्ञानी के जीने से कोई लाभ नहीं। उसके जीवन से अर्थ-सिद्धि नहीं होती। वह वृथा सुअवसर गँवाता है। मूर्ख मोह के मारे नहीं समझता, कि ऐसा मौका बड़ी मुश्किल से मिला है। इस बार चूके तो खैर नहीं। अज्ञानी अपनी अज्ञानता या मोह के कारण नाशमान् और दुःखों के मूल विषयों की ओर दौड़ता है, पर आयु, यौवन और विषयों की क्षणभंगुरता पर ध्यान नहीं देता। यह माया-मोह नहीं तो क्या है? सुभाषितावलि में लिखा है —

चला विभूतिः क्षणभंगी यौवनं
कृतान्तदन्तान्तर्वर्त्ति जीवितम्।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम्॥

विभूति चञ्चल है, यौवन क्षणभंगुर है, जीवन काल के दाँतों में है, तोभी लोग परलोक-साधन की परवाह नहीं करते। मनुष्यों की यह चेष्टा विस्मयकारक है।

फिरदौसीने "शाहनामे" में कहा है —

"मनुष्य इस नापायेदार दुनियाँ से क्यों दिल लगाते हैं, जबकि मौत का नक्कारा दरवाज़े पर बज रहा है ?"

मनुष्यो ! होश करो, गफलत की नींद छोडो। वह देखिये ! मौत आप का द्वार खट-खटा रही है। अब तो मिथ्या ससार का मोह त्यागो। ये जो स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता-पिता आदिक प्यारे और सम्बन्धी दिखाई देते हैं, ये उसी वक्त तक हैं, जब तक कि शरीर नाश नही हुआ है। शरीर के नाश होते ही ये नज़र भी न आयेंगे। यह भी समझ में न आवेगा कि, कहाँ गये और कहाँ से आये थे। यह बन्धु-बान्धवों का मिलना, उन यात्रियो या मुसाफिरों की तरह है, जो भिन्न-भिन्न स्थानो से सफर करते हुए एक वृक्ष के नीचे आकर ठहर जाते हैं और क्षण-भर विश्राम लेकर फिर अपनी-अपनी राह पर चल देते हैं या उन मुसाफिरों की तरह है, जो अनेक स्थानो से आकर एक सराय या धर्मशाला में ठहरते हैं, और फिर कोई दो दिन और कोई चार दिन रहकर, अपनी-अपनी जगह को चल देते हैं। उन वृक्षो के नीचे चन्द मिनट ठहरने वालों अथवा सराय के मुसाफिरो का आपस मे प्रीति करना क्या अक्लमन्दी है ? जिनका क्षण भर का साथ है, उनमे दिल फँसाना दु ख मोल लेना है। उनके अलग होते ही मन में भयानक वेदना होगी, अत. उनके साथ कोई सरोकार न रखना चाहिये। यह ससार दो स्थानों के बीच का स्थान है। यात्री यहाँ आकर क्षण-भर

के लिए आराम करते और फिर आगे चले जाते हैं। ऐसे यात्रियो का आपस में मेल बढाना, एक दूसरे की मुहब्बत के फन्दे में फँसना, सचमुच ही दु.खोत्पादक है। समझदार लोग मुसाफिरो से दिल नही लगाते—उनसे प्रेम नही करते—उन्हे अपना-पराया नही समझते। न उन्हें किसी से राग है न द्वेष। वे सबको समदृष्टि या एक नज़र से देखते हुए साहाय्य करते और दूसरों का कष्ट निवारण करते है, पर उनसे प्रीति नही करते, लेकिन मूर्ख लोग स्त्री, पुत्र, माता, पिता प्रभृति को अपना प्यारा समझते हैं और दूसरों को पराया समझते है। इस जगत् में न कोई अपना है न पराया। यह जगत् एक वृक्ष है। इस पर हज़ारों-लाखो पक्षी भिन्न-भिन्न स्थानों से आकर रात को बसेरा लेते और सवेरे ही अपने-अपने स्थानो को उड जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से आये पक्षियों को क्या रात भर के साथ के लिये आपस में नाता जोडना चाहिये ? हरगिज़ नहीं। दूसरों से सम्बन्ध जोडना, किसी को अपना पुत्र और किसी को अपनी स्त्री एव किसी को अपनी माँ या बहन समझ कर स्नेह करना तो मूर्खता है ही। स्नेह तो अपनी काया से भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह भी क्षणभगुर है, सदा साथ न रहेगी।

महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं,-

बालू के मन्दिर माँहि, बैठि रह्यो
राखत है जीवन की आश, केऊ

पल पल छीजत, घटत जात घरी-घरी ।
विनशत वेर कहा, खबर न छिन की ॥
करत उपाय, झूठे लेन-देन खान-पान ।
मूसा इत उत फिरे, ताकि रह्यो मिनकी ॥१॥

देह सनेह न छाँडत है नर ।
जानत है थिर है यह देहा ॥
छीजत जात घटे दिन ही दिन ।
दीसत है घट को नित छेहा ।
काल अचानक आय गहे कर ।
ठाह गिराइ करे तन खेहा ॥
"सुन्दर" जानि यह निहचै धरि ।
एक निरजनसूं कर नेहा ॥२॥

लक्ष्मी चणभंगुर है। समुद्र में जिस तरह तरगे उठती और विलीन हो जाती हैं, उसी तरह लक्ष्मी से विषय-भोग उपजते और नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह चपला की चमक स्थिर नहीं रहती उसी तरह भोग भी स्थिर नही रहते। विषयों के भोगने से तृष्णा घटती नहीं, बल्कि बढती है। तृष्णा के उदय होने से पुरुष के सब गुण नष्ट हो जाते हैं। दूध में मधुरता उसी समय तक रहती है, जब तक उसे सर्प नहीं छूता, पुरुष में गुण भी उसी समय तक रहते हैं, जब तक तृष्णा का स्पर्श नहीं होता। अत बुद्धिमानो। अनित्य, नाशमान् एव

दुःखो की खानि, विष-समान विषयों से दूर रहो, क्योंकि इन में ज़रा भी सुख नहीं। जब तक विषय-भोग रहेंगे, तभी तक आप सुखी रहेंगे, पर एक-न-एक दिन उनसे आप का वियोग अवश्य होगा। उस समय आप तृष्णा की आग में जलोगे और बारम्बार जन्म लोगे और मरोगे, अतः इन्द्रियों को वश में करो और एकाग्र चित्त से परमात्मा का भजन करो, क्योंकि विषयों के भोगने से नरकाग्नि में जलोगे और जन्म-मरण के घोर सकट सहोगे, पर परमात्मा के भजन या योगसाधन से नित्य सुख भोगते हुए परमानन्द में लीन हो जाओगे।

बहुत से मनुष्य मन को तो एकाग्र नहीं करते, पर दिखावा माला जपते है, गोमुखी में सडा-सड हाथ चलाते है, पाठ करते है और कारोबार की बातें करते रहते है अथवा स्त्री-बच्चों के झगडे निपटाया करते है। ऐसे भजन करने और माला फेरने से कोई लाभ नहीं। इस तरह समय वृथा नष्ट होता है। मन के एक ठौर हुए बिना सब वृथा है। महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है'—

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौरि।
सहजे हीरा ऊपजे, जो मन आवे ठौरि॥
माला फेरत युग गया, पाया न मनका फेर।
करका मनका छाँडिके, मनका मनिका फेर॥
मूँड मुडावत दिन गया, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहो क्या करे, मन के औरे काम॥

तन को योगी सब करें, मन को बिरला कोय ।
सहजे सब विधि पाइये, जो मन योगी होय ॥

जितनी समुद्र की लहरें है, उतनी ही मन की दौड़ है। अगर मन ठिकाने आजाय, उसमें समुद्र की सी तरङ्गें न उठें, तो सहज में हीरा पैदा हो जाय, यानी परमात्मा मिल जाय।

माला फेरते-फेरते युग बीत गया, पर मनका फेर न मिला, अब हाथ का मनिया छोडकर मनका मनिया फेर। हाथ की माला फेरने से कोई लाभ नहीं, लाभ है मन की माला फेरने में। मन लगाकर एक बार भी ईश्वर को याद करने से बडा फल मिलता है, पर चञ्चल चित्त से दिन-रात माला फेरने से कुछ भी नही मिलता।

मूँड-मुँडाते अनेक दिन हो गये, पर आज तक भगवान् न मिले। मिले कैसे ? मन राम में लगे, तब तो राम मिलें। मन तो विषय-भोगो में लगा रहता है, फिर राम कैसे मिलें ? जिस तरह रवि और रजनी एकत्र नही होते, उसी तरह काम और राम एकत्र नही मिलते। जहाँ काम है, वहाँ राम नही।

तन को सब योगी करते हैं, पर मन को कोई ही योगी करता है। अगर मन योगी हो जाय, तो सहज मे सिद्धि मिल जाय। लोग गेरुवे कपडे पहन लेते है, जटा रखा लेते हैं, हाथ मे कमण्डल और बगल में मृगछाला ले लेते हैं। इस तरह योगी बन जाते हैं, पर मन उनका ससारी भोगों में लगा रहता है, इसलिये उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—ईश्वर-दर्शन नहीं

होता। अगर वे लोग कपडे चाहें गृहस्थों के से पहनें, गृहस्थों की तरह ही खाय-पीवें, पर मन को एक परमात्मा में रक्खें, तो निश्चय ही उन्हें भगवान् मिल जायं। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहता है, पर उसमें आसक्ति नहीं रखता, जल में कमल की तरह रहता है, उसकी मुक्ति निश्चय ही हो जाती है, पर जो सन्यासी होकर विषयों में आसक्ति रखता है, उसको मोक्ष नहीं होती। राजा जनक गृहस्थी में रहते थे, सब तरह के राजभोग भोगते थे, पर भोगों मे उनको आसक्ति नहीं थी, इसी से उनको मुक्ति हो गई।

शिक्षा—विषय-भोग, आयु और यौवन को अनित्य और क्षणभंगुर समझ कर इनमें आसक्ति न रक्खो और मन को एकाग्र करके परमात्मा का भजन करो, तो जन्म-मरण से छुटकारा मिल जायगा और परमानन्द की प्राप्ति हो जायगी। कबीर दास जी कहते हैं—

कहा भरोसो देह को, विनसि जाय छिन माँहि।
श्वाँस श्वाँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाहि॥

कुण्डलिया।

जैसे चचल चचला, त्योंहीं चचल भोग।
तैसेही यह आयु है, ज्यों घट पवन प्रयोग।
ज्यों घट पवन प्रयोग, तरल त्योंही यौवन तन।
विनसत लगत न बार, गहत ह्वै जात ओसकन।

देख्यौ दुःसह दुःख, देहधारिन को ऐसे ।
साधत सन्त समाधि, व्याधि सो छूटत जैसे ॥५४॥

54 Enjoyments are short lived like the flash of lightning in the midst of thick clouds Life is transitory like the water vapors present in the clouds which are scattered away by the blowing of a heavy gale Men's attempts to preserve their youth for a long time are also futile Considering all these things, O wise men! it is only proper that you direct your attention at once to Yoga which is easy to practise provided you are possessed of the virtues of perseverance and meditation,

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजमुखहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ॥
द्वारंद्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो
मानी प्राणीसधन्योनपुनरनुदित तुल्यकुल्येषुदीन ॥५५॥

यह क्षुधार्त्त किन्तु मानी पुरुष, जो अपने पेटरूपी खड्डे के भरने के लिये हाथ में पवित्र साफ कपडे से ढका हुआ ठिकरा लेकर वन-वन और गाँव गाँव घूमता है और उनके दरवाजे पर जाता है, जिनकी चौखट् न्यायत विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा कराये हवन के धूएँ से मलिन हो रही हैं, अच्छा है, किन्तु वह अच्छा नहीं, जो समान कुलवालों के यहाँ जाकर माँगता है ॥५५॥

तुलसीदासजी ने कहा है—

घरमें भूखा पड रहे, दस फ़ाके हो जायँ।
तुलसी भैया-बन्धु के, कबहुँ न माँगन जाय ॥

और भी किसी ने कहा है—

वर वन व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम् ।
द्रुमालयः पक्कफलाम्बु भोजनम् ।
तृणानि शय्या परिधान वल्कलम् ।
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥

व्याघ्र और हाथियो से भरे जङ्गल मे रहना भला, वृक्षों के नीचे बसना भला, पके-पके फल खाना और जल पीना भला, घास पर सो रहना और छालों के कपडे पहन लेना भला, पर भाइयो के बीच में धनहीन होकर रहना भला नहीं।

सोरठा।

विप्रन के घर जाय, भीख माँगिवो है भलो।
बन्धुन सों सिरनाय, भोजनहु करिबो बुरो ॥५५॥

55 *Worthy of all praise is the hungry but proud man who for the sake of filling the empty pit of his stomach wanders from village to village or from forest to forest, holding in his hand a broken earthen vessel covered with a clean piece of cloth, begging at doors the frames of which have been blackened by the smoke rising from the oblation fires of learned Brahmans, but it is not proper to demean himself by asking people of equal birth for charity*

चाण्डाल किमय द्विजातिरथवाशूद्रोथ किं तापस
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वर कोऽपि किम् ॥

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धा पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिन ॥५६॥

यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है ? यह शूद्र है या तपस्वी है ? क्या यह तत्वविद् योगीश्वर है ?—लोगों द्वारा ऐसी अनेक प्रकार की संशय और तर्कयुक्त बातें सुनकर भी, योगी लोग न नाराज होते हैं न खुश , वे तो सावधान चित्त से अपनी राह-राह चले जाते हैं ॥५६॥

योगिजन लोगोंकी बुरी-भली बातों का खयाल नहीं करते, कोई कुछ भी क्यों न कहा करे। चाहे उन्हें कोई शूद्र कहे, चाहे ब्राह्मण, चाहे भंगी और चाहे तपस्वी , चाहे कोई निन्दा करे, चाहे स्तुति , वे अच्छी बात से प्रसन्न और बुरी बात से अप्रसन्न नहीं होते। सच्चे महात्मा हर्ष-शोक, दु ख-सुख और मान-अपमान सब को समान समझते हैं।

योगेश्वर कृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में कहा है—

दु खेष्वनुद्विग्नमना , सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो दुःखके समय दु खी नहीं होता ; जो राग, भय और क्रोध से रहित है, वह "स्थितप्रज्ञ" मुनि है। किसी की बात की परवा न करनी चाहिये, हाथी की तरह रहना चाहिये। हाथी के पीछे हजारों कुत्ते भूँकते हैं, पर वह उनकी तरफ देखता भी नहीं। महात्मा कबीरदास कहते हैं —

हस्ती चढ़िये ज्ञानके, सहज दुलीचा डारि।
स्वान-रूप संसार है, भूसनदे, झकमारि॥
कबिरा काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ डरिये नहीं, कूकर भूसे हजार॥
जो बड़ेन को लघु कहौ, नहि रहीम घट जाहि।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहि॥

और भी—

सज्जन चित्त कबहुँ न धरत, दुर्जन जन के बोल।
पाहन मारे आमको, तउ फल देत अमोल॥

दोहा।

विप्र शूद्र योगी तपी, सुपच कहत कर ठोक।
सबकी बातें सुनत हों, मोकों हर्ष न शोक॥५६॥

56 *Yogis or ascetics are neither angry nor pleased with the men who, when they are going on there way, accost them with various epithets such as, "Is he a low-born fellow?" or "Is he one of a twice born caste?" or "Is he a Shudra?" or "Is he one engaged in the practice of Tapa?" or "Is he a great Yogi, wise in the realisation of Truth?"*

सखे धन्या केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगता॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगा
नयन्ते ये रात्रिसुकृतचयचित्तैकशरणा॥५७॥

हे मित्र ! वे पुरुष धन्य हैं, जो शरद् के चन्द्रमा की चाँदनी से सफेद हुए आकाशमण्डल से सुन्दर और मनोहर रात को वन में बिताते हैं, जिन्होंने संसार बन्धन को काट दिया है, जिनके अंतःकरण से भयानक सर्प-रूपी विषय निकल गये हैं और जो सुकर्मों को ही अपना रक्षक समझते हैं ॥५७॥

वे ही लोग सुखी हैं, वे ही धन्य हैं, जो शरद् की चाँदनीकी मनोहर रात में वनमें बैठे हुए परमात्मा का भजन करते हैं जिन्होंने संसार के जञ्जालों को काट दिया है, जिन्होंने आशा-तृष्णा राग-द्वेष प्रभृति को त्याग दिया है, जिनके भीतरी दिल से विषय रूपी विषैले सर्प भाग गये हैं, यानी जिन्होंने विषयों को विष की तरह दूर कर दिया है, जिनका चित्त केवल पुण्य और परोपकार में ही लगा रहता है।

हमें संसार की प्रत्येक चीज से परोपकार की शिक्षा मिलती है । वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ आप जल नहीं पीती, सूरज और चाँद अपने लिये नहीं घूमते, बादल अपने लिये मेह नहीं बरसाते,—ये सब पराये लिए कष्ट सहते हैं । हातिम और विक्रम ने पराये लिये नाना प्रकार के कष्ट उठाये, दधीचि और शिविने परोपकार के लिये अपने-अपने शरीर भी दे दिये, हरिश्चन्द्र ने पराये लिये घोर दुःसह विपत्ति भोगी । जिनका जीवन परोपकार में बीतता है, उन्हींका जीवन धन्य है । शेख़ सादी ने गुलिस्ताँ में कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐहसाँ।
चे फ़र्के़ज़ आदमी ता नक्शदीवार॥

यदि मनुष्य में परोपकार करने की इच्छा नहीं है, तो उसमें और दीवार पर खिंचे हुए चित्र में क्या फ़र्क है?

जिससे प्राणी मात्र का भला हो, वही मनुष्य धन्य है। उसीकी माँका पुत्र जनना सार्थक है। रहीम कवि कहते हैं:—

बड़े दीनको दुख सुने, देत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु "रहीम" पहिचानि॥
धनि "रहीम" जल पङ्क को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

दोहा ।

ते नर जगमें धन्य हैं, शरदशुभ्र निशि माहिं ।
तोडे बन्धन जगत के, मनते विषयन काहिं ॥५७॥

सोरठा ।

विषय सर्पको मारि, चित लगाय शुभ कर्म में ।
पुण्यकर्म शुभधारि, त्यागे सब मन वासना ॥५८॥

57 *O friend! happy are those who spend their nights made beautiful by the bright autumn moon light spreading over the expanse of the heavens, seated in a corner of a forest, their tight worldly bonds broken asunder, the poison of their snake like passions removed from inside their minds and their hearts resting under the shelter of a multitude of good actions done in the course of their life*

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थ गहनादायासकादाश्रया-
च्छ्रेयोमार्गमशेषदु खशमनव्यापारदक्षक्षणात् ।
शान्तं भावमुपैहि सत्यज निजा कल्लोललोला गति
मा भूयो भज भगुरा भवरति चेत प्रसिदाधुना ॥५८॥

हे चित्त ! अब विश्राम ले, इन्द्रियों के सुख सम्पादन के लिये विषयों की खोज में कठोर परिश्रम न कर , आन्तरिक शान्ति की चेष्टा कर, जिससे कल्याण हो और दु खों का नाश हो , तरङ्ग के समान चञ्चल चाल को छोड दे , रुसारी पदार्थों में और सुख न मान , क्योंकि ये असार और नाशमान् हैं । बहुत कहना व्यर्थ है, अब तू अपने आत्मा में ही सुख मान ॥५८॥

अरे दिल । अब तू इन्द्रियो के लिए विषय-सुखोंकी खोज मे मत भरम, उनके लिए तकलीफ न उठा, शान्त हो जा, उनमें कुछ भी सुख नहीं है, वे तो विषसे भी बुरे और काले नाग से भी भयङ्कर है । अरे । अब तो मेरा कहना मान और अपनी चालो को छोड। देख, तेरे सिर पर काल मँडरा रहा है । वह एक ही वारमें तुझे निगल जायगा । अरे भैय्या, ये इन्द्रिया बडी खराब है, इनमें दया-मया नहीं है, यह शैतान की तरह कुराह पर ले जाती हैं। तू इनसे सावधान रह और इनके भुलावे में न आ। अब शान्त हो और कष्ट सहना सीख। अपनी चचल चाल छोड, जगत्को असार और स्वप्नवत् समझ। इस जञ्जाल से अलग हो। बरावर इसी की इच्छा न कर।

efforts in acquiring the object of sensual pleasures, have recourse to internal peace which is the only way to bliss and which removes all sorts of affictions, give up thy current lil e restless ness and never agatu take pleasure in worldly things which are liable to destruction In short, do thou now be pleased with thy own self

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्यानवचल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठयामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसा यत्रेश्वराणा सदा
चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरा नामापि न श्रूयते ॥५६॥

ऐ प्यारी बुद्धि ! अब तू पवित्र फलमूलों से अपनी गुजर कर, बनी-बनाई भूमि-शय्या, और वृक्षों की छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर। उठ, हम तो वन को जाते हैं। वहाँ उन मूर्ख और तङ्ग-दिल अमीरों का नाम भी नहीं सुनाई देता, जिन की जबान धन की बीमारी के कारण उनके वश में नहीं है ॥५६॥

जिन धनवानों की जबान में लगाम नहीं है, जो अपनी धनकी बीमारी के कारण मुँह से चाहे जो निकाल बैठते हैं, ऐसे मदान्ध और नीच धनी जगलों में नहीं रहते, इसलिए बुद्धिमान को वहाँ चला जाना चाहिये। वहाँ काहे का अभाव है ? खाने को फलमूल है, पीने को शीतल जल है, रहने को वृक्षों की शीतल छाया है, पहनने को वृक्षों की छाल है, सोने को पृथ्वी है। वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है, किन्तु और सभी जीवनधारणोपयोगी पदार्थ हैं।

अपने आत्मा में ही मग्न हो। इस तरह अवश्य तेरा कल्याण होगा।

कल्याण कैसा ? जब तू ज्योतिःस्वरूप आत्माको देख लेगा, तब तू उसी में सन्तुष्ट रहेगा, उससे कभी न डिगेगा, उसके आगे और सब लाभ तुझे हेच जँचेंगे। योगेश्वर कृष्णने ऐसी ही बात गीता के छठे अध्याय में कही है। उस सुखको सब नहीं जान सकते, जो अनुभव करता है वही जानता है। उसे कोई कह कर बता नहीं सकता। कबीरदास कहते हैं:—

ज्यों नर नारी के स्वादको, खसी नहीं पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुख को, अज्ञानी नहीं जान॥

स्त्री-पुरुष के सुख को जैसे हीजड़ा नहीं जान सकता, वैसे ही ज्ञानी के सुख को अज्ञानी नहीं जान सकता।

छप्पय।

एरे चित ! कर कृपा, त्याग तू अपनी चालहि।
शिर पर नाचत खड़्यो, जान तू ऐसे कालहि।
ये इन्द्रियगण निठुर, मान मत इनको कहिबो।
शान्तभाव कर ग्रहण, सीख कठिनाई सहिबो।
निजगति तरग सम चपल तजि, नाशवान जग जानिये।
जनि करहु तासु इच्छा कछु, शिव स्वरूप उर आनिये॥५८॥

58 *O mind, do thou take rest now from thy laborious*

fforts in acquiring the object of sensual pleasures, have recour-: to internal peace which is the only way to bliss and which emoves all sorts of afflictions, give up thy current like restless-ness and never again take pleasure in worldly things which are liable to destruction In short, do thou now be pleased with thy own self

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसा यत्रेश्वराणा सदा
चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरा नामापि न श्रूयते ॥५६॥

ऐ प्यारी बुद्धि ! अब तू पवित्र फलमूलों से अपनी गुजर कर, बनी-बनाई भूमि-शय्या, और वृक्षों की छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर। उठ, हम तो वन को जाते हैं। वहाँ उन मूर्ख और तङ्ग-दिल अमीरों का नाम भी नहीं सुनाई देता, जिन की जबान धन की बीमारी के कारण उनके वश में नहीं है ॥५६॥

जिन धनवानों की ज़बान में लगाम नहीं है, जो अपनी धनकी बीमारी के कारण मुँह से चाहे जो निकाल बैठते हैं, ऐसे मदान्ध और नीच धनी जगलों में नहीं रहते, इसलिए बुद्धिमान को वहाँ चला जाना चाहिये। वहाँ काहे का अभाव है ? खाने को फलमूल हैं, पीने को शीतल जल है, रहने को वृक्षों की शीतल छाया है, पहनने को वृक्षों की छाल है, सोने को पृथ्वी है। वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है, किन्तु और सभी जीवनधारणोपयोगी पदार्थ हैं।

जो आशा को त्याग देंगे, वह तो धनियों के दास क्यों होंगे? पर धनियों को भी इतराना न चाहिये। यह धन सदा उनके पास न रहेगा। इसे वे अपने साथ न ले जायँगे। सम्भव है, यह उनके सामने ही विलाय जाय। फिर ऐसे चञ्चल धन पर अभिमान किस लिये?

गिरधर कवि कहते हैं—

कुण्डलिया।

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारिको, ठाऊँ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजे।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरधर कविराय, अरे यह सब घट दौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥

किसी को कड़वी और बुरी लगनेवाली बात न कहनी चाहिये। ज़बान का ज़ख्म तीर के ज़ख्म से भी भारी होता है। तीरका जख्म मिट जाता है, पर ज़बान का जख्म नहीं मिटता। इस जगत् में जो जैसा करता है, वह वैसा ही पाता है। जो जौ बोता है वह जौ काटता है, और जो गेहूँ बोता है, वह गेहूँ काटता है, जो दूसरों का दिल दुखाता है, उसका दिल भी दुखाया जायगा, जो जैसी कहेगा वह वैसी सुनेगा। उस्ताद जौक़ ने कहा है—

बद न बोले जेर गर्दू, गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा, जैसी कहे वैसी सुने॥

आस्मान के नीचे किसी को बुरी बात जबान से न निकालनी चाहिये। यह तो मठके अन्दर की आवाज़ है, जैसी कहोगे उसकी प्रतिध्वनि के रूपमें वैसी ही सुनोगे। और भी एक कविने कहा है—

ऐसी बानी बोलिये, मनका आपा खोय।
औरनको शीतल करे, आपौ शीतल होय॥

तुलसीदासजी ने कहा है —

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

धनी और निर्धन का भेद तभी तक है, जब तक कि मनुष्य ज़िन्दा है, मरने पर सभी बराबर हो जाते हैं।

किसी ने कहा है—

कितने मुफलिस होगये, कितने तवगर होगये।
खाक में जब मिलगये, दोनों बराबर होगये॥

दोहा।

बकल वसन फल असन कर, करिहौं बन विश्राम।
जित अविवेकी नरन को, सुनियत नाहीं नाम॥५९॥

59 *O thou my dear Reason, be now contented with the wholesome roots and fruits of the forest for food with the bare earth for a bed and with the bark of trees for clothing Ris and let us go to the forest where even the names of foolish and narrow-minded wealthy men who have no control over their tongue on account of their diseased and ignorant minds, is not heard*

मोह मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु ॥
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥६०॥

ऐ चित्त! अब मोह छोड और शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले भगवान् शिव से प्रीति कर और गङ्गा किनारे के वृक्षों के नीचे विश्राम ले। देख, पानी की लहर, पानी के बबूले, बिजली की चमक, आग की लौ, स्त्री, सर्प, और नदी-प्रवाह की स्थिरता का कोई विश्वास नहीं, क्योंकि ये सातों चञ्चल हैं ॥६०॥

संसार का मोह त्यागो।



मनुष्यो! आप लोग मोह-निद्रा में पड़े हुए क्यों अपनी दुर्लभ मनुष्य देह को वृथा गँवा रहे हैं? आप को यह देह इसलिये नहीं मिली है कि, आप इस झूठे संसार से मोह करें स्त्री-पुत्र और धन दौलत में भूले रहें, बल्कि इसलिए मिली है

कि, आप इस देह से दुर्लभ मोक्ष-पद को प्राप्ति करें। पर संसार की ऐसी गति ही है कि, वह अच्छे कामों को त्याग कर बुरे काम करता है। वजह यह है कि, मोहान्ध अज्ञानी पुरुष को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं।

जो नारी नरक-कूप के समान गन्दगी से भरी है, जो सब तरह से अपवित्र और घृणायोग्य है, जिसमें प्रीति का नामो-निशान भी नहीं है, जो केवल अपने स्वार्थ से पुरुष को प्यार करती है, पति के निर्धन या कर्जदार होते ही उससे प्रीति कम कर देती या उसे त्याग देती है, जो क्षण भर में परायी हो जाती है, उसी नारी को पुरुष अपनी प्राणवल्लभा कहता और उसके लिये अपनी सारी सुख-शान्ति को तिलाञ्जलि देकर मरने तक को तैयार हो जाता है। क्या यह अज्ञानता नहीं है?

कवियों ने मोहवश स्त्री के अंगों की बड़ी लम्बी-चौड़ी तारीफ की है। उसके दोनों स्तनों को किसी ने अनार, किसी ने गल्तरी अथवा दो सोने के कलशों की उपमा दी है, पर वास्तव में वे मांस के लौंदे हैं। उसकी जाँघों को केले के खम्भे से उपमा दी है, पर वे महागन्दी हैं, उन पर हर समय मूत्र या सफ़ेदा बहता रहता है। उसकी आँखों की उपमा हिरनी के बच्चे की आँखों से दी है, पर वे सर्प से भी भयानक हैं, क्योंकि सर्प के काटने से मनुष्य बेहोश होता और मरता है, पर स्त्री के तो देखनेमात्र से वह पागलसा होकर मर मिटता है। वास्तव में स्त्री सर्प से भी बुरी है। सर्प का काटा एक

बार ही मर जाता है, पर स्त्री का काटा बारम्बार मरता और जन्म लेता है। जिस तरह कदली वनका हाथी कागज की हथनी को देख उसकी इच्छा करता और शिकारियों के जाल में फँसकर, बन्धन में बँध, नाना प्रकार के दुःख झेलता है, उसी तरह जो पुरुष स्त्री की इच्छा करता है, वह बन्धन में बधता और नाश होता है। स्त्री ससारवृक्ष का बीज है, अत स्त्री-कामी पुरुष का इस ससार से पीछा नही छूटता। वह इस दुनिया में आकर, स्त्री के कारण नाना प्रकार के दुःख भोगता, चिन्ताग्नि में दिनरात जलता और अन्त में मरकर ममता और वासना के कारण फिर जन्म लेता और दुःख भोगता है।

स्त्री कामीपुरुष को जरा से लालच से अपना दास बना लेती है। कामी पुरुष स्त्री के इशारे पर उसी तरह नाचता है, जिस तरह बन्दर मदारी के इशारे पर नाचता है। वह रात दिन उसके खुश करने की कोशिशों में लगा रहता है, घर-बाहर सोते-जागते उसीकी चिन्ता रखता है, उसी के लिए धन गर्व्वित धनियों की खुशामदें करता, उनकी टेढी-सूधी सुनता और आत्मप्रतिष्ठा खोता है। इतने पर भी स्त्री की फरमायशें पूर-नहीं होती। आज वह गहना माँगती है, तो कल कपड़े माँगती है, परसों पुत्र या कन्या के विवाह की बात कहती है। कभी कहती है आज आटा नही है, कभी कहती है आज घर में तेल-नोन नही है, इसी तरह उसकी फरमायशों का अन्त

नहीं आता, पर बेचारे पुरुष का अन्त आ जाता है। स्त्री की सेवा-चाकरी से उसे इतनी भी फुरसत नहीं मिलती कि, वह क्षण-भर भी अपने बनानेवाले स्वामी की पदवन्दना कर सके। अनेक प्रकार से सेवा-टहल करने पर भी यदि पुरुष से कोई फरमायश पूरी नहीं होती, तो वह बाघिन की तरह घुर्राती है। दैवात् यदि पुरुष निर्धन हो जाता है या उसके सिर पर ऋणभार हो जाता है, तो वही सात फेरो की व्याही स्त्री उसका अनादर और उसकी मरण-कामना करती है, क्योंकि इस जगत् में धन ही की कीमत है, मनुष्य की कीमत नहीं। कहते हैं, निर्धन पुरुषको वेश्या तज देती है। वेश्या का यों नाम प्रसिद्ध है हो, पर वेद-विधि से व्याही स्त्री भी स्व-पतिको तज देती है। धन-हीन को माता, पिता, भाई, बहिन, भौजाई, नौकर-चाकर एव अन्य रिश्तेदार सभी बुरी नज़र से देखते और उसे त्याग देते हैं। ससार अर्थ—धन के वश में है। जिसके पास धन नहीं, उसका कोई नहीं। कहा है—

माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते
भृत्य कुप्यति नानुगच्छति सुत' कान्ता च नालिङ्गते।
अर्थप्रार्थनशङ्कया न कुरुतेऽप्यालापमात्र सुहृत्
तस्मादर्थमुपार्जयस्व च सखे ' ह्यर्थस्यसर्वेवशा ॥

माता निर्धन पुत्र की निन्दा करती है, बाप आदर नहीं करता, भाई बात नहीं करता, चाकर क्रोध करता है, पुत्र आज्ञा

नहीं मानता, स्त्री आलिङ्गन नहीं करती और धन माँगने के डरसे मित्र कोरी बात भी नही करता, इसलिये मित्र। धन कमाओ, क्योंकि सभी धन के वश में है।

आत्मपुराण मे कहा है '—

> दरिद्र पुरुष दृष्ट्वा नार्य कामातुरा अपि।
> स्प्रष्टु नेच्छन्ति कुणप यद्वत्कृमिदूषितम् ॥

स्त्रियाँ काम से आतुर होने पर भी, दरिद्री पति को छूना पसन्द नहीं करती, जिस तरह कीडों से दूषित मुर्दे को कोई छूना नही चाहता।

स्पष्ट हो गया कि, स्त्री ऊपर से ही सुन्दर है। भीतर से वह महागन्दी और पाषाणवत् कठोरहृदय है। जिस समय इस में निर्दयता आती है, तब यह अपने क्रीतदास की तरह सेवा करनेवाले पति और अपने उदर से निकले पुत्र के ऊपर भी दया नहीं करती। अपने स्वार्थ के लिये यह उनको भी हत्या कर डालती और नरक की राह दिखाती है, अत स्त्री के मोह में फँसना, अपने नाश का सामान करना है। जिस तरह पतंग दीपक के रूप पर मोहित होकर अपना नाश करता है, उसी तरह कामी भी स्त्री के रूप पर मुग्ध होकर अपने लोक परलोक गँवाता है—इस जन्म में घोर चिन्ताग्नि में जलता और मरने पर नरकाग्नि में भस्म होता और तडपता है।

वास्तव मे स्त्रीपुत्र आदि शत्रु हैं, पर पुरुष अज्ञानता से

इन्हें अपना मित्र समझता है। महात्मा शङ्कराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरमाला में लिखा है—"स्त्री पुत्र देखने में मित्र मालूम होते हैं, पर असल में वे शत्रु हैं।"

एक वैश्य और उसके पुत्र।

एक वैश्य ने लाखों-करोड़ों रुपये कमाये और अपने धन में से चार-चार लाख रुपये अपने पुत्रों को देकर उनको अलग-अलग दूकानें करवादीं। शेष धन उसने दीवारों में चुनवा दिया। चन्द रोज के बाद वह सख्त बीमार हो गया। उसे सन्निपात हो गया और वह आन-तान बकने लगा। लोगों ने उसका अन्त समय समझ उससे कहा—"सेठजी! बहुत धन कमाया है, इस वक्त कुछ पुण्य कीजिये, क्योंकि इस समय धर्म ही साथ जायगा, स्त्री-पुत्र धन प्रभृति साथ न जायँगे।" वैश्य का गला बन्द हो गया था, अत: वह बोल न सकता था। उसने बारम्बार दीवारों की तरफ हाथ किये। इशारों से बताया कि, इन दीवारों में धन गड़ा है, उसे निकाल पुण्य कर दो। पुत्र पिता का मतलब समझकर बोले—"पिताजी कहते हैं, जो धन था, सो तो इन दीवारों में लगा दिया, अब और धन कहाँ?" लोगों ने लड़कों की बात मान ली। वैश्य अपने पुत्रों को बेई-

मानो देखकर बहुत रोया, पर बोल न सकता था, इसलिये छटपटा-छटपटा कर मर गया। लडकों ने उसे श्मशान पर ले जाकर जला दिया। वैश्य के मन की मन ही में रह गई। इससे बढकर पुत्रों की और शत्रुता क्या होगी ?

जो लोग सैकडों प्रकार के अनर्थ और बेईमानी से पराया धन हडप कर अथवा और तरह से दुनिया का गला काट कर लाखों-करोडों अपने पुत्र-पौत्रो को छोड जाते हैं, वे इस कहानी से शिक्षा-ग्रहण करें और पुत्रों का झूठा मोह त्यागें। इस जगत् में न कोई किसी का पुत्र है न पिता। माता, भाई, बहिन और स्त्री-पुत्र सभी एक लम्बी यात्रा के यात्री हैं। यह मृत्युलोक उस यात्रा के बीचका मुक़ाम है। इस मुक़ाम पर आकर सब इकट्ठे हो गये हैं। कोई किसी से सच्ची प्रीति नहीं रखता। सभी स्वार्थ की रस्सी में एक दूसरे से बँधे हुए हैं। जब जिसके चलने का समय आजाता है, तब वही निर्मोही की तरह सबको छोडकर चल देता है। जो लोग उस चले जाने-वाले या मरजाने वाले के लिए प्राण न्यौछावर करते थे, उसके लिए मरने तक को तैयार रहते थे, उनमें से कोई उसके साथ पौली तक जाता है और कोई उसे श्मशान-भूमि तक पहुँचा कर जला-बला कर खाक कर आता है। ऐसे नातेदारों से अनुराग करना—उनमें ममता रखना बडी ही गलती है। कहा है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, नारीगृह द्वारजनाश्श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुरागे गच्छति जीव एक.॥

परलोक को राह में जीव अकेला जाता है, केवल धर्म उसके साथ जाता है। धन, धरती, पशु और स्त्री घरमें ही रह जाते हैं। लोग श्मशान तक जाते हैं और देह चिता तक साथ रहती है।

बहुत लोग यह समझते हैं कि, पुत्र बिना गति नहीं होती, पुत्र-हीन पुरुष नरक में जाता है और पुत्रवान् स्वर्ग में जाता है। जो लोग ऐसा समझते हैं, वह बड़ी भूल करते हैं। पुत्रों से किसी की भी गति न तो हुई है और न होगी, सब की गति अपने ही पुरुषार्थ से होती है। अगर पुत्रों से स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती, तो कोई विरला ही नरक में जाता। जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल भोगना होता है। ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भ्रूणहत्या, परस्त्रीगमन, परधन-हरण प्रभृति पापों का फल कर्त्ता को भोगना ही होता है। जो ऐसा समझते हैं कि, ऐसे पाप करने पर भी, पुत्र-पौत्रों के होने से, हम दण्ड से बच जायँगे, वह बड़े ही मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग तो संसार बन्धन से छूटने के लिये अपने पुत्रों का भी त्याग कर देते हैं।

एक ब्राह्मण और उसका अन्धा पुत्र।



किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उसने गंगाजी की उपासना की। अन्त में

बूढी अवस्था मे, उसके एक अन्धा पुत्र हुआ। ब्राह्मण उस अन्धे पुत्र को पाकर ही वडा प्रसन्न हुआ। उसने खूब उत्सव और भोज प्रभृति किये। इसके बाद जब वह अन्धा पुत्र पाँच वरस का हुआ, ब्राह्मण ने उसका यज्ञोपवीत-सस्कार कराकर उसे विद्या पढाना आरम्भ किया। चन्द्रोज में वह अन्धा पूर्ण पण्डित हो गया।

एक दिन पिता-पुत्र बैठे थे। पुत्र ने पिता से पूछा—"पिताजी! मनुष्य अन्धा किस पाप से होता है?" पिताने उत्तर दिया—"पुत्र! जो पूर्व जन्म में रत्नो की चोरी करता है वह अन्धा होता है।" पुत्रने कहा—"पिताजी! यह वात नहीं है। कारण के गुण कार्य में भी आ जाते है। आप अन्धे हैं, इसी से मैं भी अन्धा हुआ हूँ।" पिताने क्रोध में भरकर कहा "नालायक, मै अन्धा कैसे?" पुत्रने कहा—"पिताजी! गगा माता साक्षात् मुक्ति देनेवाली है। आपने उसकी उपासना पुत्र की कामना से की, इसी से मैं आपको अन्धा समझता हूँ। जो वेद-शास्त्र पढ कर भी पेशाव के कीडे की इच्छा करता है, वह अन्धा नही तो क्या सूझता है? पेशाव से जैसे और अनेक प्रकार के कीडे पैदा होते है, वैसे ही पुत्र भी उसका एक कीडा ही है। आपने जिस पुत्र के लिये गगाजी की इतनी तपस्या की, वह पुत्र तो कुत्ते-बिल्ली और सूअर प्रभृति पशुओं के अनायास ही हो जाते हैं। पुत्र जैसे मूत्र के कीडे से किसी को भी स्वर्ग या मोक्ष लाभ नहीं हो सकता,

पिताजी ! न कोई किसी का पुत्र है न स्त्री प्रभृति, सब एकही हैं, क्योंकि सब में एकही आत्मा है। वही आत्मा पिता में है, वही पुत्र और स्त्री में। जिस तरह मरुभूमि में भ्रम से जल दिखाता है, पर वास्तव में वहाँ जलका नाम-निशान भी नहीं, उसी तरह भ्रम से यह जगत् सच्चा दीखता है, पर वास्तव में कुछ भी नहीं। यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है—ऐसा वासनासे दीखता है।वासना से ही जीव संसार-बन्धन में बँधता है, यानी वासना से ही शरीर धारण करता है। वासना से ही मनुष्य अज्ञानी बन रहा है। वासना का त्याग करते ही मनुष्य ज्ञान-लाभ करके परमानन्द की प्राप्ति करता है। ज्ञानी सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म को ज्ञान की आँखों से देखता है, पर अज्ञानी उसे नहीं देख सकता। जैसे अन्धे को सूर्य नहीं दीखता, उसी तरह अज्ञानी को ब्रह्म नहीं दीखता, इसीसे अज्ञानी को, बाहर की आँखें होने पर भी, अन्धा कहते हैं। आप भेद-बुद्धि को त्याग कर, सब में एक आत्मा को देखो। आत्मज्ञानी होने से ही आप को नित्य सुख मिलेगा।"

पिता-पुत्र के अगाध पाण्डित्य और ज्ञान को देख एकदम चकित हो गया और कहने लगा—"पुत्र ! मैंने चार वेद, छहों शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति और पुराण प्रभृति पढ कर कुछ भी ज्ञानलाभ न किया, तेरी बातों से मेरी आँखें खुल गईं।"

संसार, को मिथ्या समझ कर ही कोई ज्ञानी कहता है —

"हे मन। तू स्त्रीके प्रेममें मत भूल, यह बिजलीकी चमक, नदीके प्रवाह, नदीकी तरङ्ग प्रभृति की तरह चञ्चल है। स्त्री के प्रेमका कोई ठिकाना नहीं आज यह तेरी है, कल पराई है। एक करवट बदलने में स्त्री पराई हो जाती है। इसकी झूठी प्रीति में कोई लाभ नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं —

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहि न पलटत बार॥

यदि तुझे प्रीति ही करनी है, तो चल गंगा-किनारे के वृक्षों के नीचे चल बैठ और आशुतोष भगवान् चन्द्रशेखर-शिवजी से प्रीति कर। उनकी प्रीति सच्ची और कल्याणकारी है।

गोस्वामीजी ने और भी कहा है —

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाँडि छल खेल॥
सम्मुख ह्वै रघुनाथ के, देइ सकल जग पीठि।
तजै केंचुरी उरग कहँ, होत अधिक अति डीठि।

छप्पय।

मोह छाँड मन मीत, प्रीति सों चन्द्रचूड भज।
सुर सरिताके तीर, धीर धर दृढ आसन सज।

शमदम भोग विराग, त्याग तप को तू अनुसरि ।
वृथा विषय बकवाद, स्वाद सबही तू परिहरि ।
थिर नहिं तरग बुदबुद तडित, अगिन शिखा पन्नग सरित ।
त्योंही तन जोवन धन अथिर, चल दलदल कैसे चरित ॥६०॥

60 O my mind, do thou give up all attachment now and cherish at heart a deep love for the Great Shiva, Who bears the new moon in his forehead and take up thy sojourn on the land by the side of the heavenly river Ganges Who ever trusts the currents of the ocean, the bubbles of water, the streaks of lightning, women, the flames of burning fires, serpents and the flow of rivers, all of which are uncertain in their conduct ?

अग्रे गीतं सरस कवय पार्श्वतो दाक्षिणात्या ।
पृष्ठे लीलावशपरिणतिश्चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येव कुरु भवरसास्वादने लपटत्व
नोचेचेत प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ६१ ॥

हे मन ! तेरे सामने चतुर गवैये गाते हों, दाहिने बायें दक्षिन देश के उत्तम कवि सरस काव्य सुनाते हों, तेरे पीछे चँवर ढोलने वाली सुन्दरी स्त्रियों के ककनों की मधुर झनकार होती हो,—यदि ऐसे सामान तुझे मयस्सर हों, तो तू ससार रसास्वादन में मग्न हो , नहीं तो, सब का ध्यान छोड, निर्विकल्प समाधि में लीन हो ॥६१॥

61 If thou hast in thy front the singing of the musicians, on thy sides the reciting of elegant poetry by learned souther-

ners, behind thee the tinkling sound of the anklets of maids waving chamars, then there may not be any objection to thy giving up thyself to the enjoyment of worldly pleasures But if, O mind, thou hast not all these things, it behoves thee at once to enter into the Nirvikalpa Samadhi (meditation of God without thinking of anything else)

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभङ्गुरा
त्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ॥
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ ६२ ॥

हे बुद्धिमानो ! स्त्रियों के संग से बचो, क्योंकि उनके सग से जो सुख मिलता है, वह क्षणिक है। आप मैत्री, करुणा और बुद्धि रूपी वधू के साथ सगम करो। जिस समय नरक में सज़ा मिलेगी, उस समय हारों से शोभित स्तनद्वय और उनकी घूँघरों दार कर्धनियों से सुशोभित कमरें तुम्हारी सहायता न करेंगी ॥६२॥

मनुष्यो, स्त्रियो मे मन मत लगाओ। उनके साथ रहने, उनके साथ सगम करने से सुख होता है, पर वह सुख नश्वर और क्षणस्थायी है। वह ऐसा सुख नहीं है, जो सदा रहे। परिणाम में, उससे अनेक प्रकार के दु ख होते हैं। जो सुख अनित्य है, शेषमें दु खों का मूल और रोगों की खान है, उस सुख को सुख समझना, बुद्धिमानों का काम नहीं है। अगर आप को सङ्गम ही करना है, तो आप सहानुभूति, परोपकार-वृत्ति एव

प्रज्ञारूपी वह के साथ सङ्गम कीजिये। इनके साथ सगम करने और इनके साथ प्रीति करने से आप को नित्य सुख मिलेगा, ऐसा सुख मिलेगा, जो इस लोक और परलोक में सदा स्थिर रहेगा।

जिन लोगों ने पहले दूसरों के दु ख दूर किये है, जिन्होंने परोपकार के लिए जानें दी हैं, जिन्होंने ज्ञान से काम लिया है, उनका भला ही हुआ है। अगर आप स्त्री-सुख में भूले रहोगे, तो जब आपको नरक की भयङ्कर यातनायें भोगनी पडे गी, जब यमदूतों के डण्डे आप पर पडेंगे, क्या उस समय स्त्रियो के हारो से सुशोभित स्तन-मण्डल और कर्धनियों से शोभायमान पतली कमरें आपकी रक्षा कर सकेंगी? नहीं, इनसे कोई लाभ न होगा, उस समय ये आडे न आयेंगे। उस समय परोपकार करके जो पुण्य सञ्चय किया होगा, वही आपकी रक्षा करेगा। बुद्धि से काम लोगे तो भला होगा, क्योंकि बुद्धि ही आप को नरक से बचने की राह बतावेगी, किन्तु स्त्री तो आपको सीधी नरक की राह दिखावेगी। आश्चर्य है, कि अज्ञानी लोग अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा समझते हैं। वे अपने सच्चे मित्रो से प्रीति नही करते, किन्तु झूठे और कुराह में ले जानेवालो से प्रीति करते है। महात्मा सुन्दरदास जीने कहा है —

(१)

विषहीकी भूमि माँहि, विष के अंकुर भये।
नारी विषवेली बढी, नखशिख देखिये॥

विषही के जर मूल, विषही के डार पात।
विषहीके फूल फल, लागे जु विशेखिये॥
विषके ततू पसार, उरझाई आँटी मार।
सब नर वृक्ष पर, लपटेहि लेखिये॥
सुन्दर कहत, कोऊ संत तरु बचिगये।
तिनके तौ कहूँ, लता लागि नहि पेखिये॥

(२)

कामिनीको अङ्ग, अति, मलिन महा अशुद्ध।
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥
हाड माँस मज्जा मेद, चामसूँ लपेट राखे।
ठौर ठौर रकतके, भरेई भंडार हैं॥
मूत्रहु पुरीष आँत, एकमेक मिल रही।
औरही उदर माँहि, विविध विकार है॥
सुन्दर कहत, नारी नखशिख निंद्यरूप।
ताहि जो सराहै, सो तौ बडोई गँवार है॥

(३)

रसिकप्रिया रसमजरी, और शृङ्गारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिनकूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचड, सराहै नखशिख नारी॥

ज्यूँ रोगी मिष्टान्न खाइ, रोगहि विस्तारै।
सुन्दर ये गति होइ, जोइ रसिकप्रिया धारै॥

सोरठा।

ताजि तरुणी सों नेह, बुद्धिबधू सों नेह कर।
नरक निवारत येह, वहै नरक लै जात है॥६२॥

62 O wise men, restrain yourselves from the company of women which gives only transitory pleasure, and associate with the virtues of sympathy, benevolence and wisdom In hell, their fat breasts adorned with necklaces or beautiful waists ornamented with tinkling waist-chains will not help you in any way

प्राणाघातान्निवृत्ति परधनहरणे सयम सत्यवाक्य
कालेशक्त्या प्रदान युवतिजनकथामूकभाव परेषाम्॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनय सर्वभूतानुकम्पा
सामान्य सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि श्रेयसामेष पन्था॥ ६३॥

किसी भी जीव की हिंसा न करना, पराया माल न चुराना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियों की चर्चा में चुप रहना, गुरुजनों के सामने नम्र रहना, सब प्राणियों पर दया करना, भिन्न-भिन्न शास्त्रों में समान विश्वास रखना,— ये सब नित्य सुख प्राप्त करने के अचूक रास्ते हैं॥६३॥

यदि आप मोक्षकी अचूक राह चाहते हो, यदि आप नित्य

सुख-शान्ति चाहते हो, यदि आप चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, तो आप किसी भी प्राणी का विनाश मत करो, अपने पेट के लिये किसी की जान मत मारो। जब मौक़ा आवे, अपनी शक्ति अनुसार गरीबों और मुहताजों को दान दो, उनके दु:ख दूर करो, उनके दु:ख को अपना दु:ख समझ कर उनका कष्ट निवारण करो। जहाँ पराई स्त्रियों का ज़िक्र होता हो, वहाँ मत बैठो, यदि बैठना ही पड़े, तो तुम अपनी ज़बान से कुछ मत कहो। माता-पिता और गुरु के सामने सदा नम्र रहो, उनकी आज्ञा-पालन करो, उनका मान-सम्मान करो, भूल कर भी उनका अपमान मत करो। छोटे-बड़े सभी प्राणियों पर दया करो। सभी शास्त्रों को समान समझो, किसी में विश्वास और किसी में अविश्वास न करो, क्योंकि सभी का ध्येय एक ही है, सभी वहीं पहुँचते हैं। जिस तरह नदियाँ टेढ़ी-सूधी बहती हुई समुद्र में ही जा मिलती हैं, उसी तरह सभी शास्त्र अपनी-अपनी राहों से मोक्ष या परमात्मा की ही राह बताते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते, तर्क-वितर्क के झमेले में पड़ते हैं, वे वृथा भटकते हैं और अपनी मञ्ज़िल मक़सूद—परमपद तक—नहीं पहुँचते।

महात्मा तुलसीदासजी ने ये सब विषय कैसी ख़ूबी से सक्षेप में ही कह दिये हैं,—

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुने रत सत्यव्रत, स्वर्ग सप्त सोपान ॥१॥

बञ्चक विधिरत नर अनय, विधि हिंसा अति लीन ।
तुलसी जग महँ विदित वर, नरक निसैनी तीन ॥

63 *Refraining from killing all sorts of living beings and from stealing other people's property, speaking the truth, giving alms according to one's means when an occasion for charity arrives, remaining silent in a place where men are talking about other people's wives, demolishing the springs of all the desires, behaving humbly before teachers and elders, kindness to all living beings and having equal faith in the teachings of different Shastras are the infallible paths which lead to the acquirement of everlasting bliss*

मातर्लक्ष्मि भजस्व कश्चिदपरं मत्काङ्क्षिणी मास्म भू-
र्भोगेभ्यः स्पृहयालवो न हि वयं का निःस्पृहाणामसि ।
सद्यः पूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥६४॥

हे मा लक्ष्मी ! अब किसी और को खोज, मेरी इच्छा न कर, अब मुझे विषय-भोगों की चाहना नहीं है, मेरे जैसे निस्पृह—इच्छा-रहितों के सामने तू तुच्छ है । क्योंकि अब मैंने हरे ढाक के पत्तों के दोनों में भिक्षा के सत्तू से गुजारा करने का सङ्कल्प कर लिया है ॥६४॥

जो अपनी इच्छा का नाश कर देता है, जो किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखता, वह लक्ष्मी क्या—संसार के बड़े-से-बड़े सुख-भोग और धन-दौलतको तुच्छ समझता है, वह

65 I had such a staunch connection with you before that it seemed as if you were I and I was you What has happened now that you have become yourself and I myself again ?

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाता·
किं क्षिप्यते विरम विरमं व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयाम ॥६६॥

ऐ बाला ! अब तू लीला से अपनी आधी खुली आँखों से मुझ पर क्यों कटाक्ष-बाण चलाती है ? अब तू काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले , तेरे इस परिश्रम से तुझे कोई लाभ न होगा। अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं। हमारी जवानी चली गई है। अब हमने वन में रहने का निश्चय कर लिया है और मोह त्याग दिया है , अब हम विषय-सुखों को तृण से भी निकम्मा समझते हैं ॥६६॥

महाकवि दाग कहते हैं —



हे स्त्री ! अब तू अपनी काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले, हम पर कटाक्षबाण न चला। तेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा। क्योंकि अब हमने विषयों को तृणवत् त्याग दिया है।

65 I had such a staunch connection with you before that it seemed as if you were I and I was you What has happened now that you have become yourself and I myself again ?

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाता
किं क्षिप्यते विरम विरम व्यर्थ एष . श्रमस्ते ॥
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयाम. ॥६६॥

ऐ बाला ! अब तू लीला से अपनी आधी खुली आँखों से मुझ पर क्यों कटाक्ष-बाण चलाती है ? अब तू काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले , तेरे इस परिश्रम से तुझे कोई लाभ न होगा। अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं। हमारी जवानी चली गई है। अब हमने वन में रहने का निश्चय कर लिया है और मोह त्याग दिया है , अब हम विषय सुखों को तृण से भी निकम्मा समझते हैं ॥६६॥

महाकवि दाग कहते हैं :—

तोबा जो मैंने की, निकल आया जरासा मुँह।
वह रंग रूप ही नहीं, सुबहे बहार का॥

बसन्त को अपने सौन्दर्य्य का बड़ा अभिमान था। जबसे मैंने शराब पीनेसे तोबा कर ली है, तबसे बसन्त-लक्ष्मीका मुँह फीका पड़ गया है। जब तक मैं शराबी था, तभी तक उसकी शोभा का कायल था। अब तो मुझे उस में कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती।



हे स्त्री! अब तू अपनी काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले, हम पर कटाक्षबाण न चला। तेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा। क्योंकि अब हमने विषयों को तृणवत् त्याग दिया है।

66 O young lady, why art thou playfully peeping at us out of half closed eyes? Stop thy love inspiring glances as all thy labour will be fruitless Now we are different from what we were before Our youth has gone We are now bent on living in the forest Our attachments have been given up and we look at the enjoyments of the world like a worthless straw

इय वाला मा प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल
प्रभाचोर चक्षु क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥
गतो मोहोऽस्माक स्मरकुसुमवाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥६७॥

यह वाला स्त्री मुझ पर वार वार नील कमल की शोभा से भी सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष क्यों मारती है ? मैं नहीं समझता, इसका क्या मतलव है ? अव तो मेरा मोह जाता रहा है—काम के पुष्प वाणों से निकली हुई आग की ज्वाला शान्त हो गई है। आश्चर्य्य है, कि अव तक भी यह मूर्खा वाला अपनी कोशिशों से वाज़ नहीं आती ! ॥६७॥

जिन का मोह-जाल कट जाता है, जिनकी विषयवासना बुझ जाती है, जो, स्त्रियो को असलियत को समझ जाते हैं, जो उनको नरक की नसैनी समझ लेते हैं, उन पर स्त्रियो के कटाच-वाण असर नही करते। हाँ, वे अपने स्वभावानुसार अपने तीखे-तीखे वाण चलाया ही करती हैं—अपने जाल विछाया ही करती है, पर तत्त्ववित् लोग उन के जाल में नही फँसते। उन पर उनके अचूक वाण फेल हो जाते हैं।

दोहा ।

केहि कारण डारत वयन. कमलनयन यह नार।
मोह काम मेरे नहीं. तऊ न तिय चित हार ॥६७॥

67 Why does this young woman continuously throw at me glances out of eyes which are beautiful like a lotus leaf? I wonder what is her object in doing so! My passions have now gone and the fire lit up within my heart by concussion produced by the striking of cupid's arrows of flowers has been extinguished It is strange that the foolish damsel does not quit her efforts even now!

रम्य हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचचलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥ ६८॥

क्या सन्तों के रहने के लिये उत्तमोत्तम महल न थे, क्या सुनने के लिये उत्तमोत्तम गान न थे, क्या प्यारी-प्यारी स्त्रियों के संगम का सुख न था, जो वे लोग वनों में रहने को गये ? हाँ, सब कुछ था, पर उन्होंने इस जगत् को गिरने वाले पतङ्ग के पङ्खों से उत्पन्न हवा से हिलते हुए दीपक की छाया के समान चञ्चल समझकर छोड़ दिया , अथवा उन्होंने मूर्ख पतङ्ग की भाँति, जो हवा से हिलते हुए दीपक की छाया में घूम घूमकर अपने तईं जलाकर भस्म कर देता है, संसार को अपना नाश कराते देखकर संसार को छोड़ दिया ॥६८॥



अज्ञानी मनुष्य पतङ्ग और मछलियों की तरह संसारी माया मोह में फँस कर अपना नाश करते हैं।

यह ससार दीपक की लौ के समान है और इसमें बसने वाले जीव पतङ्गों के समान हैं। जिस तरह मूर्ख पतङ्ग दीपक से मोह करके और उस पर गिर-गिर भस्म होते हैं, उसी तरह मनुष्य इस ससार के असल तत्व को न समझ कर, इसके मोहमें फँस कर, इसमें नाश होते हैं। जिस तरह पतङ्ग नहीं समझता, कि दीपक से प्रेम करने में मेरे कुछ हाथ न आवेगा, बल्कि मेरी जान ही जायगी, उसी तरह ससारी आदमी नहीं समझते, कि इन ससारी विषय-वासनाओं में फँस कर, इन से प्रेम करके हम अपना नाश करा बैठेंगे। जो बुद्धिमान और विचारवान् हैं, वे इस बात को समझते हैं, अत ससारी पदार्थों से मोह नहीं करते और अपने नाश से बचते हैं। वे ससार को अनित्य और नाश की निशानी समझ कर, इससे मन हटा कर परमात्मा में मन लगाते हैं। वे अपने तईं दुनियाँ का मुसाफिर मात्र समझ कर मौत का हरदम खयाल रखते हैं। महात्मा कबीर ने कहा है—

तन सराय मन पाहरु, मनसा उतरी आय।
को काहू की है नहीं, सब देखा ठोक बजाय॥
"कबिरा" रसरी पांव में, कहँ सोवे सुख चैन।
श्वास नकारा कूँच का, बाजत है दिन रैन॥
इस चौसर चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अन्त परी मुख खेह॥

छप्पय ।

महल महारमणीक, कहा बसिबे नहिं लायक ।
नाहिंन सुनबे जोग, कहा जो गावत गायक ।
नवतरुणी के संग, कहा सुखहू नहिं लागत ।
तो काहे को छाड छाड, ये बन को भागत ।
इन जान लियो या जगतको, जैसे दपिक पवनमें ।
बुझिजात क्षिनकमें छवि भर्‍यो, होत अंधेरो भवनमें ॥६८॥

68, Were there no comfortable mansions for the holy men to live in or musicians' songs to hear or the pleasure of the company of dearly loved women to enjoy, that these holy men went to live in the forests? Finding all the mankind bent upon self-destruction like the foolish moth, which flies here and there in the shade of a lamp seeking to throw itself on its flame which is continually being flattered by the wind, they went to the forests.

किं कन्दा कन्दरेभ्य प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः
प्रध्वस्ता वा तरुभ्य: सरसफलभृतो वल्कलेभ्यश्च शाखा ॥
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां
दु खोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपवनानर्तितभ्रूलतानि ॥६६॥

क्या पहाडों की गुफाओं में कन्दमूल और उनकी चट्टानों में पानी के झरने नहीं रहे, क्या छाल वाले वृक्षों में रसीली फलवती शाखायें नहीं रहीं, जो लोग उन अभिमानी और नीचों के सामने दीनता करते हैं, जिनकी भौंहें मारे अभिमान के चढी रहती हैं जिन्होंने बड़े कष्ट से थोडासा धन जमा कर लिया है ? ॥६६॥

पहाड़ों में रहने को गुफायें, खाने को कन्दमूल, पीने को उनके झरनों का जल और वृक्षों में मीठे-मीठे रसीले फल मौजूद हैं, फिर भी लोग उन धनियों की टेढ़ी भृकुटियों को क्यों देखते हैं, उनकी टेढ़ी-सूधी क्यों सहते हैं, जिनकी आँखें उस थोड़े से धनके मद में नहीं खुलतीं, जो उन्होंने बड़े-बड़े कष्टों से येनकेन प्रकारेण जमा कर लिया है। ऐसे नीच अभिमानियों से अपमानित होने की अपेक्षा पहाड़ों में रहना और फलमूल तथा शीतल जल पर गुज़ारा करना भला। इस से उनकी आत्मा खूब सुखी होगी, अभिमानी नीच धनियोंकी बुरी बातों से आत्मा जल-जल कर खाक होती है।

अगर कुछ भी समझ हो, ज़रा भी आत्मप्रतिष्ठा का खयाल हो, तो मनुष्य को अपनी "इच्छा" का नाश करना चाहिये। इच्छा-रहित मनुष्य सात विलायतों के बादशाह को भी तुच्छ समझता है। धनियों से दीनता करना और माँगना बड़ी बुरी बात है। देखिये, गोस्वामी तुलसीदासजी प्रभृति महा पुरुषों ने कहा है —

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन करो॥
माँगन मरण समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

अगर दीनता ही करनी हो तो परमात्मा से करो। उसके आगे दीनता करने से सभी इच्छायें पूरी हो सकती हैं।

तेरी बन्दानवाजी, हफ्त किशवर वख्शा देती है।
जो तू मेरा जहाँ मेरा, अरब मेरा अजम मेरा ॥ दाग

तेरी सेवा करने से सातों वलायतों का राज मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तब सभी अपने हो जाते हैं। कबीरने कहा है'—

थोडा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जाने कोय।
सूत लगे न विनावनो, सहजे तनसुख होय ॥
साईं सुमिर मत ढील कर, जा सुमरे ते लाह।
इहाँ खलक खिदमत करे, वहाँ अमरपुर जाह॥

छप्पय ।

कहा कन्दराहीन भये, पर्वत भूतल से।
झरना निर्जल भये, कहा जे पूरित जल से।
कहा रहे सब वृक्ष, फूल फल बिन मुरझाये।
सहे खलन के बैन, अन्धता जो मद छाये।
कर सचित घन जे स्वल्प हूँ, इत उत फेरें भ्रू विकट।
रे मन! तू भूल न जाहु कहूँ, इन खल पुरुषनके निकट ॥६९॥

69 Have the wild roots in the caves of mountains and the springs of water flowing out of rocks disappeared or the branches of trees bearing juicy fruits been destroyed, that people look supplicatingly towards the faces of proud and evil minded persons, whose brows often contract with vanity owing to the

ttle wealth, which they possess after having laboured hard

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशीलातलानि ॥
स्थानानि किं हिमवत प्रलय गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्या ॥७०॥

हिमालय पर्वत की वह चट्टानें जो गङ्गाजल की लहरों से उठे हुए छींटों से शीतल हो रही हैं और जहाँ जगह-जगह विद्याधर बैठे हैं क्या अब नहीं रही हैं, जो लोग अपमान से मिले हुए पराये टुकडों पर गुजर करते हैं ? ॥७०॥

पराये टुकडों पर गुज़र करने की अपेक्षा मर जाना भला है। अगर माँगना ही हो, तो माँगने की विधि चातक से सीखनी चाहिये। वह एक से ही माँगता है, दूसरे से हरगिज नहीं माँगता, चाहे मर क्यों न जाय , और माँगने में भी यह खूबी, कि वह कभी अधीन होकर नहीं माँगता, सिर नवा कर नहीं लेता। वह छोटों से नही माँगता , एक घनश्याम (बादल) से ही माँगता है। चातक के समान याचक और वारिद (बादल) के समान दानी जगत् में कौन है ? जो ओछों से माँगते हैं, जने-जने के पैर पकडते हैं, उनको धिक्कार है ! इसलिये मनुष्यो ! पपहिये की तरह एकमात्र घनश्याम से ही माँगो। महात्मा तुलसीदास जी ने कहा है —

"तुलसी" तीनों लोक महँ, चातक ही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, किये दूसरो नाथ॥

ऊँची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर।
ह्वै अधीन चातक नहीं, ग्रीष्म नाय नहिं लेय।
ऐसे मानी माँगनहिं, को वारिद बिन देय?

जिनको परमात्माने देने-लायक़ बनाया है, उन्हें दिल खोल कर गरीब और मुहताजों को देना चाहिये। जो देते हैं फि पाते हैं, जो देते हैं उन्हींका जीवन सफल है। रहीम क कहते हैं—

दीनहि सबको लखत है, दीन लखे नहिं कोय।
जो "रहीम" दीनहिं लखत, दीनबन्धु-सम सोय॥
"रहिमन" वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहि।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥
तबही लग जीवो भलो, दीबो परे न धीम।
बिन जीवो जीवो जगत, हमें न रुचे "रहीम"॥

दोहा

गंगातट गिरिवर गुफा, उहाँ कहा नहिं ठौर।
क्यों एते अपमान सों, खात पराये कौर॥७०॥

70 *Have the grounds in the Himalaya mountains the stones of which are washed by the cold spray arising from water of the river Ganges and which are the favourite resort of Vidyadharas been destroyed, that men like to depend upon other people's charity, even when it is disrespectfully given?*

यदा मेरु श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहत
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलया ॥
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥७१॥

जब प्रलयकाल की अग्नि के मारे श्रीमान् सुमेरु पर्वत गिर पड़ता है, मगर-मच्छों के रहने के स्थान समुद्र भी सूख जाते हैं, पर्वतों के पैरों से दबी हुई पृथ्वी भी नाश हो जाती है, तब हाथी के कान की कोर के समान चञ्चल मनुष्य की क्या गिन्ती ? ॥७१॥

जब काल सुमेरु जैसे पर्वतों को जला कर गिरा देता है, महासागरों को सुखा देता है, पृथ्वी को नाश कर देता है, तब इस छोटे से चञ्चल मनुष्य की क्या गिनती ? इसके नाश होने में कौनसा आश्चर्य ?

दोहा ।

मेरु गिरत सूखत जलधि, धरनि प्रलय ह्वै जात ।
गजसुत के स्रुति चपल त्यौं, कहा देह की बात ॥७१॥

71 *When even the great Meru collapses, burnt away by the Mahapralaya fire,* when even the oceans which are the home of huge crocodiles and sharks are at last dried up and when the earth itself is destroyed although it is held fast by the feet of great mountains, what should we say of the human body which is as shaky as the tip of the ear of an infant elephant ?*

* The fire at the time of universal destruction

एकाकी निःस्पृह शान्त पाणिपात्रो दिगम्बर ॥
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षम ॥७२॥

हे शिव ! मैं कब अकेला, इच्छा-रहित और शान्त हूँगा ? कब हाथ ही मेरा पात्र होगा और कब दिशाये मेरे वस्त्र होंगे ? मैं कब कर्मों की जड उखाडने में समर्थ हूँगा ? ॥ ७२ ॥

एकान्त वास करना, इच्छाओं को त्याग देना, शान्त रहना, हाथ से ही पानी वगैर. पीनेके बर्त्तन का काम लेना, दिशाओं को ही वस्त्र समझना , यानी नग्न रहना और कर्मों को जड उखाडने में समर्थ होना—ये ही कल्याण के मार्ग है । जिनमें ये गुण है, वे धन्य है और वे ही सच्चे सुखी है ।

दोहा ।

एकाकी इच्छा रहित, पाणिपात्र दिगवस्त्र ।
शिव शिव ! हौं कब होऊँगो, कर्मशत्रु को शस्त्र ॥७२॥

72 *O Shiva, when shall I be alone, desireless, peaceful, with hands only to be used as receptacles for water etc, with space only in place of garments and fit for exterminating the roots of Karma (actions)?*

प्राप्ता श्रिय सकलकामदुघास्तत कि
दत्त पद शिरसि विद्विषता तत किम् ॥
संमानिता प्रणयिनो विभवैस्तत किम्
कल्प स्थित तनुभृतां तनुभिस्तत. किम् ॥७३॥

जीर्णा कथा तत किं सितममल्पटं पट्टसूत्रं तत किं
एका भार्या तत किहयकरिसुगणैरावृतो वा तत किम् ॥
भक्त भुक्त तन किं कदशनमथ वा वासराते तत किं
व्यक्त ज्योतिर्नवातर्मथितभवभयंवैभव वा तत किम् ॥७४॥

अगर मनुष्यों को सब इच्छाओ के पूर्ण करने वाली लक्ष्मी मिली तो क्या हुआ ? अगर शत्रुओं को पदानत किया तो क्या ? अगर धन से मित्रों की खातिर की तो क्या ? अगर इसी देह से इस जगत् में एक कल्प तक भी रहे तो क्या ? ॥७३॥

अगर चिथडों की बनी हुई गुदडी पहनी तो क्या ? अगर निर्मल सफेद वस्त्र पहने या पीताम्बर पहने तो क्या ? अगर एक ही स्त्री रही तो क्या ? अगर अनेक हाथी-घोडों सहित अनेकों स्त्रियाँ रहीं तो क्या ? अगर नाना प्रकार के व्यञ्जन भोजन किये अथवा शाम को मामूली खाना खाया तो क्या ? चाहे जितना विभव पाया, पर यदि ससार-बन्धन को मुक्त करने वाली आत्मज्ञान की ज्योति न जानी तो कुछ भी न पाया और कुछ भी न किया ॥७४॥

मतलब यह है, सारे ससार के राज्य-वैभव अथवा त्रिभुवन के अधिपति होने में भी जो आनन्द नहीं है, वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान में है। आत्मज्ञान होने से ही मनुष्य जीवन-मरण के कष्ट से छुटकारा पाकर परम शान्ति-लाभ करता है।

धर्म खर्व लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरन है, तौ आवे केहि काज॥

दोहा ।

इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के साल ।
कल्प जिए तौउ गये, अन्त काल के गाल ॥७४॥

73 *If wealth, which fulfils all men's desires, is obtained what then? If the heads of enemies are trodden under foot, what then? If respect is shown by friendly men of power, what then? If a man lives in this world with this very body for the duration of a whole Kalpa,* what then?*

74 *What matters it if a man wears a worn-out sheet of cloth made of differently coloured rags or bright and clean clothes or fine silken garments? What matters it if he possesses a wife only or is surrounded by large numbers of elephants and horses? What matters it if sumptuous feasts are enjoyed or poor food only is eaten once in the evening? What matters it if one enjoys all sorts of eminence, if he has not seen within himself the eternal Light of self realisation which destroys the fear of recurring births and deaths?*

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम् ॥७५॥

अगर हममें नीचे लिखे हुए गुण हों, तब और कौनसा वैराग्य ईश्वर से माँगें ?—सदा शिव की भक्ति हो, दिल में जन्म-मरण का

* *A day of* BRAHMA (*the creator*) *being 4320000000 solar years of mortals*

भय हो, कुटुम्बियों में स्नेह न हो, मन से काम-विचार दूर हों और संसर्ग-दोष से रहित होकर जङ्गल में रहते हों ॥७५॥

परमात्मा में प्रेम होना, मनमें जन्म-मरण का भय होना, रिश्तेदारों से प्रेम न होना, मनमें स्त्रीकी इच्छाका न उठना, एकान्तस्थानमें अकेले वन में निवास करना—ये ही तो वैराग्य के पूरे लक्षण हैं। इनसे अधिक वैराग्य के और लक्षण नहीं।

दोहा।

मन विरक्त हरिभक्ति युत संगी वन तृणडाम।
याहूते कछु और है, परम अर्थ को लाभ ॥७५॥

75. What greater renunciation should we wish for, if we have the following virtues —Love of God, the fear of birth and death in our mind, no attachment with our relatives, no disturbance of Cupid's doing and residence in the lonely forest, free from the evils of society?

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि-
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ॥
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ७६ ॥

इस वास्ते मनुष्यो! अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शान्ति-पूर्ण ब्रह्म का ध्यान करो। मिथ्या जञ्जालों में क्या रक्खा है? जो ब्रह्म का जरासा भी आनन्द पा जाते हैं, उनकी नजरों में संसारी राजाओं का आनन्द तुच्छ जँचता है ॥७६॥

मतलब यह है, कि लोगों को अनन्त, अजर, अमर, अवि-
नाशी, शोक-रहित, शान्तिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये।
उसी के ध्यान में पूर्णानन्द है, ससार के भोग-विलासों में जरा
भी आनन्द नही है। वह आनन्द सदा है, यह आनन्द क्षणिक
है। उसमें सदा सुख है, इसमें सदा दुःख है। जिन को ब्रह्मा-
नन्द का जरा सा भी मजा आ जाता है, वे त्रिलोकी के अधि
पति के आनन्द को भी तुच्छ समझते है। राज, धन-दौलत,
स्त्री-पुत्र प्रभृति सब उस परमब्रह्म के पीछे है, इसलिये इन को
छोड कर उससे ही प्रीति करने में चतुराई है।

दोहा ।

ब्रह्म अखण्डानन्द पद, सुमिरत क्यों न निशंक ।
जाके छिन संसर्ग सों, लगत लोकपति रंक ॥७६॥

76 Therefore O men, meditate upon BRAHMA, the Endless, the Indestructible and the Blissful! What is the use of other false considerations? In the eyes of men who think of this BRAHMA the enjoyments obtainable by the worldly monarchs appear only to be but very poor acquisitions

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन ॥
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥७७॥

हे चित्त ! तू अपनी चञ्चलता के कारण पाताल में प्रवेश करता है, आकाश से भी परे जाता है, दशों दिशाओं में घूमता है, पर भूलसे भी तू उस विमल परमब्रह्म की याद नहीं करता, जो तेरे हृदय में ही मौजूद है, जिसके याद करनेसे ही तुझे परमानन्द—मोक्ष—मिल सकती है ? ॥७७॥

इस चञ्चल मन की अद्भुत लीला है। यह कभी आकाश में जाता है, कभी पाताल में जाता है और कभी दशों-दिशाओं में फिरता है। इधर-उधर तो इतना भटकता है, पर भूल कर भी, जहाँ जाना चाहिये वहाँ नही जाता। उसके पास ही अमृत का सरोवर है, उसे छोड़ कर सड़ी-गली नालियों में फिरता है। उसे सब जगह छोड़ कर अपने हृदय में ही बैठे हुए ब्रह्म के पास जाना चाहिये और हर समय उसकी ही चिन्तना करनी चाहिये, इस से उसके पापों का नाश हो जायगा, आवागमन से छुटकारा मिल जायगा एवं परम शान्ति की प्राप्ति होगी। और चिन्ताओं से कोई लाभ नहीं, उन से तो जञ्जालों में ही फँसना होता है।

मूर्ख लोग अव्वल तो परमात्मा में दिल ही नही लगाते। यदि भूल से लगाते भी हैं, तो परमात्मा की खोज में जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरते हैं, पर अपने हृदय में ही उसे नही खोजते, यह उनका महा अज्ञान है। उस्ताद जौक़ ने कहा है —

वह पहलू में बैठे हैं और बदगुमानी।
लिये फिरती मुझको, कहीं का कहीं है॥

वह (ईश्वर) बगल में ही बैठा है, पर मैं भ्रम में फँसकर उसे ढूँढने के लिये कहाँ-कहाँ मारा फिरता हूँ।

महात्मा कबीर कहते हैं :—

ज्यो नयन में पूतली, त्यों खालिक घट माँहि।
मूरख नर जाने नही, बाहर ढूँढन जाहि॥
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।
ऐसे घट-घट ब्रह्म है, दुनिया जाने नाँहि॥
समझा तो घर में रहे, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुझहि में, अन्त कहूँ मत जाय॥

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं —

कोउक जात प्रयाग बनारस।
कोउ गया जगन्नाथहि धावे॥
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु।
कोउ गगा कुरुक्षेत्र नहावे॥
कोउक पुष्कर ह्वै पँच तीरथ।
दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवे॥
सुन्दर वित्त गह्यो घरमाँहि सु।
बाहिर ढूँढत क्यूँ करि पावे?॥

जिस तरह आँखों में पुतली है, उसी तरह घट में (हृदय-कमलमें) पैदा करने वाला है, पर मूर्ख इस बात को नहीं जानता और उसे बाहर खोजने जाता है।

कस्तूरी हिरन की अपनी नाभिमें है, पर मृग उसे वन में खोजता है, उसी तरह ब्रह्म घट-घट में है, पर दुनिया इस भेद को नहीं जानती।

अगर समझता है तो घर में रहे और पलकोंका पर्दा लगा कर देख, तेरा मालिक तेरे ही अन्दर है, अन्यत्र जाने की ज़रूरत नहीं।

कोई परमेश्वर की खोज में प्रयाग, काशी, गया, पुरी, मथुरा, कुरुक्षेत्र और पुष्कर जाता है और कोई द्वारिका जाता है। सुन्दरदासजी कहते हैं, जो धन घर में गडा है, वह बाहर कैसे मिलेगा ?

साराश यह है, कि ससार अज्ञानान्धकार के कारण "छोरा बगल में ढढोरा शहर में" वाली कहावत चरितार्थ करता है। ईश्वर इसी शरीर के भीतर हृदय-कमल में मौजूद है, पर अज्ञानी लोग उसे पाने के लिए तीर्थों में भटकते-फिरते हैं। इस तरह वह मिलता भी नहीं और वृथा हैरानी होती है। जो उसके दर्शन करना चाहें, वे नेत्र बन्द करके अपने हृदय में ही उसे देखें।

कुण्डलिया।

फाँद्यो तें आकाश कों, पठयो तें पाताल।
दशों दिशा में तू फिर्‌यो, ऐसी चचल चाल।
ऐसी चचल चाल, इते कबहूँ नहिं आयो।
बुद्धि सदन कों पाय, पाय छिनहूँ न छुवायो।

देख्यौ नहिं निजरूप, कूप अमृत को छाँड्यौ ।
एरे मन ! मतिमूढ, क्यों न भव वारिधि फाँद्यौ ॥७७॥

77 O mind, thou enterest into the lower world, even higher than the heavens and wanderest all through the infinite space, never through mistake dost thou think of the Pure BRAHMA, who rests within thy own self and who will bring thee salvation from all sins !

रात्रि सैव पुन. स एव दिवसो मत्वा बुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रिया. ॥
व्यापारै पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना
संसारेण कदर्थिता: कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥७८॥

प्राणियों में बुद्धिमान् यद्यपि जानते हैं, कि दिन और रात ठीक पहले की तरह ही होते हैं, तोभी वे उन्हीं काम-धन्धों के पीछे दौडते हैं, जिनके पीछे वे पहले दौडते थे। वे लोग उन्हीं उन्हीं कामों में लगे रहते हैं, जिनसे क्षणिक और वारम्बार वही लाभ होते हैं, जिनको वे वारम्बार कह और भोग चुके है। आश्चर्यका विषय है, कि मनुष्यों को लज्जा नहीं आती ! ॥७८॥

देखते हैं, कि पहले की तरह ही दिन, रात, तिथि, वार, नक्षत्र और मास तथा वर्ष आते हैं और जाते हैं, उसी तरह हम खाते-पीते, सोते-जागते और काम-धन्धे करते हैं, कोई नई बात नही देखते। जिन कामों को पहले करते थे, उन्हें ही वारम्बार करते हैं। उनमें कितना सा लाभ और सुख है, इसे

भो देखते-सुनते और समझते हैं। फिर भी, आश्चर्य है कि, हम इस मिथ्या संसार से मोह नहीं तोड़ते।

कुण्डलिया।

वेही निशि वेही दिवस, वेही तिथि वेही वार।
वे उद्यम वेही क्रिया, वेही विषय विकार।
वेही विषय विकार, सुनत देखत अरु सूँघत।
वेही भोजन भोग, जागि सोवत अरु ऊँघत।
महा निलज यह जीव, भोग में भयो विदेही।
अजहू पलटत नाहिं कढ़त गुण ये के वेही ॥७८॥

78 Even the wise among human beings, although knowing that the days and nights now present are exactly similar to those that have passed away, run busily after the same business transactions which they had engaged themselves before It is a wonder why we are not ashamed of sticking to the same worldly enterprises, availing of petty advantages as have been already spoken and reaped the benefit by us over and over again।

महीं रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिल ॥
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदित
सुखं शान्त शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥७९॥

मुनि लोग राजा महाराजाओं की तरह सुख से जमीन को ही

अपनी सुखदायिनी शय्या मान कर सोते हैं। उनकी भुजा ही उनका गुदगुदा तकिया है, आकाश ही उनकी चादर है, अनुकूल हवा ही उनका पखा है, चन्द्रमा ही उनका चिराग है, विरक्ति ही उनकी स्त्री है, अर्थात् विरक्ति-रूपी स्त्री को लेकर, वे, उपरोक्त सामानोंके साथ, राजाओं की तरह सुख से आराम करते हैं ॥ ७६ ॥

मुनि लोगो के पास न राजाओ की तरह महल हैं, न बढिया-बढिया पलँग और मखमली गद्दे तकिये हैं, न ओढने के लिये शाल-दुशाले हैं, न बिजली के पंखे न झाड-फानूस या बिजली की रोशनी है और न मृगनयनी, मोहिनी कामिनी ही हैं, तोभी वे ज़मीन को ही अपना पलँग, हाथ को ही तकिया, शीतल हवा को ही पखा, चन्द्रमा को ही दीपक और ससारी विषय-भोगो से विरक्ति को ही अपनी स्त्री मान कर सुख से सोते है। राजा-महाराजा और अमीर-उमरा बढिया-बढिया पलॅग, कन्दहारी कालीन, मखमली गद्दे-तकियों, बिजली के पखे और रोशनी तथा सुन्दरी स्त्रियो के साथ जो मिथ्या सुख उपभोग करते हैं, उससे लाख दर्जे उत्तम और सच्चा सुख मुनि लोग जमीन और अपनी भुजा, अनुकूल हवा, चन्द्रमा तथा अपनी विरक्तिरूपिणी स्त्री के साथ उपभोग करते हैं। अब बुद्धिमानो को विचार करना चाहिये, कि उन दोनोंमें बुद्धिमान कौन है और वास्तविक सुख किसे मिलता है। अमीरों को सुखके लिये कितने झंझट करने पडते हैं और

कितनी आफ़तें उठानी पडती हैं, तथापि उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता और मुनि लोग बिना झंझट, बिना आफ़त और बिना प्रयास के सच्चा सुख भोगते और शान्ति की नींद सोते है।

छप्पय।

पृथ्वी परम पुनीत, पलँग ताको मन मान्यौ।
तकिया अपनो हाथ, गगन को तम्बू तान्यौ॥
सोहत चन्द चिराग, वीजना करत दशोंदिशि।
वनिता अपनी वृत्ति, सगहीं रहत दिवस निशि।
अतुल अपार सम्पति सहित सोहत हैं सुखमें मगन।
मुनिराज महानृपराज ज्यों, पौढे देखे हम हगन॥७९॥

79 A Sage sleeps in comfort and peace like a great king on the most comfortable sofa of the earth, with the soft pillow made of his own arm under his head, with the open sky above as his bed cover, the congenial breeze serving him as a fan, the moon giving him the light of a lamp, enjoying the conjugal association of non attachment with pleasures of life

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथा॥
भोग कोपि स एव एव परमो नित्योदितो जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादय ८०॥

हे आत्मा! अगर तुझे उस ब्रह्मका ज्ञान होगया है, जिसके सामने तीन लोकका राज्य तुच्छ मालूम होता है, तो तू भोजन, वस्त्र और मान के लिए भोगों की चाहना मत कर, क्योंकि वह भोग सर्वश्रेष्ठ और नित्य है, उसके मुकाबले में त्रिलोकी के राज्य प्रभृति सुख कुछ भी नहीं हैं ॥ ८० ॥

जब तक मनुष्यको ब्रह्मज्ञान नही होता, जब तक उसे आत्म ज्ञान नही होता, जब तक उसे उस सुख का स्वाद नहीं मिलता, तभी तक मनुष्य ससारी-विषय भोगो में सुख समझता है। जब मनुष्यको उस सर्वोत्तम—सदा स्थिर रहनेवाले सुख का स्वाद मिल जाता है, तब वह ससारी आनन्द या दुनियवी मजे तो क्या—त्रिभुवन के राजसुख को भी कोई चीज़ नहीं समझता। मतलब यह है कि, सच्चा और वास्तविक सुख ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान में है। उसके बराबर आनन्द त्रिलोकी के और किसी भी पदार्थ में नही है। जो ससारी पदार्थों में सुख मानते हैं, वे अज्ञानी और नासमझ हैं। उनमें अच्छे और बुरे, असल और नक़ल के पहचानने की तमीज़ नहीं। वे रस्सी को साँप और मृगमरीचिका को जल समझने वालों की तरह भ्रममें डूबे या बहँके हुए हैं।

सोरठा।

कहा विषय को भोग, परम भोग इक और है।
जाके होत सयोग, नीरस लागत इन्द्रपद ॥८०॥

80 If you have realised the Great One in whose presence the kingdom of the three worlds appears to give no pleasure, you should not cherish any longing for the acquirement of enjoyments such as those of good seats, clothes and honour There is an Enjoyment somewhere, Great and Eternal, by tasting which all pleasures like that of the kingdom of the three worlds become tasteless or lose fascination.

किं वेदै स्मृतिभि पुराणपठनै शास्त्रैर्महाविस्तरै
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदै कर्मक्रियाविभ्रमै ॥
मुक्त्वैकं भवबधदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तय ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रोंके पढ़ने तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्मकाण्ड करने से स्वर्गमें एक कुटिया की जगह प्राप्त करनेके सिवा और क्या लाभ है? ब्रह्मानन्दरूपी गद्दीमें प्रवेश करने की चेष्टा के सिवा, जो संसार-बन्धनों के काटने में प्रलयाग्निके समान है, और सब काम व्यापारियों के से काम हैं ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रों के पढ़ने-सुनने और उनके अनुसार कर्म करने से मनुष्य को कोई बड़ा लाभ नहीं है। अगर ये कर्मकाण्ड ठीक तरह से पार पड़ जाते हैं, तो इन से इतना ही होता है, कि स्वर्ग में एक कुटी के लायक स्थान मिल जाता है, पर वह स्थान भी सदा कब्जे में नहीं रहता, जिस दिन पुण्यकर्मों का छोर आजाता है, उस

दिन वह स्वर्गीय स्थान फिर छिन जाता है, इससे प्राणी को फिर दु:ख होता है। मतलब यह हुआ, कि कर्मकाण्ड से जो सुख मिलता है, वह सुख नित्य या सदा-सर्वदा रहने वाला नहीं, उस सुख के अन्त में फिर दुःख होता है—फिर स्वर्ग छोड कर मृत्युलोक में जन्म लेना पडता है—वही जन्म-मरण के दु:ख झेलने पडते हैं। इसलिये मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानी होने की चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि प्रलयाग्नि के समान है। वह अग्नि ससार-बन्धनों को जड से जला देती है, अत. फिर सदा सुख रहता है—दु:ख का नाम भी सुनने को नहीं मिलता। इसलिये ज्ञानियों ने ब्रह्मज्ञान—आत्मज्ञान को सर्व्वोपरि सुख दिलाने वाला माना है। मतलब यह है, कि बिना ब्रह्मज्ञान या रामभक्ति के सब जप-तप आदि वृथा है। सारे वेद शास्त्रों और पुराणों का यही निचोड है कि, ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्मरूप है। जो इस तत्वको जानता है वही सच्चा पण्डित है। जो ब्रह्म या आत्मा को नहीं जानता, वह अज्ञानी और मूर्ख है। उसका पढना-लिखना वृथा समय नष्ट करना है।

तुलसीदासजी ने कहा है —

चतुराई चूल्हे परी, यम गहि ज्ञानहि खाय।
तुलसी प्रेम न रामपद, सब जरमूल नशाय॥

महादेवजी पार्वती जी से कहते हैं'—

ये नराधम लोकेषु, रामभक्ति पराङ्मुखा ।
जप तप दयाशौच, शास्त्राणा अवगाहनम् ॥
सर्व वृथा विना येन, शृणुत्व पार्वति प्रिये ॥

हे प्रिये । जो नराधम इस लोक में रामकी भक्ति से विमुख है, उनके जप, तप, दया, शौच, शास्त्रो का पठन-पाठन— वे सब वृथा है । असल तत्त्व भगवान् की निष्काम भक्ति या ब्रह्म में लीन होना है ।

छप्पय ।

श्रुति अरु स्मृति, पुरान पढे विस्तार सहित जिन ।
साधे सब शुभकर्म, स्वर्ग को घात लह्यौ तिन ।
करत तहाँ हूँ चाल, काल को ख्याल भयकर ।
ब्रह्मा और सुरेश, सबन को जन्म मरण डर ।
ये वणिकवृत्ति देखी सकल, अन्त नहीं कछु कामकी ।
अद्वैत ब्रह्म को ज्ञान, यह एक ठौर आराम की ॥८१॥

81 What is the use of reading the Vedas, the Smritis, the Purans and the voluminous Shastras or of practising the various Karamkanda actions which are fruitful only in procuring an abode in a cottage in Swarga? All other pursuits are mercenary save that of trying to enter the citadel of self realisation which is like the Pralaya fire in putting an end to the misery of the bondages of this world.

आयु कल्लोललोल कतिपयदिवसस्थायिनी यौवन श्री-
रर्था सकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूरा ॥

कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥८२

आयु—उम्र—पानी की लहरों के समान चञ्चल है, जवानी थोड़े दिनोंकी है, धन मनके सङ्कल्पों से भी कम देर ठहरनेवाला है, भोग वर्षाकाल में चमकनेवाली बिजलीकी चमक से भी अधिक चञ्चल हैं, प्यारी स्त्रीका गले से लगाना भी चिरस्थायी नहीं है। इसलिए मनुष्यो! भवसागर से पार होनेके लिए ब्रह्म में लीन होओ ॥८२॥

आयु की चंचलता।

प्राणी की आयु का कोई ठिकाना नहीं। यह जल की तरंगों के समान चञ्चल और पानी के बुलबुले के समान क्षणस्थायी है। यह अभी है और अगले क्षण न रहे। जो साँस बाहर जाता है, वह वापस आवे और न आवे। इधर प्राणी जन्म लेता है और उधर मौत उसके पीछे लगती है। ऐसे क्षणभंगुर जीवन पर क्या खुशी मनायी जाय? "मोहमुद्गर" में कहा है —

नलिनीदलगतजलमतितरलं,
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याधिव्यालग्रस्त,
लोकं शोकहतञ्च समस्तम् ॥

पद्मपत्र पर पड़ा हुआ जल अतीव चञ्चल होता है, मनुष्य का जीवन भी उसी तरह अतीव चञ्चल है। यह सारा संसार रोग-रूपी सर्पों से ग्रसित होरहा है। इस में दुःख ही दुःख है।

जवानी।



जिस तरह मनुष्य की आयु पानी की लहरों के समान चञ्चल और सदा-सर्वदा रहनेवाली नहीं है, उसी तरह जवानी भी चन्दरोज़ा या अल्पकालस्थायी है। सदा कोई जवान नहीं रहा। अवस्थायें बदलती ही रहती है। बचपन के बाद जवानी और जवानी के बाद बुढ़ापा आता है और अवश्य आता है। चार दिन की चाँदनी, फेर अँधेरी रात वाली बात है। किसीने कहा है :—

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न जोवन थिर रहै, सदा न जीवै कोय।

सदा तोरई नहीं फूलती, सदा सावन नहीं रहता,

सदा जवानी नहीं रहती और सदा कोई जीता भी नहीं रहता। और भी कहा है :—

रहती है कब, बहारे जवानी तमाम उम्र,
मानिन्द बूये गुल, इधर आई उधर गई ।

यौवन अवस्था की बहार उम्र-भर थोडे ही रहती है। यह तो फूल की सुगन्ध की तरह इधर आई, उधर गई।

जो आज जवानी के नशे में मतवाले हो रहे हैं, जो मल-मल कर और साबुन लगा-लगा कर अपनी मिट्टी की काया को धोते और उसे चन्दन कपूर एव इत्र-फुलेलों से सुगन्धित करते एव भाँति-भाँति के गहने पहने रहते हैं, स्त्रियाँ जो अपनी दोनों छातियों को ऊँची उठा कर चलती हैं और पुरुष जो मूछों पर बल और ताव देते हैं, वे होश करें और मन में निश्चय समझलें कि, उन का यह शरीर सदा उन के साथ न रहेगा, एक दिन यहाँ का यहाँ ही पडा रह जायगा और मिट्टी में मिल जायगा। काया के नाश होने के पहलेही वृद्धावस्था युवावस्था को निगल जायगी। जोदाँत आज मोतियों की तरह चमकते हैं, वे काल हिल-हिल कर आपका दम नाक में कर देंगे और एक-एक करके आपका साथ छोड देंगे। उस समय आपका मुख पोपला और भद्दा हो जायगा। जिन बालों को आप रोज़ धोते और साफ रखते हैं तथा जिन की सजावट आप तरह-तरह से करते हैं, वे एक दिन सफेद या सन की

तरह हो जायेंगे। ये फूले हुए गाल पिचक जायेंगे। आंखों में यह रसीलापन न रहेगा। इन में पीलापन और धुन्ध आ जायगा। आज की सी धकड़-तकड़ न रहेगी, लाठी के सहारे चलोगे और वह भी काँपने लगेगी। जो लोग आज आप को देख कर खुश होते हैं, आपका आदर करते हैं, वेही आप का अनादर करेंगे, आप की बात भी न पूछेंगे, यह तो आप की काया और जवानी का हाल है, अब अपने धन-दौलत की चञ्चलता की बातें भी सुनिये।

लक्ष्मी चञ्चल है।

लक्ष्मी को चञ्चला और चपला भी कहते हैं। लक्ष्मी ठीक उस चपला की तरह है, जो क्षणमें चमकती और क्षण भरमें ही बादलों में बिलाय जाती है। अनेकोंने इस धन को मन के विचारों की तरह क्षणस्थायी और बेजड़ कहा है। यह धन किसी के पास सदा नहीं रहा। तीन पीढ़ी से अधिक तो एक परिवार में धन रहते किसी ने देखा ही नहीं। आज जो धनी है, कल वही निर्धन हो जाता है। आज जो हज़ारों को भोजन देता है, कल वही अपने भोजन के लिये औरों के द्वार पर भटकता फिरता है। आज जो राजा है, कल वही रङ्क हो जाता है। आज जो बिना मोटर और जोड़ी के

एक क़दम चल नहीं सकता, कल वही पैदल दौड़ा फिरता है। आज जिसकी आज्ञा-पालन के लिये हज़ारो दास-दासी खड़े रहते हैं, कल वही दूसरो की आज्ञा पालन के लिये खड़ा देखा जाता है। साराश यह कि, धन-वैभव न तो सदा किसी के पास रहा ही और न आगे ही रहेगा। इसीलिये धन को भी चञ्चल कहा है। नीति मे लिखा है .—

यौवन जीवित चित्त छायालक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥

यौवन, जीवन, मन, शरीर की छाया, धन और स्वामिता,—ये छहों चञ्चल हैं, यानी स्थिर होकर नहीं रहते।

मूर्ख हैं वे, जो इस झूठे और सदा न रहनेवाले धन पर फूलते और घमण्ड करते है। वे समझते है कि, यह हमारे पास सदा रहेगा, पर यह उनकी भारी भूल है। धन को सदा बिजली की चमक और बादल की छाया की तरह क्षणस्थायी और चञ्चल समझ कर अभिमान न करना चाहिये। "मोहमुद्गर" मे कहा है '—

मा कुरु धनजन यौवन गर्व
हरति निमिषात् काल सर्व,
मायामयमिदमखिल हित्वा,
ब्रह्मपद प्रविशाशु विदित्वा॥

इस धन-यौवन का गर्व न कर, काल इस को पलक मारते

हर लेता है। इस मायामय संसार को त्याग कर, शीघ्र ही ब्रह्मपद में प्रविष्ट हो।

स्त्री का आलिंगन भी चिरस्थायी नहीं है।



जिस तरह आयु, यौवन और धन चञ्चल है, उसी तरह नारी भी चञ्चल है। आज जो अपनी है, उसे कल परायी होते देर नहीं लगती। आज जो रमणियों के साथ आनन्द करते हैं, कल वेही उनके वियोग में तड़पते देखे जाते हैं। कहते हैं कि स्त्री करवट बदलते पराई हो जाती है। कहा है—

शास्त्रं सुचिन्तितमथो परिचिन्तनीयम्।
आराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।
अङ्केस्थितापि युवतिः परिरक्षणीया।
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्?

खूब याद किये हुए शास्त्र को भी बार-बार फेरना चाहिये, खूब सेवा किये हुए राजा से भी डरना चाहिये, गोद में पड़ी स्त्री को भी सावधानी से रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि शास्त्र, राजा और युवती इनका विश्वास नहीं।

"स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः"

स्त्रियो का विश्वास नहीं करना चाहिये, ऐसे-ऐसे वाक्य जगह-जगह मिलते हैं। महाराजा भर्तृहरि को ही लीजिये। महाराजा में क्या त्रुटि थी? क्या उनमें बलवीर्य्य, रूप, विद्या चातुरी प्रभृति किसी भी गुण की कमी थी? क्या उनके यहाँ सुख-भोग के सामानों की कमी थी? नहीं, कुछ भी नहीं। सब कुछ था, पर पिंगला ने महाराजा को छोड, घोड़ों के दारोगा से दिल लगाया। फिर, स्त्रियो की प्रीति को सदा रहने वाली कैसे कह सकते है?

एक स्त्री की दग़ाबाज़ी।



एक साहूकार ने अपने लडके को नाराज़ होकर घर से निकाल दिया। चलते समय उसने अपनी स्त्री से कहा—"तुझे मैं तेरे पीहर पहुँचाता जाऊँ, क्योंकि वनमें बडे कष्ट हैं और अभी रोजगार का ठिकाना नहीं। ईश्वर जानें क्या-क्या कष्ट उठाने होंगे।" "स्त्रीने कहा—"स्वामिन्, मैं आप के बिना क्षण-भर भी नहीं रह सकती। आपके वियोग के मुक़ाबले में राह-बाट और वन के कष्ट तुच्छ हैं। मैं आपके साथ चलूँगी और आपकी पदसेवा कर अपने तईं धन्य समझूँगी।" साहूकार के लडके के बहुत समझाने पर भी जब स्त्री न मानी, तो उसने उसे अपने साथ ले लिया।

वे दोनो स्त्री-पुरुष घरसे कुछ द्रव्य लेकर चल दिये। रोज़ मज़िलों पर मंजिलें तय करते हुए, एक दिन दोनों, दोपहर के समय, एक फ़कीर के तकिये पर पहुँचे। वहां वृक्षों की सघन छाया थी, सामने ही थोडे फासिले पर एक कूआँ था। साहूकार का लडका लोटा डोर ले जल लाने गया और स्त्री वहीं बैठी रही। फ़कीर ने देखा कि, स्त्री तो परमा सुन्दरी और नवयौवना है, अत उससे कहा—"तू मेरे साथ रहे, तो दुनिया के मजे देखे। जा, उसे कूए में धकेल आ, फिर, अपन दोनो पास के शहरमें चल रहेंगे।" साहूकार की स्त्री, जो पतिके लिये प्राण देती थी, जो पतिके समझाने पर भी पीहर न गई थी, क्षण-भर में पराई हो गई। फ़कीर की बातों में आकर वह कूए पर गई। ज्योंही उसका पति लोटा खींचने को झुका, उसने धक्का देकर उसे कूए में गिरा दिया। उसे ज़रासी दया भी न आई। पीछे आकर वह फ़कीर के साथ हो ली। फ़कीर उसे नगर में ले आया और उसके धन से मौज करने लगा। साथ ही गाने-बजाने वाले उस्तादों को बुलाकर, उसे गाने-बजाने की तालीम दिलाने लगा। उसकी चढती जवानी थी, रूप-लावण्य था, अत गाने में भी वह पक्की हो गई। सारे शहर में उसके नाचने-गाने की शोहरत हो गई।

उधर वह लडका कूए में पडा हुआ अपनी मुसीबत पर रोता था। कहीं से एक बनजारा आया। उसके साथ सौ दो सौ आदमी और बालध थे। वहीं पडाव पडा। लोग रोटी

बनाने का उद्योग करने लगे। कोई कूए पर पानी भरने गया। उसने ज्यों ही डोल फाँसा कि, साहूकार के लडके ने डोल पकड लिया। लोगो ने पूछा—"तू कौन है?" उत्तर दिया—"मैं आफ़तका मारा मनुष्य हूँ। कृपाकर मुझे निकाल लो।" लोगों ने मिलकर उसे बाहर खींच लिया। देखा तो वह पीला पड़ गया था। बनजारे ने उसको चिकित्सा कराकर उसे गरम कपडों में सुला दिया। चन्द रोज में वह बनजारा भी उसी नगर में पहुँचा। साहूकार का लडका रोजगार की तालाश में घूमता रहा। ईश्वर-कृपा से एक बडे सेठ ने उसे अपने यहाँ रख लिया। लडका बडा ही चलता-पुरजा निकला, इसलिये उस सेठने उसे अपना प्रधान मुनीम बना लिया।

उन्हीं दिनों उस वेश्या की बडी तारीफ सुन, राजा ने अपने यहाँ उसके नाच का हुक्म दिया। महफिल सजाई गई, चारों ओर नगर के सेठ-साहूकार, रईस-अमीर बैठे। राजा सिंहासन पर बैठा। वेश्या नाचने लगी। उसके रूप और नाच-गान पर महफिल की महफिल मुग्ध होगई। इतने में उस वेश्या की नज़र उस साहूकारके लडके या अपने पति पर पड गई। राजाने प्रसन्न होकर कहा, "बीबी! तुम माँगो, वही इनाम मिलेगा।" वेश्याने कहा—"महाराज! यदि आप मुझे इनाम देनेका वचन देते हैं, तो यह वचन दीजिये, कि मैं जो माँगूँ वही मिले।" जब राजा वचन-बद्ध हो गया, तब वेश्या ने कहा—"राजन्! वह सामने बैठा हुआ पुरुष मेरा चोर है, उसे मरवा

दीजिये।" तब राजा ने उसके मारे जाने की आज्ञा देदी, तब साहूकार के लड़के ने कहा—"इसके पास मेरी कुछ धरोहर है, इस से कहिये कि, यह हाथ में जल ले मुझे उसे सङ्कल्प कर के देदे।" वेश्या ने कहा—"मुए! तेरा मुझे क्या देना है? ख़ैर, ले, मैं जल लेकर सङ्कल्प करके कहती हूँ, कि जो कुछ तेरा मेरे पास हो तू ले।" वेश्या के सङ्कल्प छोड़तेही वह ज़मीन पर गिर पड़ी और मर गई। राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उसने उस लड़के से इस घटना का असली तत्त्व पूछा। लड़के ने कहा—"राजन्! यह मेरी व्याहता स्त्री है। मैं और यह घर से निकल आये। राह में इसे साँपने काटा, और यह मर गई। मैं भी इसी के साथ जलने को तैयार हुआ। इतने में महादेव-पार्वती उधर आ निकले। पहले तो उन्होंने कहा—'अरे पागल! स्त्री के लिये जान देता है! तू है तो और बहुत स्त्रियाँ मिल जायेंगी।' पर मैं उनकी बात पर राजी न हुआ, तब उन्होंने कहा—'तू हाथ में जल लेकर अपनी आधी आयु इसे दे, तो यह जी सकती है। फिर भी, जब कभी तू अपनी शेष बची आयु इस से माँगेगा और यह सङ्कल्प छोड़ देगी, तब यह मर जायगी।' महाराजा! मुझे यह प्राणों से भी प्यारी थी, अतः मैंने अपनी आधी आयु इसे देदी। इसके बाद यह मुझे कूए में धकेल फकीर के साथ चली आई और वेश्या होगई। आज यह मुझे जान से मरवाने परही तुल गई। स्त्री-जातिकी प्रीतिका जरा भी विश्वास नहीं।"

राजा उस से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मंत्री बना लिया।

इस कहानी से हमने स्त्रियों की प्रीति का नमूना दिखाया है। निश्चय ही सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं, पर इस में शक नहीं कि, अधिकांश ऐसी ही होती हैं, अत. स्त्री की प्रीति का आनन्द सदा नहीं मिल सकता। मान लो, स्त्री पतिव्रता भी हो, तो सम्भव है कि, वह पहले ही मर जाय। इस तरह भी वियोग हो सकता है।

साराश यह कि, आयु, यौवन, धन और नारी—ये सभी चञ्चल, अनित्य और क्षणभंगुर हैं। इसीलिये परिणाम में दु खों के भाण्डार हैं। अतएव बुद्धिमानों को चाहिये, कि ब्रह्ममें चित्त लगायें, रात दिन उसीका ध्यान—उसीकी चिन्तना करें। इससे वे भवसागर के पार हो जायेंगे—उन्हें बारम्बार जन्म-मरण का कष्ट न होगा—नित्य स्थायी सुख मिलेगा। स्त्री-पुत्र, धन प्रभृतिमें मन लगानेसे सदा दु ख-सागर में गोते लगाने पडते हैं—मर कर फिर जन्म लेना पडता है और फिर मरना पडता है। अब बुद्धिमान ही विचार करें, कि दोनो में कौनसा मार्ग सुखदायी है।

छप्पय।

जलकी तरल तरंग जात, ज्यों जात आयु यह।
यौवन हूँ दिन चार, चटक की चौंप चाह वह।

ज्यों दामिनी प्रकाश, भोग सब जानहु तैसे ।
तैसे ही यह देह अथिर, थिर ह्वै है कैसे ।
सुनि एरे मेरे चित्त तू, होहि ब्रह्म में लीन गति ।
संसार अपार समुद्र तर, करि नौका निज ज्ञान रति ॥८२॥

82 Life is transient like the water currents, youth is sh rt lived, riches are foundationless like the flights of the uman mind, the objects of pleasure are transitory like the ashes of lightning in the rainy season and the embracing f beloved women also does not last for a long time O men, t is better for you to fix your heart on Brahma in order to wim across the ocean of wordly fears

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विन ।
शफरीस्फुरितेनाब्धे क्षुब्धता जातु जायते ॥८३॥

जो विचारवान् है, जो ब्रह्मज्ञानी है, उसे संसार लुभा नहीं सकता। मछली के उछलनेसे समुद्र नहीं उमडता ॥८३॥

जिस तरह सफरी मछली के उछल-कूद मचाने से समुद्र अपनी गम्भीरता को नहीं छोडता, जरा भी नहीं उमगता, जैसा का तैसा बना रहता है, उसी तरह विचारवान् ब्रह्मज्ञानी संसारी-पदार्थों पर लट्टू नहीं होता। वह समुद्र की तरह गम्भीर ही बना रहता है, अपनी गम्भीरता नहीं छोडता। समुद्र जिस तरह मछली की उछल-कूद को कुछ नहीं समझता, उसी तरह वह त्रिलोकी की सुख-सम्पत्ति को तुच्छ समझता

है। मतलब यह है, कि समारो विषय-भोग उन्हीं को लुभाते हैं, जो विचारवान् नहीं हैं, जिनमें विचार-शक्ति नहीं है, जिन्हें ब्रह्मज्ञान का आनन्द नहीं मालूम है। उस्ताद जौक़ कहते है—

दुनिया है वह सय्याद कि सब दाम में इसके।
आ जाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता ॥

दुनिया एक ऐसा जाल है, जिसमें प्राय सभी फँसे हुए है। कोई दाना अर्थात् विचारशील पुरुष ही इस जाल से बचा हुआ है।

ससार अन्त. सार-शून्य है, इसमें कुछ नहीं है। यह ठीक आँवले के समान है, जो ऊपर से खूब सुन्दर और चिकना-चुपडा दीखता है, मगर भीतर कुछ नहीं। किसीने ससारको स्वप्नवत् और किसीने इसे कोरा खयाल ही कहा है। महा कवि गालिब कहते है —

हस्ती के मत फरेब में आजाइयो असद।
आलम तमाम हलक ये दामे खयाल है ॥

गालिब, सृष्टि के चक्र में मत आ जाना। यह सब प्रपञ्च तुम्हारे खयाल के सिवा और कोई चीज़ नहीं है।

इसके जाल मे समझदार नहीं फँसते, किन्तु नासमझ लोग, जाल के किनारो पर लगी सीपियो की चमक-दमक देख

कर जाल में आ फँसने वाली मछलियों की तरह, इसके माया-मोह में फँस कर अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हैं, किन्तु ज्ञानी इसकी अनित्यता, इसकी असारता को देख कर इससे किनारा कर लेते हैं।

दोहा ।

ज्यों सफरी को फिरत लख, सागर करत न क्षोभ।
अण्डा से ब्रह्माण्ड को, त्यों सन्तन को लोभ ॥८३॥

83 What value has the whole world in the eyes of a man wise in the knowledge of self that he may be tempted by it! The great Ocean is never disturbed by the jumping of a fish!

यदासीदज्ञान स्मरतिमिरसंस्कारजनित
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥८४॥

जब तक हममें कामदेव से पैदा हुआ अज्ञान-अन्धकार था, तब तक हमें सारा जगत् स्त्रीरूप ही दीखता था। अब हमने विवेक-रूपी अञ्जन आँज लिया है, इस से हमारी दृष्टि समान होगई है। अब हमें तीनों भुवन ब्रह्मरूप दिखाई देते हैं ॥ ८४ ॥

जब हम काम मद से अन्धे हो रहे थे, जब हमें अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं था, तब हमें स्त्री-ही-स्त्री दिखाई देती थी,

विना स्त्री हमें क्षण भर भी कल नही थी, किन्तु अब हममें विवेक-बुद्धि आ गई है, अब हम अच्छे-बुरे को समझने लगी है, इसलिये अब हमें सारा ससार यकसाँ मालूम होता है अब हमें कही स्त्री नही दीखती, सभी तो एकसे दीखते हैं जहाँ नज़र दौडाते हैं, वहीं ब्रह्म ही ब्रह्म नज़र आता है मतलब यह, कि न कोई स्त्री है न कोई पुरुष, सभी तो एकही हैं, केवल चोले का भेद है। आत्मा न स्त्री है न पुरुष, वह सब में समान है। मगर अज्ञानियो को यह बात नही दीखती। उन्हें और का और दीखता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है:—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवाय नपुसक: ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥

यह आत्मा न स्त्री है न पुरुष और न नपुसक। यह जिस जिस शरीर को धारण करता है, उसी-उसी के साथ जुड जाता है।

जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि, स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं, जो मै हूँ वही स्त्री है—स्त्रीने और तरह का कपडा पहन रक्खा है और मैंने और तरह का—तब उसका मन स्त्री पर नही भूलता। अपने ही स्वरूप को और समझ कर उससे मैथुन करने की इच्छा नहीं होती। ज्ञानी को ससार में शत्रु, मित्र, स्त्री-पुत्र, स्वामी-सेवक नही दीखते।

वह स्त्री-पुत्र और शत्रु-मित्र सब को समान समझता है, किसी से राग और किसी से द्वेष नहीं रखता। उसे कुत्ते में, आदमी में, तथा प्राणीमात्र में ही एक विष्णु दीखता है। यह अवस्था परमपद की अवस्था है। स्वामी शङ्कराचार्यजी कहते हैं'—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ।
मा कुरु यत्न विग्रहसन्धौ।
भव समचित्त. सर्वत्र त्वं।
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम्॥

शत्रु, मित्र और पुत्र-बान्धवों में विरोध या मेल के लिये चेष्टा न कर। यदि शीघ्र ही मोक्ष-पद चाहता है तो शत्रु-मित्र और पुत्र-कलत्र प्रभृति को एक नज़र से देख। सब को अपना समझ, किसी को गैर न समझ, समान चित्त हो जा। जैसा हो पुरुष वैसी ही स्त्री, जैसा बेटा वैसा दुश्मन और जैसा धन वैसी मिट्टी।

एक सच्चा महात्मा।



एक साधु सदा ज्ञानोन्मत्त अवस्था में रहता था। वह कभी किसी से फ़ाल्तू बातचीत नहीं करता था। एक रोज़

वह गाँव में भिक्षा माँगने गया। एक घरसे उसे जो रोटी मिली, उसे वह आप खाने लगा और साथ में कुत्ते को भी खिलाने लगा। यह देख वहाँ अनेक लोग इकट्ठे हो गये, और उनमें से कोई-कोई उसे पगला कहकर उसकी हँसी करने लगे। यह देख महात्मा ने उनसे कहा—"तुम क्यों हँसते हो?"

विष्णु परिस्थितो विष्णु'
विष्णु खादति विष्णवे।
कथ हसंसि रे विष्णो?
सर्वं विष्णुमय जगत्॥

विष्णु के पास विष्णु है। विष्णु विष्णु को खिलाता है अरे विष्णु, तू क्यों हँसता है? सारा जगत् विष्णुमय है, यानी सारा ससार उस पूर्णात्मा विष्णु से व्याप्त है।

सच्चे और पहुँचे हुए साधु-फ़कीर सारे ससार में एक परमात्मा को देखते हैं। उन्हें दूसरा कोई नजर ही नहीं आता। अज्ञानी लोग जिनके ज्ञान-चक्षु बन्द हैं, जगत् में किसी को अपना और किसी को पराया समझते हैं। किसी ने क्या अच्छा उपदेश दिया है—

एकान्ते सुखमास्यता परतरे चेत समाधीयताम्।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यता जगदिद तद्व्यापितं दृश्यताम्.

प्राक्तन प्रविलोप्यता चितिबलान्नाप्युत्तरे श्लिष्यता ।
प्रारब्धं त्विह भुज्यताम् अथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥

एकान्त-निर्जन स्थान में सुख से बैठना चाहिये । परमब्रह्म परमात्मा से मन लगाना चाहिये । पूर्णात्मा पूर्ण ब्रह्म से साक्षात् करना चाहिये और इस जगत् को उस पूर्ण ब्रह्म से व्याप्त समझना चाहिये । पूर्व जन्म के कर्मों को लोप करना चाहिये और ज्ञान के प्रभाव से अब के किये कर्मो के फल त्याग देने चाहियें, यानी निष्काम कर्म करने चाहियें, जिससे कर्म-बन्धनमें बधकर फिर जन्म न लेना पड़े । इस ससार में प्रारब्ध या पूर्व जन्म के कर्मों को भोगना चाहिये और इसके बाद परमेश्वरूप से इस जगत् में ठहरना चाहिये , यानी अपने में और परमात्मा में भेद न समझना चाहिये ।

दोहा ।

काम अन्ध जबही भयो, तिय देखी सब ठौर ।
अब विवेक अजन किये, लख्यो अलख सिरमौर ॥८४॥

84 As long as we were in the darkness of ignorance produced by lustful passions, the whole universe seemed to us as if transformed into the shape of women Now that we have applied to our eyes the collyrium of discrimination be tween right and wrong, our sight has become calm and the three Bhuvans (regions) appear to us to be the manifestat- ion of Brahma

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली
रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ॥
कोपोपाहितवाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः ॥८५॥

चन्द्रमाकी किरणें, हरी-हरी घासके तख्ते, मित्रोंका समागम, शृङ्गार-रसकी कवितायें, क्रोधाश्रुओंसे चञ्चल प्यारी का मुख,—पहले ये सब हमारे मनको मोहित करते थे, किन्तु जबसे संसार की अनित्यता हमारी समझ में आई, तबसे हमें ये सब अच्छे नहीं लगते ॥ ८५ ॥

जब तक मनुष्य को संसार की असारता, उसकी अनित्यता, उसका थोथापन, उसकी पोल नहीं मालूम होती, तभी तक मनुष्य संसार और संसारके झगड़ों में फँसा रहता है, और विषय-भोगोंको अच्छा समझता है, किन्तु संसारकी असलियत मालूम होते ही, उसे विषय-सुखों से घृणा हो जाती है। उस समय न उसे चन्द्रमा की शीतल चाँदनी प्यारी लगती है, न मित्रमण्डली अच्छी मालूम होती है, न शृंगार-रसकी कवितायें अच्छी मालूम होती हैं और न उसका चित्त चन्द्र-वदनी कामिनियों को ही देखकर मचलाता है।

छप्पय।

चन्द चाँदनी रम्य, रम्य वनभूमि पहुपयुत
योंहीं अति रमणीक, मित्र मिलवो है अद्भुत॥

बनिताके मृदु बोल, महारमणीक विराजत।
मानिनमुख रमणीक, दृगन अँसुअन भर साजत।
ए कहे परमरमणीक सब, सब कोऊ चित्तमें चहत।
इनको विनाश जब देखिये, तब इनमें कछुहू न रहत॥८५॥

85 The rays of the moon, the forest glades covered with green grass, the society of friends, the works of literature possessing beauties of composition, the faces of the beloved ones made resplendent by the drops of tears caused by anger, all captivated *our heart* at first But since we have realised the destructibility of the world, all these things have lost their attractiveness and our mind is now absolutely vacant

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा ॥
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखि-
र्निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥८६॥

ऐसा तपस्वी कोई विरला ही होता है, जो भीख माँगकर खाता है, जो अपने लोगों में रहकर भी उनमें मोह नहीं रखता, जो स्वाधीनतापूर्वक अपना जीवन निर्वाह करता है, जिसने लेने और देनेका व्यवहार छोड दिया है, जो राहमें पडे हुए चिथडों की गुदडी ओढता है, जिसे मानका खयाल नहीं है, जिसमें अभिमान नहीं है और जो महाज्ञानके सुखको ही सुख मानता है ॥८६॥

ज्ञानी के लक्षण सुन्दरदासजी ने इस भाँति कहे हैं —

कर्म न विकर्म करे, भाव न अभाव धरे।
शुभ न अशुभ परे, यातें निधरक है॥
वस तीन शून्य जाके, पापहु न पुण्य ताके।
अधिक न न्यून वाके, स्वर्ग न नरक है।
सुख दु'ख सम दोऊ, नीचहुँ न ऊँच कोऊ।
ऐसो विधि रहै सोउ, मिल्यो न फरक है॥
एकही न दोय जाने, बंध मोक्ष भ्रम माने।
सुन्दर कहत, ज्ञानी ज्ञान में गरक है

जो भीख माँगकर पेट की अग्नि को शान्त कर लेता है, पर किसी की खुशामद नहीं करता, किसी के अधीन नहीं होता, स्वाधीन रहता है, राह में पड़े हुए चिथड़े उठाकर उनकी ही गुदड़ी बना कर ओढ़ लेता है, मान-अपमान और सुख-दु ख को समान समझता है, न किसी से कुछ लेता है और न किसी को कुछ देता है, गृहस्थी में या अपने बन्धु-बान्धवों में रह कर भी उनमें ममता नहीं रखता, शुभाशुभ, पाप-पुण्य और स्वर्ग नरकको कोई चीज नहीं समझता, किसी को नीच और किसी को ऊँच नहीं समझता, सभी में एक आत्मा देखता है, बन्धन और मोक्ष को भी मन का संकल्प या भ्रम समझता है तथा ब्रह्मज्ञान में गर्क रहता है और उसमें ही पूर्ण सुख समझता है,—उस से बढ़कर ज्ञानी और कौन है? ऐसे ज्ञानी के जीवन्मुक्त होने में संशय नहीं। उसे जन्म-

मरण का कष्ट नहीं उठाना पडता। वह सदा परमानन्द में मग्न रहता है, पर ऐसे महापुरुष कोई-कोई ही होते हैं।

सोरठा।

उञ्छवृत्ति गाति मान, समदृष्टी इच्छारहित।
करत तपस्वी ध्यान, कन्था को आसन किये।

86 Very rarely is a Tapaswi met with who procures his food by begging, who is free from all attachments in the midst of his fellow men, who leads a life of freedom who has given up all the transactions of giving and taking, who is content with wearing a sheet made of old, worn out and torn rags of cloth found by the roadside, who has no desire for honour, who is free from vanity and who only takes pleasure in the enjoyment of happiness produced by self-denial

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेज सुबन्धो जलं
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामाञ्जलि ॥
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्म्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि ॥८७॥

हे माता पृथिवी! पिता वायु! मित्र तेज! बन्धु जल! भाई आकाश! अब मैं आप को अन्तिम विदाई का प्रणाम करता हूँ। आप की सङ्गति से मैंने पुण्य-कर्म्म किये और पुण्योंके फल-स्वरूप मुझे आत्मज्ञान हुआ, जिसने मेरे ससारी मोह का नाश कर दिया। अब मैं परमब्रह्म में लीन होता हूँ ॥८७॥

मनुष्य-शरीर पृथ्वी, वायु, तेज, जल और आकाश—पाँच तत्त्वों से बनता है। जिसे आत्मज्ञान हो गया है, जिसने ब्रह्म को पहचान लिया है, वह इन पाँचों तत्त्वों से विदा लेता है और प्रणाम करके कहता है, कि मैं आप पाँचों के सङ्ग रहने से—यह शरीर धारण करने से—इस योग्य हुआ कि, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सका। अब मेरा आप का साथ न होगा, अब मैं चोले में न आऊँगा, अब मुझे जन्म लेना न पड़ेगा। मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ, क्योंकि आप की सुसंगति से ही मुझे यह फल मिला है। अब मै आपसे सदा को विदा होता हूँ। अब मैं ब्रह्म के आनन्द में मग्न हूँ। अब मुझे यहाँ आनेकी, आप लोगों की सगति करने की, यानी शरीर धारण करने की ज़रूरत नहीं। मतलब यह है, कि मनुष्य का चोला ब्रह्मज्ञान के लिए मिलता है, और चोलों में यह ज्ञान हो नहीं सकता। जो मनुष्य-चोले में आकर ब्रह्मज्ञान लाभ करते हैं और उसकी बदौलत परम पद या मोक्ष प्राप्त करते हैं,—वे ही धन्य है, उन्हीं का मनुष्य-देह पाना सार्थक है।

छप्पय ।

अरी मेदिनी मात, तात मारुत सुन ऐरे ।
तेज सखा जल भ्रात, व्योम बन्धु सुन मेरे ।
तुमको करत प्रणाम, हाथ तुम आगे जोरत ।
तुम्हरेही सत्सग, सुकृत की सिन्धु झकोरत ।

अज्ञान जनित यह मोहहू, मिट्यौ तिहारे सगसों।
आनन्द अखण्डानन्दको, छाय रह्यो रसरग सौं ॥८७॥

87 O mother Earth, O father Air, O friend Light, O kinsman Water, O brother space, I did you all my last fare well greeting ! In company with you, as the composite parts of my physical body, I did the good deeds which bore the fruit of endowing me with pure self consciousness which again destroyed all my earthly attachments I now go to be absorbed in the Supreme Eternal

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
न्प्रोदीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥८८॥

जब तक शरीर ठीक हालत में है, बुढापा दूर है, इन्द्रियों की शक्ति घनी हुई है, आयु के दिन बाकी हैं, तभी तक बुद्धिमान को अपने कल्याण की चेष्टा अच्छी तरह से कर लेनी चाहिये। घर जलने पर कुआँ खोदने से क्या फायदा ? ॥८८॥

जब तक आपका शरीर निरोग और तन्दुरुस्त रहे, बुढापा न आवे, आपकी इन्द्रियों की शक्ति ठीक बनी रहे, आप का अन्त दूर हो, उम्र बाकी दीखे, तभी तक आप अपनी भलाई की चेष्टा कर लीजिये, यानी ऐसी हालत में ही भगवान् का भजन कर लीजिये। जब आप रोगों से जर्ज़रित हो जायँगे,

कफ-खाँसी और दम घेर लेंगे, आँखों से न दीखेगा, कानों से न सुनाई देगा, गले में घर-घर कफ बोलने लगेगा, मौत अपना पञ्जा जमा देगी, तब आप क्या करेंगे ? अर्थात् कुछ नहीं। उस समय यदि आप कुछ करने की चेष्टा करेंगे भी, तो आपकी दशा उसकी सी होगी, जो घरमें आग लगने पर कूआ खोदता है।

किसी ने कहा है:—

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनं।
तृतीये नार्जित पुण्य, चतुर्थे किं करिष्यति ?"

बचपन में यदि विद्या नहीं सीखी, जवानी में यदि धन सञ्चय नहीं किया, बुढ़ापे में यदि पुण्य नहीं किया, तो चौथेपनमें क्या करोगे ?

सबसे अच्छी बात तो बचपन में ही परमात्मा की भक्ति करना है। ध्रुव और प्रह्लाद ने बचपन में ही भक्ति करके परमात्मा के दर्शन किये थे। अगर इस उम्र में न हो सके, तो जवानी में, और जवानी में भी न हो सके तो बुढापे में तो चूकना ही न चाहिये। स्त्री-पुत्र धन-दौलत का मोह छोड़, परमात्मा में मन लगाओ, आज-कल पर मत टालो, क्योंकि मौत हर समय घातमें है, न जाने कब तुम्हें लेजाय। जब वह आजायगी, तब तुमसे कुछ करते-धरते न बनेगा, तुम घबरा जाओगे, मुँह से परमात्मा का नाम न निकलेगा और हाथों से दान या पराया उपकार न कर सकोगे। उस समय तुम्हारा परलोक

बनाने की चेष्टा करना, आग लग जाने पर कूआँ खोदने वाले के समान मूर्खतापूर्ण काम होगा। अत जो करना है, मरने के समय से पहले ही करो। किसी ने परलोक-साधन के लिये क्या अच्छी सलाह दी है —

> वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
> तेनेशस्यपिधीयतामपचितिः कामे मतिस्त्यज्यताम् ,
> पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम् ॥
> आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥

नित्य वेद पढो और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करो। वेद-विधि से परमेश्वर की पूजा करो। विषय-भोगोंको बुद्धि से हटाओ, यानी विषयोंको त्यागो। पाप-समूहका निवारण करो। ससारी सुख इत्र फुलेल-चन्दनादि के लगाने, स्त्री-भोगने और नाच-गाना देखने-सुनने प्रभृति का परिणाम विचारो, यानी इनके दोषों की भावना करो। परमेश्वर या आत्मा में अनुराग करो और गृहस्थी के अनेक दोषों को समझकर, शीघ्र ही घर को त्याग कर वन को चले जाओ।

उस्ताद ज़ौक कहते हैं—

> बेनिशाँ पहले फनासे हो, जो हो तुझको बक़ा।
> वर्ना है किसका निशाँ, ज़ौकके फनाने रक्खा॥

मरने से पहले सासारिक बन्धनों से अपने चित्त को हटा

ले—अमर होने की यही एक तरकीब है, वर्ना मौत किसी का निशान नहीं छोडती।

छप्पय।

जौं लौं देह निरोग, और जौं लौं न जरा तन।
अरु जौं लों बलवान् आयु, अरु इन्द्रिनके गन।
तौं लौं निज कल्याण करन को, यत्न विचारत।
वह पण्डित वह धीर वीर, जो प्रथम सम्हारत।
फिर होत कहा जर्जर भये, जप तप संयम नाहिं बनत।
भव काम उठ्यौ निज भवन जब, तब क्योंकर कूपहि खनत॥८८॥

88 As long as the body is in good health and old age is still far off, as long as the faculties of senses are strong and the end of life has not come, a wise man should try his best for his spiritual weal When the house has caught fire what is the use of attempting to dig a well

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥८६॥

हमने इस जगत्में नम्रोंको सन्तुष्ट करनेवाली और वादियों का मान भञ्जन करनेवाली विद्या नहीं पढी, तलवार की धार से हाथीके मस्तक का पिछला भाग काटकर अपना यश स्वर्ग तक

नहीं पहुँचाया, चाँदनी रात में सुन्दरी के कोमल अधर-पल्लव (निचलेहोठ) का रस भी नहीं पिया। हाय ! हमारी जवानी सूने घरमें जलनेवाले और आपही बुझ जाने वाले दीपक की तरह योंही गयी ! ॥८६॥

दोहा ।

विद्या पढ़ी न रिपु दले, रह्यो न नारि समीप ।
यौवन यह योंही गयो, ज्यों सूने गृह दीप ॥८९॥

89 We did not attain in this world literary knowledge which pleases the meek and puts down the vanity of the crowds of critics Nor did we extend our fame up to the gates of Swarga by cutting down the backs of elephants' heads with the edge of a sword Nor did we drink in the moonlight the flowery juice of the soft lower lips of our beloved ones Alas, that our youth has passed away uselessly like a burning lamp in an empty house, which spends itself away without being of any use to anybody

॰ ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषाचिदेतन्मदमानकारणम् ॥
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥९०॥

अच्छे मनुष्यों में तो ज्ञान उनके मान-मद आदि का नाश करता है, किन्तु दुष्टोंमें वही ज्ञान मान-मद प्रभृति औगुणों की वृद्धि करता है। एकान्त स्थान योगियों के लिये तो मुक्ति दिलानेवाला

होता है, किन्तु वही कामियों की कामज्वाला को बढ़ानेवाला होता है ॥६०॥

जिस तरह स्वाति-बूँद सीप में पड़ने से मोती और केले में कपूर हो जाती है किन्तु सर्पमुख में पड़ने से विष का रूप धारण करती है, उसी तरह एक ही चीज़ पुरुष-भेद से अलग-अलग गुण दिखाती है। ज्ञान से अच्छे लोगों का अभिमान नाश हो जाता है, वे सब किसी को अपने बराबर समझते हैं, सब के साथ सहानुभूति रखते हैं, किसी का दिल नहीं दुखाते, किन्तु उसी ज्ञान से दुष्ट लोगों की दुष्टता औरभी बढ़ जाती है, वे अपने सामने जगत् को तुच्छ समझते हैं, विद्याभिमान के मारे किसी की ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखते, अपने सिवा सबको पशु समझते हैं। एकही ज्ञान दो स्थानों में स्थान-भेद से अपना अलग-अलग प्रभाव दिखाता है। जैसे, एकान्त स्थान योगियोंके चित्त को ब्रह्मविचार में लीन करता है और इससे उनको परमपद—मुक्ति—मिल जाती है; किन्तु वही एकान्त स्थान कामियों के दिलोंमें मस्ती पैदा करता है।

दोहा ।

ज्ञान घटावै मान मद, ज्ञानहि देय बढ़ाय ।
रहसि मुक्ति पावै यती, कामी रत लपटाय ॥९०॥

90. Knowledge serves the good men as a destroyer of

their vanity and false pride In some, it enhances the same evils A lonely place is for the spiritual salvation of those who practise self-restraint, while it increases hundredfold the lust of sensual people.

जीर्णा एव मनोरथा स्वहृदये यातं जरां यौवनं
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च वन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान्काल कृतान्तोऽक्षमी
ह्याज्ञातस्मरशासनाङ्घ्रियुगलं मुक्त्वास्तिनान्यागति ॥८१॥

हमारी इच्छायें हमारे हृदयमें ही जीर्ण हो गई, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे-अच्छे गुण भी कदरदानों के न होने से बेकार हो गये, सर्व-शक्तिमान् सर्वनाशक काल (मृत्यु) शीघ्र शीघ्र हमारे पास आ रहा है ; इसलिये अब हमारी समझ में कामारि शिवके चरणों के सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं है ॥६१॥

मनुष्य दु खित होकर कहता है,—हमारे मनकी मनमें ही रह गई, हमारे अर्मान न निकले, और जवानी कूँच कर गई, अब उसके आने की भी उम्मीद नहीं, क्योंकि जवानी किसी की भी लौटकर आती सुनी नहीं।

मनुष्य की तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक-पर-एक इच्छा उठा ही करती है। इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मौत आ जाती है। महाकवि गालिब भी पछता कर कहते हैं —

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी, कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मान, लेकिन फिर भी कम निकले ॥

महाकवि दाग भी घबरा कर कहते हैं .—

भरे हुए हैं हजारों अर्मा ।
फिर उस पै है हसरतों की हसरत।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही।
मैं दिलकी वसअत से तंग होकर॥

मेरे मनमें हजारो वासनायें है, पर वासनाओं के पूर्ण न होने का दुःख भी कुछ कम नहीं है। हे ईश्वर! मैं अपने मनकी विशालता से तग हो गया। अब मेरा जी यही चाहता है, कि इस विराट् दिल से तग होकर कही चला जाऊँ।

इसी तरह महात्मा सुन्दरदासजी भी कहते है—

तीनहिं लोक अहार कियो सब।
सात समुद्र पियो पुनि पानी॥
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत।
काढ़त आँख डरावत प्रानी॥
दाँत दिखावत जीभ हिलावत।
या हित मैं यह डाकिनि जानी॥
सुन्दर खात भये कितने दिन।
हे तृष्णा! अजहु न अघानी॥

इस तृष्णा से सभी समझदार अन्तमें दुखी हुए हैं और उन्होंने पछता-पछता कर ऐसी ही बातें कही हैं। इस तृष्णा के फेरमें मनुष्य का बुढापा आ जाता है, पर तृष्णा बूढी नहीं होती।

बुढापे में उसका ज़ोर औरभी बढ जाता है। यह तीनो लोको को खाकर और सातो सागरोको पोकर भी नहीं धापती। इसलिये मनुष्यको आशा-तृष्णा त्यागकर, परमात्मामें लौ लगानी चाहिये। जो नहीं चेतते, उनका परिणाम बुरा होता है। जब एकदमसे बुढापा छा जाता है, शरीर अशक्त हो जाता है, तब कुछ भी नहीं होता। उम्र खतम होने या मृत्यु आजानेपर मनुष्य पछताता हुआ सबको छोड चला जाता है। कहा है —

ये मम देश विलायत हैं गज।
ये मम मन्दिर ये मम थाती॥
ये मम मात पिता पुनि बान्धव।
ये मम पूत सु ये मम नाती॥
ये मम कामिनि केलि करै नित।
ये मम सेवक हैं दिन राती॥
सुन्दर ऐसेहि छांडि गयो सब।
तैल जर्यो सु बुझी जब बाती॥

यह मेरा देश है, ये मेरे हाथी-घोडे महल-मकान हैं, ये मेरे [illegible] बाप और बन्धुबान्धव तथा नाती-पोते है, यह मेरी [illegible] ये मेरे सेवक हैं, ऐसे करता-करता ही मनुष्य सबको छोड़ [illegible] र चला जाता है। जिस तरह तैल के जल जाने पर दीप [illegible] बुझ जाता है, उसी तरह उम्र पूरी होने पर मनुष्य मर [illegible] है। अत: जवानी में ही स्त्री-पुत्र प्रभृति सब का

मोह छोड़, एकान्त में जा, परमात्मा का भजन करना चाहिये, क्योंकि बुढ़ापे में कुछ नहीं हो सकता। शेख सादीने कहा है और ठीक कहा है:—

जवान गोशानशीं, शेर मर्दे राहे खुदास्त।
कि पीर खुद न तवानद, ज़े गोशये बरखास्त॥

जवानी में जिन्होंने एकान्त मे ईश्वर भजन किया है, सच्चे भक्त वेही हैं। बूढ़ा आदमी यदि एकान्तवास पर गर्व करे तो झूठा है, क्योंकि वह तो जहाँ पड़ा है, वहाँ से सरक ही नहीं सकता।

जो लोग सारी उम्र ससारी जंजालों में बिता देते हैं और परमात्मा का भजन नहीं करते, उनका नकशा स्वामी सुन्दरदास जी ने खूब ही अच्छा खींचा है —

ग्रीव त्वचा कटि है लटकी।
कचहुं पलटे अजहुँ रतिबामी॥
दन्त गये मुख के उखरे।
नखरे न गये सु खरो खर कामी॥
कम्पत देह सनेह सु दम्पति।
सम्पति जपत है निशि जामी॥
सुन्दर अन्तहु भौन तज्यो
न भज्यो भगवन्त सु लौनहरामी॥

मनुष्य की गरदन हिलने लगती है, खाल लटकने लगती है, कमर झुक जाती है, बाल सफ़ेद हो जाते हैं, तोभी स्त्री के साथ भोग करता है। मुँह के दाँत उखड जाते हैं, फिर भी कामी गधे के नखरे नहीं जाते, देह काँपती है, पर स्त्री से प्रीति रखता है और रात-दिन धन का जाप करता है। अन्त में घर छोडता है, पर नमकहराम मालिक का भजन नहीं करता।

छप्पय।

मन के मनहीं माहिं, मनोरथ वृद्ध भये सब।
निज अगन में नाश भयो, वह यौवनहू अब।
विद्या ह्वै गई बाँझ, बूझवारे नहिं दीसत।
दौर्‌यो आवत काल, कोपकर दशनन पीसत।
कबहूँ नाहिं पूजे प्रीति सों, चक्रपाणि प्रभु के चरण।
भवबन्धन काटे कौन अब, अजहूँ गहुरे हरि शरण ॥९१॥

91 All our desires have been stifled within us Our youth has been changed into old age All our good qualities have resulted in fruitlessness through the absence of those who could appreciate them The all-powerful Death, the destroyer of everything, is fast approaching Now we have realised that there is no shelter for us, save that of the feet of Shiva, the enemy of Cupid

८ तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सञ्छालीन्कवलयति शाकादिवलितान्।

प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढ़तरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जन ॥८२॥

जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है, तब वह शीतल जल पीता है, जब उसे भूख लगती है, तब वह साग और कढ़ी प्रभृति के साथ चाँवल खाता है, जब उसकी कामाग्नि तेज होती है, तब वह स्त्री को ज़ोर से गले लगाता है, विचार कर देखने से मालूम होता है, कि ये सब बीमारियों की एक-एक दवा हैं, परन्तु लोग इन्हें भूल से सुख के समान मानते हैं। ॥८२॥

प्यास रोग की दवा शीतल जल है, यानी शीतल जलसे तृष्णा नाश होती है। क्षुधारोग की दवा रोटी-भात और साग दाल प्रभृति हैं, यानी भात-दाल प्रभृति से भूख-रोग नाश होता है। कामाग्नि भी एक रोग है, उसके शान्त करने का उपाय स्त्री को छाती से लगाना है, यानी स्त्री को आलिङ्गन करने या चिपटाने से काम की आग ठण्डी हो जाती है। (दाह ज्वर में षोडशी कामिनी के शरीर में चन्दन लगाकर चिपटाने से बहुत लाभ होता है।) इन बातों पर विचार करने से साफ़ मालूम होता है, कि शीतल जल-पान, भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन, स्त्रियों का आलिङ्गन प्रभृति तृषा, क्षुधा, कामाग्नि प्रभृति रोगों की औषधियाँ है। इन को सुख समझना भूल नहीं तो क्या है?

छप्पय।

प्यास लगे जब पान करत, शतिल सुमिष्ट जल।
भूख लगे तब खात, भात-घृत दूध और फल।
बढत कामकी आगि, तबहिं नववधू सग रति।
ऐसे करत विलास, होत विपरीत दैव गति।
सब जीव जगतके दिन भरन, खात पियत भोगहु करत।
ये महारोग तीनों प्रबल, बिना मिटायें नहिं मिटत ॥९२॥

92 *When men's throats are overpowered by thirst, they drink clear and delicious water When they are stricken with hunger, they eat rice together with curry made of vegetables etc When the consuming fire of lust is kindled, they embrace closely their wives. Each of these actions is a remedy for a separate malady, but people take delight in them mistaking them for pleasures!*

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो
त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः ॥८३॥

हे शिव ! हे कामारि ! गंगा स्नान करके तुझ पर पवित्र फल-फूल चढाता हुआ, तेरी पूजा करता हुआ, पर्वत की गुफा में शिला पर बैठा हुआ, अपने ही आत्मा में मग्न होता हुआ, वन-फल खाता हुआ, गुरु की आज्ञानुसार तेरे ही चरणों का ध्यान करता हुआ कब मैं इन ससारी दुःखों से छुटकारा पाऊंगा ? ॥९३॥

दोहा ।

नर सेवा तजि ब्रह्म भजि, गुरुचरणन चित लाय ।
कब गंगातट ध्यान धर, पूजोंगो शिव पाय ? ॥९३॥

93. *O Shiva, enemy of Cupid, when shall I be saved by Thy grace from the miseries of the world, bathing in the Ganges water, worshipping Thee with purified flowers and fruits, meditating on Thee as my idol, seated on a stone in a mountain cave, content with my own self, eating only wild fruits, obeying the commands of my religious preceptor, devoted to Thy feet and resolved to sit in contemplation as the only path to salvation ?*

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वच:
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥
येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यैव विद्यांगना
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ९४॥

मैं उनको परमेश्वर समझता हूँ, जो किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते, जो पर्वत की शिला को ही अपनी शय्या समझते हैं, जो गुफा को ही अपना घर मानते हैं, जो वृक्षों की छालों को ही अपने वस्त्र और जङ्गली हिरणों को ही अपने मित्र समझते हैं, जो कुदरती झरनों का जल पीते हैं और जो विद्या को ही अपनी प्राण-प्यारी समझते हैं ॥९४॥

जो किसी चीज़ की चाह नहीं रखते, वे किसी की परवा नहीं करते, वे किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते, जिनको

वासनाओं का अन्त नहीं होता, वे ही जने-जनेके सामने सिर झुकाते है। जो संसार के दास नहीं, वे सचमुच ही देवता है। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है :—

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया।
फरिश्ता उसका हमपाया न पाया।

जो मनुष्य संसार का दास नहीं—संसारका कुत्ता नहीं—वह देवताओं से कहीं ऊँचा है। देवता उसकी बराबरी नहीं कर सकते। जिसमें सांसारिक वासनाओं का लेश न हो, उस मनुष्य और देवताओं में कोई भेद नहीं।

सच्चे महात्मा वन और पर्वतों को छोड़कर दुनिया में कभी नहीं आते, वे माँगकर नहीं खाते, उन्हें वन में ही जो कुछ मिल जाता है, वही खा लेते हैं।

महाकवि गालिब कहते हैं :—

बे तलब दें तो मजा उसमें सिवा मिलता है।
वह गदा जिसका न हो खूये सवाल अच्छा है।

बिना माँगे मिल जानेमें बड़ा आनन्द है। फकीर वही अच्छा, जिसमें माँगने की आदत न हो।

और भी कहा है —

दस्ते सवाल सैकड़ों ऐबों का ऐब है।
जिस दस्त में यह ऐब नहीं वह दस्ते गैब है।

कबीर साहब ने भी कहा है :—

अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहै कबीर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय॥
उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन॥

महापुरुष भगवान् के भरोसे रहते हैं, इसलिए उन्हें उनकी ज़रूरत की चीजें उनके स्थान पर ही मिल जाती हैं। वे संसार-रूपी काजल की कोठरी में आकर कालिख लगाना पसन्द नहीं करते। संसारी लोगों के साथ मिलने-जुलने में भलाई नहीं। संसार से दूर रहना ही भला। क्योंकि मनुष्य जैसे आदमियों को देखता और जैसों की संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। रागियों की संगति से वैरागी भी रागी या विषय-भोगी होजाता है। जल और वृक्षों के पत्ते खानेवाले ऋषि स्त्रियों के देखने-मात्र से अपने तप से हीन हो गये। इसी लिये शास्त्रों में लिखा है कि, सन्यासी संसारियों से दूर रहे। वास्तविक महापुरुष जो सच्चे ब्रह्मज्ञानी या रासायनिक हैं, किसी के भी द्वार पर नहीं जाते। जिसे कुछ कामना होती है, वही किसी के द्वार पर जाता है। कामनाहीन पुरुष कभी किसी के पास नहीं जाता। सच्चे महात्मा संसारियों से अपनी जान छिपाते हैं।

दो महात्मा जो राजा से मिलना नहीं चाहते थे।

एक नगर के बाहर वनमें दो बड़े ही त्यागी महात्मा रहते थे। राजा ने चाहा कि, मैं उनसे मिलूँ। राजा अपने परिवार सहित उनसे मिलने गया। महात्माओं ने सोचा—यह तो बुरी बला लगी। इसे मदा को टालना चाहिये। आज यह आया है, कल नगर भर आवेगा। फिर हम तो भजन ही न कर सकेंगे। जब राजा पास पहुंचा, तो वे आपस में लड़ने लगे। एक कहने लगा,—"तैंने मेरी रोटी खाली।" दूसरे ने कहा—"तूने भी तो कल मेरी खा ली थी।" यह हाल देख कर राजा को घृणा हो गई और वह लौट आया। इस तरह महात्माओं के एकान्तवास में विघ्न न पड़ा।

संसारियों की सङ्गति बुरी।

एक महात्मा कहीं से आकर काशी में रह गये। दस पांच वर्ष बाद अनेक लोग उन्हें जान गये और उन्हें अपने-अपने घर भोजन के लिये लेजाने लगे। महात्माने देखा कि, घरों में जानेसे विक्षेप होता है, इसलिये उन्होंने अपनी लंगोटी ही उतार कर फेंक दी, कि नंगे रहने से लोग घरों पर न ले जायेंगे। पर फल उल्टा

हुआ, उनकी महिमा और भी बढ गई। अब तो बड़े-बडे राजा, रईस और जमीन्दार उनके दर्शनों को आने लगे। उनका सारा समय अमीरों से मिलने में ही बीतने लगा। इतने में एक और महात्मा आये और उनसे एकान्त में पूछा—"क्या हाल है ?" महात्माने कहा—"बवासीर से मरते हैं।" आगन्तुक महात्माने कहा—"लोग तो आप को सिद्ध कहते हैं।" महात्माने कहा—"कहा करें, लोग मूर्ख हैं। हमारे चित्तमें तो वासनायें भरी हैं, न जाने हमें किस योनि में जन्म लेना होगा। हमारा तो सारा वैराग्य इन धनियो की सगतिमें ही नष्ट हो गया।" सच है, निवृत्ति-मार्गवालों को प्रवृत्ति मार्गवालो की संगति करना अच्छा नही।

छप्पय ।

बसैं गुहागिरि, शुचित शिला शय्या मनमानी ।
वृक्ष वकल के वसन, स्वच्छ सुरसरि को पानी ।
बनमृग जिनके मित्र, वृक्ष फल भोजन जिनके ।
विद्या जिनकी नारि, नहीं सुरपति सम तिनके ।
ते लगत ईश सम मनुज मोहि, तनुशुचि ऐसे जग भये ।
जे पर सेवा के काज को, हाथ नाहिं जोरत नए ॥९४॥

94 I think such persons are only affluent who do not bow their heads to any one, who make a mountain stone their bed, a cave their home, the bark of trees their clothes, the wild deer their friends and the soft fruits of wild trees their food, who

drink the water coming out of natural springs and who consider knowleege only to be their beloved wife

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटाया
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यावटविटपिभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ॥
कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःखासिकानां
वक्त्रं वीक्षेत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥९५॥

जब कि गंगा, जो शिवजी के मस्तक को चूमती हुई भली मालूम होती है, बडकी डालियों की छालों और अपने तट पर लगे हुए फलों से आदमी का गुज़ारा करने को तैयार है, तब कौन विद्वान् या ज्ञानी, यदि दुःखित कुटुम्बियों पर दया न आती तो, कंगाली की मुसीबतों से आह भरती हुई—दुःख से गहरे साँस लेती हुई—स्त्री का मुख देखना चाहता ? ॥९५॥

मतलब यह है कि, पुरुष को किसी प्रकार का भी दुःख उठाने की ज़रूरत नहीं, उसे गंगा ही सब कुछ देने को तैयार है। वह गङ्गाजल पीकर और उसके किनारे पर उगे हुए वनफल खाकर और वटवृक्ष की छालों के कपडे पहन कर गुज़ारा कर सकता है, पर स्त्री के कारण वह ऐसा कर नहीं सकता। साराश यह कि, सब दुखों की मूल स्त्री है। यदि कुटुम्ब-वृद्धि की ज़रूरत न हो, तो स्त्री की दरकार नहीं, और यदि स्त्री न हो तो फिर दुःख ही क्या ? लोगों की खुशामद करने, जने-जने की लल्लोपत्तो करने, दुष्टों के कटुवचन सुनने

को स्त्री ही मजबूर करती है। दया के मारे पुरुष से उसका और उसके बच्चों का कष्ट देखा नहीं जाता।

छप्पय।

सोहत जो शिवसीस, जटा सुरसरि की धारा।
बटतरु बल्कल फूल, जासु सदवृत्ति अपारा।
त्याग सुखद अस गंग, कौन ऐसो नर वो है।
परिजन करुणाहीन, नारि को आनन जोहै।
दीर्घ श्वाससों विपत्तिज्वर, जीरण भारी गहतु हैं।
सबाविधि यह दुखकी खान, अति निर्दय जेहि त्रिय कहतु हैं॥९५॥

95 *When the Gangs which looks beautiful in her action of kissing the Shiva's head, is ready to supply a livelihood by offering the bark of banyan trees and good fruits growing on her banks, what wise man would care to look at the face of a wife heaving deep sighs of distress caused by extreme poverty, were it not for kindness towards the afflicted members of his family?*

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम्॥
आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥८६॥

आश्चर्य की बात है, कि लोग काशी छोड़कर और जगह क्यों बसते हैं, जहाँ उपवनों में नाना प्रकार के भोजन बनाकर खाना

-ही कठिन तप है जहाँ लंगोटी पहनना ही बढ़िया कपड़ा है, जहाँ भीख माँगना ही प्रतिष्ठा है और जहाँ मौत का आना ही परम मङ्गल समझा जाता है? ॥६६॥

५ लोगों का खयाल है, कि जो काशी में मरता है, उसकी मोक्ष हो जाती है, इसी से अनेक लोग वृद्धावस्था आते ही सब को छोड़ काशी में जा बसते हैं। वहाँ मौत से कोई नहीं डरता, वहाँ की मृत्यु को लोग परम शान्तिदायिनी समझते हैं *। वहाँ कोपीन लगाकर भीख माँगने वाले बुरी नज़र से नहीं देखे जाते, इसलिए लोगों को काशी-वास करना चाहिये।

कुण्डलिया।

काशी में जहँ शिव बसत, श्रेष्ठ तासु उद्यान।
विविध अशन सम तप नहीं, देख्यो उग्र महान।
देख्यो उग्र महान, भीख जहँ सुन्दर भूषण।
खण्ड एक कोपीन, बसन बहुमूल्य अदूषण।
मरणहि मंगलकरण, मिलें जहँ हर अविनाशी।
को ऐसो विद्वान, तजै जो ऐसो काशी ॥९६॥

---

* आज-कल भी इस ख़याल के लोग बहुत हैं, पर पहले जितनी महिमा अब नहीं। जो आत्मज्ञानी हैं, वे तीर्थों में नहीं जाते, क्योंकि स्वयं परमात्मा उनके हृदय-कमल में मौजूद है। हाँ, जो अज्ञानी हैं, वे ही तीर्थवास करते और तीर्थ में शरीर त्यागना चाहते हैं।

96 It is a wonder why wise men like to take up their abode in any other place than Kashi, where partaking of different kinds of eatables in gardens is the most austere penance, where the wearing of a narrow strip of loin cloth is considered as respectable dress, where unrestricted wandering beggary is thought to be honourable and where the near approach of death is looked upon as bringing everlasting bliss!

नायंते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं नि सीमशर्मप्रदम् ॥८७॥

हे मन ! जिनके द्वार पर,—"मालिक मकान से मिलने का समय नहीं है, वे इस समय एकान्त में बैठे हैं, वे इस वक्त सो रहे हैं, अगर तुम्हें यहाँ खड़ा देखेंगे तो नाराज होंगे" —ऐसी बातें सुनाई देती हैं, उनको त्याग कर विश्वेश की शरण में जा, जिनके द्वार पर रोकनेवाला दरवान् नहीं, जहाँ निर्दय और कठोर वचन कभी सुनने में नहीं आते, जो अनन्त और नित्य सुख के देनेवाले हैं॥६७॥

मूर्ख मनुष्य ना-समझीके कारण, वृथा अमीरों के दरवाज़े पर जाता है और अपमान-सूचक बातें सुनता है, जिनके यहाँ जाता है उन से मिलने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है, दरवानों की तरह-तरह की बेढङ्गी बातें सुनता है। अगर वह कुछ भी अक्ल से काम ले, तो उसे उसके द्वार पर जाना



अरे मूर्ख! गिरीश की शरण में क्यों नहीं जाता, जिनके द्वार पर रोकनेवाले दरबान नहीं हैं। जहाँ निर्दय और कठोर वचनों का नाम भी नहीं है?

चाहिये, जहाँ कोई रोकने वाला नहीं, जहाँ दिल दुखानेवाली बातों का नाम भी नहीं, जो सारे संसार का स्वामी और नित्य सुख के देने वाला है। वह क्या उसकी इच्छा पूरी न करेगा ? अवश्य पूरी करेगा। जो बिना जड की अमरबेल की पोषता है, उसे छोडकर और को खोजना भूल की बात है। रहीम कवि कहते हैं :—

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि ?

रहीम कवि कहते हैं, जो प्रभु बिना मूल की अमरबेल की प्रतिपालना करता है, ऐसे प्रभु को छोडकर किसे खोजते फिरें ?

और भी—

(१)

जा दिनते गर्भवास तज्यो नर।
आइ आहार लियो तबही को॥
खावहि खात भये इतने दिन।
जानत नाहि न भूख कहीं को॥
दौरत धावत पेट दिखावत।
तू शठ कोट सदा अनहो को॥
सुन्दर क्यूँ विश्वास न राखत।
सो प्रभु विश्व भरे सब ही को॥

(२)

खेचर भूचर जे जलके चर।
देत आहार चराचर पोषै॥
वे हरि जो सब कूँ प्रतिपालत।
ज्यूँ जिहि भाँति तिसी विधि तोषै॥
तू अब क्यूँ विश्वास न राखत।
भूलत है कित धोखहि धोखै॥
तोहि तहाँ पहुँचाय रहै प्रभु।
सुन्दर बैठि रहै किन ओखै॥

ईश्वर को शरण में जाने से अभाव नहीं रहता।

एक राजा बडा आलसी और विषयी था। वह राज-काज को ज़रा भी न देखता था। सारा भार वज़ीर के सिर पर था। वजीर यदि किसी जरूरी काम की आज्ञा लेने को आता, तो राजा उसे घण्टों द्वार पर बिठाये रखता, पर अन्दर न बुलाता, इस से मन्त्री को घृणा हो गई, उसने घर आकर पुत्रों से कहा कि, चार घण्टों में जितना धन और सामान ले जा सकते हो, दूसरे राजा के राज्य में ले जाओ। मैं अब इस संसार को त्याग कर परमात्मा से लौ लगाऊँगा। लड़के जितना धन ले जा सके लेगये। तब शेष धन वज़ीरने गरीबों को लुटा दिया और आप

किसी और राजा के राज में झोपड़ी बनाकर तप करने लगा।

दो तीन दिन बाद जब उस विषयी राजाके राज्यमें गड़बड़ फैली, उसे अपने प्रधान मन्त्रीकी याद आई। बुलानेको आदमी भेजे, तो मालूम हुआ, कि वह तो सन्यासी हो गया है। राजा स्वयं उसके पास गया और बोला—"हे मन्त्रिवर! तुम इतने बड़े राज्यके प्रधान मन्त्री और कर्त्ता-धर्त्ता थे, तुमने वह सब सुखैश्वर्य्य छोड़ क्यों वनमें डेरा लगाया है? तुम्हें इसमें क्या मिला?" मन्त्री ने कहा—"महाराज! ईश्वर की शरण में आने से इतना तो दो-चार दिन में हो मिल गया कि, घण्टों आप के द्वार पर आप की प्रतीक्षा में पाँव पीटा करता था; पर आप दर्शन तक न देते थे, पर आज श्रीमान, सपरिवार, मेरे स्थान पर, मुझे आदरणीय समझ कर, इस सघन वन में पधारे हैं। यह तो दो-तीन दिन की कमाई है। आगे की बात फिर पूछ सकते हैं।" इसमें शक नहीं, जो सब की आशा तज कर एक परमात्मा की शरण में जाता है, उसे कोई अभाव नहीं रहता, पर पक्के और दृढ़ विश्वास की ज़रूरत है।

ईश्वर को जो जिसी कामना से भजता है, उसको वह कामना अवश्य पूरी होती है। पर जो कोई उसे निष्काम भक्ति से भजता है, उसे स्वयं ईश्वर मिलता है, और जब वह मिल जाता है, तब कुछ भी घाटा नहीं रहता, त्रिलोकी की सम्पदा उसके चरणों में ज़बर्दस्ती आना चाहती है। अत

बुद्धिमानों को परमात्मा को छोड़ और किसी के आगे दीनता न करनी चाहिये। मनुष्य के पास है ही क्या? कोई छोटा भिखारी है और कोई बड़ा। जिसे किसी भी चीज़ की चाह नहीं, वही सच्चा धनी है। ऐसा धनी करोड़ों में एक भी नहीं, तब मँगते को मँगते से माँगना क्या उचित है?

ईश्वर ही कामना पूरी कर सकता है।

एक राजाने किसी राजा का राज्य छीन लिया। वह राजा तप करने लगा। कुछ दिन बाद उसकी प्रशंसा सुन कर राजा उस तपस्वी-राजा के पास गया और बोला—"आप अपना राज्य वापस लीजिये, इसके सिवा आप जो और माँगे सो दूँ।" तपस्वी-राजा ने कहा—"राजन्! आप को धन्यवाद है, पर यदि आप मृत्युरहित जीवन, नित्यधन, वृद्धावस्था-रहित-जवानी, बिना दुःख का सुख और बिना रज की खुशी दे सकें तो दीजिये।" राजाने कहा—"इन्हें तो मैं नहीं दे सकता। ये सब तो ईश्वर से ही मिल सकते हैं।" यह जवाब सुन तपस्वी-राजाने कहा—"इसी से मैं अब सबको छोड़ ईश्वर की शरण में आया हूँ कि, मेरी इच्छा पूरी हो, क्योंकि मनुष्योंसे यह काम हो न सकेगा।"

अनेक अज्ञानी जिन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं, मन में समझते हैं कि, ईश्वर हमें खाने को देने थोड़े ही आवेगा।

यह उनकी गलती है। ईश्वर उनको भी खाना पहुँचाता है, जो उसे कभी याद भी नहीं करते। फिर, जो उसे याद करते हैं, उन्हें वह क्यों न खाना पहुँचावेगा ? अवश्य पहुँचावेगा, बशर्त्ते कि उसमें दृढ विश्वास हो। अपने भक्तों के लिये ईश्वर हरदम तैयार रहता है।

नापित-भक्तके लिये ईश्वर नापित बना।



एक नाई दुर्योधन के पैर चापा करता था। एक दिन उसके चलनेके समय दो महात्मा उसे उसके द्वारपर मिल गये। वह उन्हें ईश्वरभक्त समझ, उनकी सेवा में लग गया और राजा के यहाँ जाने की बात भूल गया। समय पर राजाने नाई की याद की। भगवान् नाई का रूप धरकर दुर्योधनके पास पहुँचे और उसके पैर दाबने लगे। अन्तमें अपने भक्तकी नौकरी पूरी करके, वह वहाँसे चले गये। इतने में नाई डरता-काँपता हुआ पहुँचा और राजासे क्षमा-प्रार्थना करने लगा। दुर्योधनने कहा—"अरे पागल हो गया है क्या। अभी-अभी तो तू मेरे पैर दाबही रहा था।" इस बात को सुनकर नाई समझ गया कि, भगवान् ने स्वयं मेरे लिये नाई का काम किया। इतनीसी भक्ति-उपासनाका यह फल! अब मैं उनको छोड दूसरे की खुशामद और सेवा क्यों करूँ ? ऐसा विचार कर वह घर छोड वन में चला गया।

भगवान् का दूसरा नाम विश्वम्भर है। जो विश्व—संसार का पालन करता है, उसेही विश्वम्भर कहते हैं। भगवान् त्रिलोकी के जीवमात्र को उनका आहार पहुँचाते हैं, इसमें शक नहीं। एक सच्ची घटना है, पाठक सुनें —

ईश्वर ही सब की पालना करता है।



एक बार महाराज शिवाजी एक बहुत बड़ा महल बनवा रहे थे। उसमें हजारों मज़दूर और कारीगर लग रहे थे। उन्हें देखकर शिवाजी के मनमें अहंकार हुआ कि, मैं ऐसा हूँ, जो इतने मनुष्योंको रोज़ रोटी देता हूँ। इतने में समर्थ स्वामी रामदास आगये। वे महाराज के मन को ताड़ गये। बोले— "राजन्! सामने जो पत्थर पड़ा है उसके दो टुकड़े कराइये।" राजाके हुक्मसे पत्थरके दो टुकड़े किये गये। उस शिलाके भीतर एक मोटा-ताज़ा मेंडक निकला। उसे देखते ही शिवाजी विस्मय में डूब गये। स्वामीजी ने कहा—"राजन्! इस पत्थर के भीतर इस मेंडक को खाना कौन पहुँचाता था? मनुष्य कोई चीज़ नहीं, उसे स्वयं तृष्णा है, अत वह दरिद्री है। सबकी पालना करने वाले और प्रेम के साथ पालना करने वाले वही भगवान् हैं।

नरसी मेहताकी हुण्डी का भुगतान साहूकारका रूप धरकर

स्वय भगवान्‌ने किया। द्रौपदी और दुर्वासाके मामलेमें भगवान् वनमें दौड़े आये और द्रौपदीकी लाज रक्खी तथा राजा अम्बरीषकी—दुर्वासा से रक्षा की। ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं। मनुष्यको सदा परमात्मा से माँगना चाहिये। उसका भण्डार अक्षय है और वह परम दयालु है।

पिता पुत्र की इच्छा अवश्य पूरी करता है।



एक वैश्य निर्धनता से तंग आकर काशी चला गया और वहाँ रोज़गार करने लगा। कुछ समय बाद उसके पास लाखों-करोड़ों का धन हो गया। वह एक मन्दिर बनवाने लगा। घरसे चलते समय वह एक छोटासा लड़का छोड़ गया था। लड़का जब १६।१७ वर्षका हो गया, उसने माँसे पिताका पता पूछा। माँने कहा—"मुझे तो पता नहीं।" यह सुनते ही पुत्र अपने पिताकी तलाश में चल निकला। माँ को भी उसने अपने साथ ले लिया। कुछ दिनों बाद, बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर, वह काशी पहुँचा और पेट-पालने के लिये उसी मन्दिर में मजदूरी करने लगा। सेठ ने उसे नया मजदूर समझ, उससे उसका निवास-स्थान और पिताका नाम पूछा। उसने सब बता दिया और कहा कि माँ भी आई है। सेठ ने अपनी स्त्री को पहचान, पुत्र को छाती से लगा लिया और उसे सारा धन दे दिया। इस दृष्टान्त से

यह समझना चाहिये कि, इसी तरह जो पुरुष तकलीफें उठा-कर परमेश्वरकी खोज करता है, परमेश्वर उसे अवश्य मिल जाता है और अपने पुत्र की इच्छा पूरी करता है।

अहंकार को त्याग कर, विशुद्ध मन से, परमात्मा की खोज करो। वह दूर नहीं, तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। खोज करने से तुम्हें अवश्य मिल जायगा। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है :—

है तजस्सुस शर्त्त याँ, मिलने को क्या मिलता नहीं।
है खुदी जब तक इन्साँ में, खुदा मिलता नहीं॥

तलाश शर्त है, तलाश करनेवालों को क्या नहीं मिलता ? जब तक मनुष्य में खुदी या अहंकार है, तब तक उसे ईश्वर नहीं मिलता। अहंकार से हृदय शुद्ध हुआ और ईश्वर-दर्शन हुए। यदि ईश्वर मिल गया, तो जगत् का राज्य मिल गया। अत मनुष्यो ! मनुष्यों की खुशामद छोड़, केवल दयासिन्धु जगदीश की शरण में जाओ। वह बिना अपमान किये प्रेम के साथ आप के अभावोंको सुने और दूर करेगा तथा आप को नित्य-स्थायी सुख-शान्ति बख्शेगा।

छप्पय।

बैठ पौरिया द्वार, छड़ी कर पहरो राखत।
सोवत स्वामि हमार, जाहु तुम ऐसे भाषत।

करिहैं क्रोध अपार, लखैं जो तुमको द्वारे।
जाहु बिश्वपति द्वार, तहाँ नहिं रोकनहारे।
जहँ निर्दय कटुवादी नहीं, अवशि तहाँ चलिजाइय।
वहँ निर्भय ब्रह्मानँद सुख, ब्रह्मानँद तहँ पाइये ॥९७॥

97. O mind, leaving dependence on those at whose doors such answers are heard, as, "It is not the proper time for you to see the master of the house, as he likes to be alone now, or is asleep, and if he happens to find you standing here, he will be offended," etc, do thou take thy shelter in the mansion of the Lord of the universe at Whose doors there is no sentinel, where no unsympathetic and harsh words are heard and who is the Giver of eternal happiness

प्रिय सखि विपद्दण्डव्रातप्रतापपरम्परा-
तिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः॥
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालव-
द्भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥९८॥

हे प्यारी सखी बुद्धि ! कुम्हार जिस तरह गीली मिट्टीके लौंदे को चाकपर चढाकर डंडे से चाक को वारम्बार घुमाता है और उससे इच्छानुसार बर्तन तैयार करता है, उसी तरह संसार को गढनेवाला ब्रह्मा हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर चढाकर, विपत्तियों के डण्डे से चाक को लगातार घुमाता हुआ, हमारा क्या करना चाहता है, यह हमारी समझ में नहीं आता ? ॥९८॥

मनुष्य के पीछे भगवान् ने चिन्ता बुरी लगा दी है। बात

यह है, कि मनुष्य को पूर्व जन्म के कर्मों के कारण या इस ज
की भूलों के कारण, उसे विपत्तियां भोगनी ही पड़ती हैं। विप
त्तियों से पार होने के लिये, मनुष्य रात-दिन चिन्तित रहत
है। चिन्ता या फ़िक्रसे मनुष्यका रूप-रङ्ग आदि सब नष्ट होक
शीघ्र ही बुढ़ापा आ जाता है। आज-कल ४० बरस की उम्र
में ही लोग बूढ़े हो जाते हैं, इसका कारण चिन्ता ही है। अगर
चिन्ता न होती, तो मनुष्य को कुछ दुःख न होता। जहाँतक
हो, मनुष्यको चिन्ता को पास न आने देना चाहिये, क्योंकि
चिन्ता चिता से भी बुरी है। चिता मरे हुए को भस्म करती
है, पर चिन्ता जीते हुए को ही जलाकर खाक कर देती है,
अतः चिन्तासे दूर रहो। स्त्री पुत्र और धन की चिन्ता में
अपनी अमूल्य दुर्लभ काया को नाश न करो, क्योंकि ये स्त्री
पुत्र प्रभृति तुम्हारे कोई नहीं। और विचार ही
करना है, तो इस बात का करो। और

की चिन्ता कर, अर्थात् न कोई तेरी स्त्री है और न कोई तेरा पुत्र है, वृथा चिन्ता क्यों करता है ?

तू कौन है ? कहाँ से आया है ? क्यों आया है ? तूने अपना कर्त्तव्य पालन किया है या नहीं ? तेरा अन्तिम परिणाम क्या है ? इत्यादि विचारो द्वारा, अपने स्वरूप को पहचान जाने अथवा ईश्वर की शरण में चले जाने से ही चिन्ता से पीछा छूटेगा और शान्ति मिलेगी। निश्चय ही, चिन्ता और विपत्तियों से बचने के लिये, भगवान् का आश्रय लेना सर्वोपरि उपाय है। विपत्ति रूपी समुद्र में डूबते हुए के लिए भगवान्का नाम ही सच्चा सहारा है। गोस्वामि तुलसीदासजी ने कहा है'—

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥

तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, रामशरण आधार॥

खेलत बालक व्याल सग, पावक मेलत हाथ।
तुलसी शिशु पितु मातु इव, राखत सिय रघुनाथ॥

तुलसी केवल राम पद, लागी सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह॥

साराश यह, कि जो हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर चढाकर विपत्तियों के डण्डे से घुमाता है, यदि हम उसकी ही शरण में चले जाँय, उसी से प्रेम करें, तो वह हमारे चित्तको

यह है, कि मनुष्य के पूर्व जन्म के कामों के कारण या इस जन्म की भूलों के कारण, उसे विपत्तियाँ भोगनी ही पड़ती हैं। विपत्तियों से पार होने के लिये, मनुष्य रात-दिन चिन्तित रहता है। चिन्ता या फिक्रसे मनुष्यका रूप-रङ्ग आदि सब नष्टहोकर, शीघ्र ही बुढ़ापा आ जाता है। आज-कल ४० बरस की उम्र में ही लोग बूढ़े हो जाते हैं, इसका कारण चिन्ता ही है। अगर चिन्ता न होती, तो मनुष्य को कुछ दुःख न होता। जहाँतक हो, मनुष्यको चिन्ता को पास न आने देना चाहिये, क्योंकि चिन्ता चिता से भी बुरी है। चिता मरे हुए को भस्म करती है, पर चिन्ता जीते हुए को ही जलाकर खाक कर देती है, अतः चिन्तासे दूर रहो। स्त्री पुत्र और धन की चिन्ता में अपनी अमूल्य दुर्लभ काया को नाश न करो, क्योंकि ये स्त्री पुत्र प्रभृति तुम्हारे कोई नहीं। अगर चिन्ता और विचार ही करना है, तो इस बात का करो कि, तुम कौन हो और कहाँ से आये हो? स्वामी शङ्कराचार्य्य ने "मोहमुद्गर" में कहा है :—

का तव कान्ता ? कस्ते पुत्रः ?
संसारोऽयमतीव विचित्र ।
कस्य त्वं वा? कुत आयात
तत्व चिन्तय तदिद भ्रात ॥

कौन तेरी स्त्री है? कौन तेरा पुत्र है। यह संसार अतीव विचित्र है। तू कौन है? कहाँ से आया है? हे भाई! इस तत्त्व

राम हैं और वही शिव हैं। पर फिर भी, जिस नाम का आश्रय ले लिया, उसी का भरोसा करना ठीक है। मन भटकाना अच्छा नहीं।

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी वृन्दावन गये। वहां उन्हें भगवान् कृष्ण के दर्शन हुए। भगवान् की बाँकी झाँकी देखकर गोस्वामी जी मुग्ध हो गये, पर उन्होंने उनको सिर न नवाया, क्योंकि उनके इष्टदेव रामचन्द्र जी थे। उन्होंने उस समय कहा,—

"कहा कहूँ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषबाण लेओ हाथ॥"

आप की छवि आज बहुत ही मनोमुग्धकर है, पर मैं तो आप को तभी प्रणाम करूँगा, जब आप धनुषबाण हाथ में लेकर रामचन्द्र बनोगे। भगवान् को तत्काल रामरूप धर, धनुद-बाण हाथ में लेना पडा। यह काम भगवान् को भक्त की दृढता देख कर करना पडा।

प्रीति पपैहिये की सच्ची और आदर्श है। वह चाहे प्यासा मर जाय, पर मेघ के सिवा किसी भी जलाशयका जल नहीं पीता। "उत्तर चातकाष्टक" में लिखा है —

पयोद हे! वारि ददासि वा न वा।
त्वदेकचित्त पुनरेष चातक

चिन्ता के चाक पर न रक्खे, अर्थात् हमें चिन्ताग्निमें न जलना पड़े, सुख-शान्ति सदा हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े रहें। वह बला उन्हीं को खाती है, जो भगवान् से विमुख रहते हैं। इसलिए यदि इस चिन्ता-डायन से बचना चाहो, तो परमात्मा को भजो।

दोहा।

मनको चिन्ताचक्र धर, खल विधि रह्यौ घुमाय।
राचि है कहा कुलालसम, जान्यौ कछू न जाय ॥९८॥

98 O friend, we do not know what the unfriendly Brahma, the creator of the world, will do to us, bent as he is on revolving our minds mercilessly fixing them on the wheel of cares, made unceasingly to turn round and round by the application of the stick of vicissitudes like a clever potter who puts a lump of wet clay on his wheel and by turning it round with a stick shapes it into any desired vessel

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ॥
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥९९॥

यद्यपि मुझे विश्वेश्वर शिव और सर्वात्मन विष्णु में कोई भेद नहीं दीखता, तथापि मेरा मन उन्हींकी ओर झुकता है, जिनके मस्तक में तरुण चन्द्रमा विराजमान है, अर्थात् मैं शिव को ही चाहता हूँ ॥९९॥

विष्णु और शिव में कोई भेद नहीं, एक ही परमात्मा के अलग-अलग नाम हैं, वही ब्रह्मा है, वही रघुनाथ हैं, वही

राम हैं और वही शिव हैं। पर फिर भी, जिस नाम का आश्रय ले लिया, उसी का भरोसा करना ठीक है। मन भटकाना अच्छा नहीं।

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी वृन्दावन गये। वहाँ उन्हें भगवान् कृष्ण के दर्शन हुए। भगवान् की बाँकी झाँकी देखकर गोस्वामी जी मुग्ध हो गये, पर उन्होंने उनको सिर न नवाया, क्योंकि उनके इष्टदेव रामचन्द्र जी थे। उन्होंने उस समय कहा —

"कहा कहूँ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषबाण लेओ हाथ॥"

आप की छवि आज बहुत ही मनोमुग्धकर है, पर मैं तो आप को तभी प्रणाम करूँगा, जब आप धनुषबाण हाथ में लेकर रामचन्द्र बनोगे। भगवान् को तत्काल रामरूप धर, धनुषबाण हाथ में लेना पड़ा। यह काम भगवान् को भक्त की दृढ़ता देख कर करना पड़ा।

प्रीति पपैहिये की सच्ची और आदर्श है। वह चाहे प्यासा मर जाय, पर मेघ के सिवा किसी भी जलाशयका जल नहीं पीता। "उत्तर चातकाष्टक" में लिखा है —

पयोद हे! वारि ददासि वा न वा।
त्वदेकचित्त पुनरेष चातक

वर महत्या म्रियते पिपासया
तथापि नान्यस्य करोत्युपासनाम् ॥

हे मेघ ! तू जल दे चाहे न दे, चातक तो तेराही आश्रय रखता है। घोर प्यास से मर भले ही जाय, पर वह दूसरे की उपासना नहीं करता। गोस्वामि तुलसीदास जी ने भी कहा है '—

चातक घन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि,
मरत न माँगै अर्धजल, सुरसरिहु को वारि ॥

व्याधा बधो पपीहरा, परो गगजल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीं, धिक पीवन प्रण जाय ॥

चातक ने मेघ को छोड और किसी को अपनी ज़िन्दगी में सिर न नवाया। मरते समय गगाका जल भी ग्रहण न किया। किसी शिकारी ने किसी चातक को मारा। वह गगाजी मे गिर पडा, प्यास के मारे घबरा रहा था, पर गगा जल नही पीता था। उसने उल्टी चोच बन्द कर ली, कि कही जल मुख में न चला जाय और मेरा प्रण न टूट जाय। वाह वाह ! प्रीति और भक्ति हो तो ऐसी हो।

साराश यह है, कि भगवान् के भी जिस नाम से प्रेम हो, उसे छोड कर दूसरे से प्रेम न करना चाहिये। एक ही पति की स्त्री होने में भलाई है। जिसके अनेक पति होते है, उसका भला नहीं होता। अनेक देवी देवताओ के उपासक चातक से शिक्षा ग्रहण करें। कहा है —

पतिव्रता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक॥

पतिव्रता पति को भजे, और न अन्य सुहाय।
सिंह-बचा जो लघना, तोभी घास न खाय॥

"कबिरा" सीप समुद्र की, रटे पियास पियास।
सकल बूँद को ना गिने, स्वाति बूँद की आस।

प्रीति रीति तुझ सों मेरे, बहु गुनियाला कन्त।
जो हँसि बोलूँ और सूँ, तो नील रगाऊँ दन्त॥

पतिव्रता, जिसके एक पति होता है, सदा सुखी रहती है, किन्तु अनेक खसमवाली व्यभिचारिणी सदा दुखी रहती है। पतिव्रता सदा अपने पतिको ही चाहती है, उसे दूसरा अच्छा नहीं लगता। सिंहका बच्चा, लंघन पर लङ्घन करने पर भी, घास नहीं खाता। कबीरदास कहते हैं, समुद्रकी सीप प्यास-ही-प्यास रटा करती है, कितनी ही बूँदें क्यों न गिरें, उसे तो स्वाति की बूँद ही प्यारी लगती है। मेरे गुणनिधान कन्त! मेरी प्रीति तुझ से है, जो मैं दूसरे से हँसकर बोलूँ तो मेरा काला मुँह हो।

दोहा ।

नाहिन शिव अरु विष्णु में, सूझे अन्तर मोय।
तदपि चन्द्रशेखर लसत, प्रीति अधिक कछु होय॥९९॥

9 *Although I see no difference between Shiva, the Lord*

of the universe, and Vishnu the Omnipresent, but my love flows towards the One who bears the new moon on his forehead, i e, Shiva.

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारवै
रे रे कोकिल कोमलै कलरवैः किं त्वं वृथाजल्पसि ॥
मुग्धे स्निग्धविदग्धलेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूड़चरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥१००॥

हे कामदेव। तू धनुष्टङ्कार सुनाने के लिये क्यों बारबार हाथ उठाता है? हे कोकिला! तू मीठी-मीठी सुहावनी आवाज में क्यों कुहु-कुहु करती है? ऐ मूर्खा स्त्री! तू अपने मनोमोहक मधुर कटाक्ष मुझपर क्यों चलाती है? अब तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अब मेरे चित्त ने शिवके चरण चूमकर अमृत पी लिया है ॥१००॥

जब तक मनुष्य का मन ब्रह्मानन्द का मज़ा नही जानता, जब तक वह परमात्मा के चरणों में ध्यान लगा कर अमृत नहीं पीता, तभी तक कामदेवका ज़ोर चलता है, तभीतक कोकिला का पञ्चम स्वर उसके दिल में खलबली पैदा करता है, तभी तक स्त्री के कटाक्ष-बाण उस पर असर करते हैं, कामारि शिव से प्रीति होने पर ये सब कुछ नहीं कर सकते। भगवान् शिव और कामदेव में वैर है, अतः शिवभक्तों पर कामदेव अपने अस्त्र नही चला सकता।



"हे कामदेव! तू धनुष्टङ्कार के लिये क्यों बारम्बार हाथ उठाता है? हे कोकिल! तू क्यों कुहु-कुहु करती है? हे स्त्री! तू क्यों मधुर मधुर कटाक्षबाण चलाती है? अब तुम सब मेरा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अब मेरे चित्त ने शिव के चरण चूम कर अमृत पी लिया है।"

of the universe, and Vishnu the Omnipresent, but my love flows towards the One who bears the new moon on his forehead, i e., Shiva

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारवै
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथाजल्पसि ॥
मुग्धे स्निग्धविदग्धलेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूड़चरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥१००॥

हे कामदेव। तू धनुष्टङ्कार सुनाने के लिये क्यों बारबार हाथ उठाता है? हे कोकिला! तू मीठी-मीठी सुहावनी आवाज में क्यों कुहु-कुहु करती है? ऐ मूर्खा स्त्री! तू अपने मनोमोहक मधुर कटाक्ष मुझपर क्यों चलाती है? अब तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अब मेरे चित्त ने शिवके चरण चूमकर अमृत पी लिया है ॥१००॥

जब तक मनुष्य का मन ब्रह्मानन्द का मज़ा नहीं जानता, जब तक वह परमात्मा के चरणों में ध्यान लगा कर अमृत नहीं पीता, तभी तक कामदेवका ज़ोर चलता है, तभीतक कोकिला का पञ्चम स्वर उसके दिल में खलबली पैदा करता है, तभी तक स्त्री के कटाक्ष-बाण उस पर असर करते हैं, कामारि शिव से प्रीति होने पर ये सब कुछ नहीं कर सकते। भगवान् शिव और कामदेव में वैर है, अतः शिवभक्तों पर कामदेव अपने अस्त्र नहीं चला सकता।

छप्पय ।

अरे काम बेकाम, धनुष टंकारत तर्जत ।
तू हू कोकिल व्यर्थ बोल, काहेको गरजत ।
तैसेही तू नारि, वृथाही करत कटाक्षै ।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहिगे पाछै ।
चित चन्द्रचूड के चरण को, ध्यान अमृत बरषत हिते ।
आनन्द असण्डानन्द को, ताहि अमृत सुख क्यों हिते ॥१००॥

100 O Cupid, why dost thou raise thy hand repeatedly to make the sound of thy bow string audible? O cuckoo, why dost thou prattle in vain uttering forth thy soft and melodious strains? O foolish woman let alone thy loving and sweet coquetries, as my mind has now drunk the nectar of kissing the feet of Shiva in prayer

कौपीन शतखंडजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ॥
मित्रामित्र समानतातिविमला चिन्तातिशून्यालये
ध्वस्ता शेषमदप्रमाद मुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥१०१

वही योगी सुखी है, जो एकदम से फटी-पुरानी सैकडों चिथडों से बनी कोपीन पहनता है और वैसीही गुदडी ओढता है, जिसके पास चिन्ता नहीं फटकती, जो सुखसे मिला हुआ भिक्षान्न खाता है, जो श्मशान-भूमि या वन में सो रहता है, जो मित्र और

है। ऐसों के ही मित्र और शत्रु होते हैं। जिनका वे भला करते हैं, जिन्हें कुछ सहायता देते हैं अथवा जिन्हें उनसे कुछ मिलने की आशा रहती है, वे मित्र बन जाते हैं, पर जिनका स्वार्थ साधन नहीं होता, जो उनके ठाठ बाट और वैभव को फूटी आँख से नहीं देख सकते, वे उनके नाश की चेष्टा करते और उनके दुश्मन हो जाते हैं। इसलिये उन्हें रात-दिन शत्रुओं से बदला लेने, और उन्हें पराजित करने की फिक्रके मारे चण-भर भी सुख की नींद नहीं आती। अपने वैभव और ऐश्वर्य्य को देख कर उन्हें स्वत ही अभिमान हो आता है। अभिमान के नशेमें वे अनर्थ करने लगते हैं, इससे उन्हें सदा भयभीत रहना पडता है। बहुत क्या कहें, जिनको आप अमीर देखते हैं, जिनको आप स्त्री-पुत्र धन-रत्न गाडी-घोडे मोटर प्रभृति से सुखी देखते हैं, वे वास्तव में ज़रा भी सुखी नहीं। सुखी वही है, जिसे किसी चीज़की ज़रूरत नहीं, जिसे किसी से वैर या प्रीति नहीं, जिसे ज़रा भी अभिमान नहीं, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, जो कभी चिन्ता को पास नहीं आने देता और जो ब्रह्मानन्दमें ही मग्न रहता है। भला राजा महाराजा और धनी लोग इस सुख को कैसे पा सकते हैं? अगर सुखी होना चाहो, तो संसार को त्याग कर, एकदम से निश्चिन्त होकर, परमात्मा के सिवा किसी भी चीज़ की चिन्ता न करो।

जो लोग संसार त्यागें, वह सच्चे मनसे त्यागें, ढोंग करने से कोई लाभ नहीं। आजकल ऐसे बनावटी महात्मा बहुत

शत्रुओं को समान समझता है, जो सूनी झोंपडी में ध्यान करता है और जिसके मद और प्रमाद सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो गये हैं॥१०१॥

फटी पुरानी कोपीन पहनने, चिथडों की गुदडी ओढने निश्चिन्त रहने, सुख से मिले भिक्षान्न के खाने, मरघट या जङ्गल में सो रहने, दोस्त और दुश्मन को बराबर समझने और नितान्त सूने घर में पवित्र ध्यान करने से जिसके मद और प्रमाद नाश हो गये हैं, वही योगी संसार में सुखी है। ऐसे महापुरुषों को किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होती। जिसे किसी चीज़ की इच्छा नहीं, उसे किसकी गरज? जो मित्र और शत्रु को एक नजर से देखते हैं, जहाँ जगह पाते हैं वहीं पड रहते हैं, जो मिल जाता है वही खा लेते हैं, उन्हें न चिन्ता-राक्षसी सताती है, न उन्हें घमण्ड होता है और न उन्हें मस्ती आती है। वे तो ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहते हैं, इसलिये दुःख उनके पास नहीं आता, वे सदा सुख में दिन बिताते हैं। जो लोग बढिया-बढिया कपड़े पहनते हैं, शाल-दुशाले ओढते हैं, अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन करते हैं, मखमली गद्दे तकियों पर सोते हैं, किसी को दोस्त और किसी को दुश्मन समझते हैं, ब्रह्म का ध्यान नहीं करते, उनको चिन्ता लगी ही रहती है। देखने में वे सुखी मालूम होते हैं, पर भीतर-ही-भीतर उनकी आत्मा जला करती है। चिन्ता उनको खोखला कर डालती है। क्योंकि बढिया-बढिया भोजन और वस्त्रों के लिये उन्हें सदा उपाय करने पडते हैं, और उनकी रक्षा की चिन्ता करनी पडती

आँख कान आदि पाँचों ज्ञान-इन्द्रियो को वश में करना या अपने-अपने विषयो से रोकना ज़रूरी है। बहुत से लोग, ज़ाहिर मे सिद्ध बनने के लिये, हाथ पाँव प्रभृति कर्मेन्द्रियो से काम नही लेते, किन्तु मन में भाँति-भाँति के इन्द्रिय-विषयों की इच्छा किया करते हैं। भगवान् कृष्ण ऐसों को पाखण्डी कहते हैं।

सब से अच्छा और सिद्ध पुरुष वही है, जो ज़ाहिरा तो काम करता है, किन्तु अन्दर से मन और ज्ञानेन्द्रियो को विषय-वासना से रोकता है। गीता मे कहा है —

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियै कर्मयोगमसक्त स विशिष्यते ॥७॥

हे अर्जुन। जो मन से आँख कान नाक आदि इन्द्रियो को वशमें करके और इन्द्रियों के विषयो में मन न लगा कर "कर्म-योग" करता है,—वही श्रेष्ठ है।

रहीम ने यही बात कैसी अच्छी तरह कही है,—

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिँ।
जल में छाया जो परी, काया भीजत नाहिँ॥
तन को योगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय॥

मतलब यह है, कि ढोंग करने से कोई लाभ नही। जिन का दिल साफ़ है, जिनके दिल से वासनायें निकल गई हैं, उन्हें

देखने में आते है, जो जटा-जूट बढा लेते है, खाक रमा लेते है, आँखें लाल कर लेते हैं, गगा में पहरो खड़े रहते हैं, शूलो की शय्या पर सोते हैं, पर उनकी आशा और तृष्णा नहीं जाती। वे ज़ाहिरा काष्ट उठाते हैं, कर्मेन्द्रियो से उनका काम नहीं लेते, पर मन और ज्ञानेन्द्रियो को वश में नही करते, वासनाओं का त्याग नही करते, इससे उनका जीवन वृथा जाता है। ऐसे लोगो के सम्बन्ध में महात्मा कबीर कहते हैं :—

निरबन्धन बधा रहे, बंध्या निरबन्ध होय ।
कर्म करे करता नही, दास कहावे सोय ॥

कृष्ण भगवान् गीता के तीसरे अध्याय के छठे श्लोक में कहते हैं :—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार. स उच्यते ॥

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियो को वशमें करके कुछ काम तो नहीं करता, किन्तु मनमें इन्द्रियों के विषयो का ध्यान किया करता है, वह मनुष्य झूठा और पाखण्डी है।

मतलब यह है, कि मनुष्य को हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्ग को वश में कर लेने और इन से कोई काम न लेने से कोई लाभ नहीं, इनसे तो इनका काम लेना ही चाहिये, किन्तु आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा को वश में करना चाहिये।

हीन मन पर परमात्माका रङ्ग जल्दी चढ़ता है, किन्तु वासनायुक्त मन पर हरगिज़ नहीं। इसलिये मन को वासना-हीन करना चाहिये। साथ ही भक्ति भी निष्काम करनी चाहिये। ईश्वर से मुराद न माँगनी चाहिये। कामना रख कर भक्ति करने से कामना निश्चयही पूर्ण होती है—ईश्वर भक्तकी इच्छा अवश्य पूरी करता है, पर वैसी भक्ति से परिणाम में भय है, क्योंकि फलों के भोगने के लिये जन्मना और मरना पड़ता है। किन्तु जो लोग बिना किसी इच्छा के परमात्मा की भक्ति करते हैं, वे मुक्ति लाभ करते हैं—उन्हें जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता।

जब साधक के मनमें कुछ कामना नहीं रहती, तब उसके मनसे ईर्षा-द्वेष और मित्रता-शत्रुता सब दूर हो जाती है। वह सब जगत् को एक नजर से देखता है। वह मनुष्यों की आशा नहीं रखता, केवल परमात्मा की शरण ले लेता है, इसलिये उसे सहज में मुक्ति मिल जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

> तब लगि हमतें सब बड़े, जब लगि है कुछ चाह।
> चाह-रहित कहको अधिक, पाय परमपद थाह॥

जब तक मन में ज़रा भी आशा रहती है, तभीतक मनुष्य किसी को बड़ा मानता है और किसी का दास बनता है, जब आशा नहीं रहती, तब वह सब को समान समझता है और

नहाने धोने प्रभृति दिखाऊ कामों या दूकानदारी की ज़रूरत नहीं है। रहीम कहते हैं, मन यदि हाथमें है तो मनसा कहीं क्यों न जाय, हानि नहीं, क्योंकि जलमें शरीर की परछाँई पड़ने से शरीर नहीं भीजता। लोग शरीर को जोगी करते हैं,—तिलक छापे लगाते हैं, जटाजूट बढ़ाते हैं, नेत्रों को सुर्ख़ करते हैं, भभूत मलते हैं, कोपीन बाँधते हैं, पर मनको कोई बिरलाही जोगी करता है। लोग ऊपर से योगी बन जाते हैं, पर मन उनका विषय-भोगों में लगा रहता है। शरीर से चाहे जो काम क्यों न किये जायँ, पर मनमें विषयों की कामना न रहे, यानी शरीर जोगी न हो, मन जोगी हो जाय, तो सिद्धि या मोक्ष मिलने में सन्देह नहीं। साराश यह कि, मनके योगी होने से ही ईश्वर मिलता है।

महाकवि ज़ौक़ कहते हैं :—

> सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से।
> नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सरसे पाऊँ तक॥

जिन्होंने दुनिया से हाथ धो लिये हैं, वे सिर से पाँव तक शुद्ध हो गये हैं। उन्हें सिरसे पाँव तक पानी बहाकर स्नान करने की ज़रूरत नहीं।

मन जब वासना-हीन हो जाता है, तब वह सूखी दियासलाई के समान हो जाता है। सूखी दियासलाई जिस तरह झट जल उठती है, पर गीली नहीं जलती, उसी तरह वासना-

कारण हैं, इसबात को जान कर भी मनुष्यो ! उनके चक्कर में क्यों पड़ते हो ? इस चेष्टा से क्या लाभ होगा ? अगर आप को हमारी बातका विश्वास हो, तो आप अनेक प्रकार के आशा जाल के टूटने से शुद्ध हुए चित्त को सदा कामनाशक स्वयंप्रकाश शिवजी के चरणों में लगाओ। (अथवा अपनी इच्छाओं के समूल नाश करने के लिए, अपने ही आत्मा के ध्यान में मग्न हो जाओ) ॥१०२॥

आप आज जिन विषय-सुखों को देखकर फूले नहीं समाते, वे विषय-सुख सदा आप के साथ नहीं रहें गे। वे आज हैं, तो कल नहीं रहे गे। वे बिजली की चमकके समान चञ्चल हैं, अभी बिजली चमकी और फिर नहीं। आप ऐसे नश्वर, असार, क्षणस्थायी सुखों पर मत भूलो। होश करो। आपकी काया नाशमान् है। आप सदा इस संसार में नहीं रहे गे। आपकी ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। आप का जो दम आता है, उसे ही गनीमत समझिये। आप एक क़दम रखकर, दूसरा क़दम रखने की भी दृढ आशा न कीजिये। आपका जीवन हवाके झोंकों से छिन्न-भिन्न मेघोंके समान है। अभी घटा छा रही थीं, देखते-देखते हवा उन्हें कहाँ-का-कहाँ उड़ा लेगई, आकाश साफ हो गया। यह सारा संसार, संसार के सुख-भोग और स्त्री-पुत्र धन-रत्नादि सभी स्वप्न की सी माया है। यह दुनिया ... है। रोज़ अनेक आदमी मुसाफ़िरखाने, सराय या ... में आते और जाते हैं, सदा उनमें कोई नहीं ... जिस तरह एक दिन या दो तीन दिन ठहर कर

सब का आसरा छोड़ एक मात्र परमात्मा का आसरा पकड़ता है, इससे उसको, भवबन्धन से छुटकारा मिलकर, परम पद की प्राप्ति हो जाती है ।

छप्पय ।

कन्था अरु कोपीन, फटी पुनि महा पुरानी ।
बिना याचना भीख, नींद मरघट मनमानी ।
रहै जग सों निश्चिन्त, फिरै जितही मन आवै ।
राखे चितकूं शान्त, अनुचित नहिं भाषै ।
जो रहैं लीन अस ब्रह्ममें, सोवत अरु जागत यदा ।
है राज तुच्छ तिहुं भुवन को, ऐसे पुरुषन कों सदा ॥१०१॥

101. Happy is the recluse who wears a totally worn out loin cloth, torn into a hundred pieces as well as a covering sheet in the same tattered condition, who is free from cares and eats food easily got by begging, who sleeps in a cremation ground or a forest, who is indifferent to friends as well as to foes, who sits in contemplation in a lonely cottage and whose vanity and passions have been totally destroyed

"भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येव कृते परिभ्रमतरे लोका कृतं चेष्टितैः॥
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेत समाधीयतां
कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः॥१०२॥

नाना प्रकारके विषय भोग नाशमान् और संसार-बन्धन के

कारण हैं, इसबात को जान कर भी मनुष्यो ! उनके चक्कर में क्यों पडते हो ? इस चेष्टा से क्या लाभ होगा ? अगर आप को हमारी बातका विश्वास हो, तो आप अनेक प्रकार के आशा जाल के टूटने से शुद्ध हुए चित्त को सदा कामनाशक स्वप्रकाश शिवजी के चरणों में लगाओ। (अथवा अपनी इच्छाओं के समूल नाश करने के लिए, अपने ही आत्मा के ध्यान में मग्न हो जाओ) ॥१०२॥

आप आज जिन विषय-सुखों को देखकर फूले नहीं समाते, वे विषय-सुख सदा आप के साथ नहीं रहे गे। वे आज है, तो कल नहीं रहे गे। वे बिजली की चमकके समान चञ्चल है, अभी बिजली चमकी और फिर नही। आप ऐसे नश्वर, असार, क्षणस्थायी सुखों पर मत भूलो। होश करो। आपकी काया नाशमान् है। आप सदा इस संसार में नही रहे गे। आपकी ज़िन्दगी का कोई भरोसा नही। आप का जो दम आता है, उसे ही गनीमत समझिये। आप एक क़दम रखकर, दूसरा क़दम रखने की भी दृढ आशा न कीजिये। आपका जीवन हवाके झोंकों से छिन्न-भिन्न मेघोंके समान है। अभी घटा छा रही थीं, देखते-देखते हवा उन्हें कहाँ-का-कहाँ उडा लेगई, आकाश साफ हो गया। यह सारा संसार, संसार के सुख-भोग और स्त्री पुत्र धन-रत्नादि सभी स्वप्न की सी माया हैं। यह दुनिया मुसाफ़िरखाना है। रोज़ अनेक आदमी मुसाफ़िरखाने, सराय या धर्मशालाओं में आते और जाते हैं, सदा उनमें कोई नहीं रहता। वे जिस तरह एक दिन या दो तीन दिन ठहर कर

चले जाते हैं, उसी तरह आपको भी, इस दुनिया-रूपी सरायमें चन्द रोज़ क़याम करके, आगे जाने होगा। ये सारे सामान यहाँ के यहीं रह जायँगे। ये सब ऐसे ही रहेंगे, पर आप न रहेंगे। इसलिये आप होशियार रहिये, भूलिए मत। आप आज जिस जवानी पर इतने इतराते और इतने शृङ्गार-बनाव करते हैं, यह भी चन्दरोज़ा है। यह चार दिन की चाँदनी है। इसके बाद अँधेरी रात निश्चयही आवेगी, अर्थात् इसके बाद बुढापा अवश्य आवेगा। उस समय आप की यह अकड़, यह उछल-कूद, यह ऐंठना, यह मूछें मरोड़ना—सब हवा हो जायगा। आप शीघ्र ही लाठी टेक कर चलने लगेंगे। आपका रूप-लावण्य नाश हो जायगा। जो लोग आपको खूबसूरत समझकर आज प्यार करते हैं, वे ही कल आपको देखकर नाक भौं सिकोड़ेंगे। फिर भला, आप ऐसी नश्वर निकम्मी काया पर क्यों इतना अभिमान करते हैं? आप अहङ्कार को त्यागिये और अपने लिये उस खिलाड़ी का एक मिट्टी का पुतला-मात्र समझिये। सब की शुभ कामना और परोपकार कीजिये, और एकमात्र अपने बनानेवाले से ही दिल लगाइये। इसी में आपका कल्याण है। यह जगत् कुछ भी नहीं, कोरा भ्रम है। यह मृगमरीचिका या स्वप्न कीसी माया है। इस पर ज्ञानी नहीं भूलते। महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं :—

कोक नृप फूलन की सेज पर सूतो आइ।
जब लग जाग्यो तौ लौं, अति सुख मान्यो है॥

नींद जब आई, तब वाही कूँ स्वपन भयो।
जब पर्यो नरक के कुण्ड में, यूँ जान्यो है॥
अति दुःख पावे, पर निकस्यो न क्यूँ ही जाहि।
जागि जब पर्यो, तब स्वपन बखान्यो है॥
यह झूठ वह झूठ, जाग्रत स्वपन दोऊ।
"सुन्दर" कहत, ज्ञानी सब भ्रम मान्यो है॥

छप्पय।

अति चचल ये भोग, जगतहूँ चचल तैसो।
तू क्यों भटकत मूढ जीव, ससारी जैसो।
आसाफाँसी काट, चित्त तू निर्मल ह्वैरे।
साधन साधे समाधि, परम निज पदको ह्वैरे।
करि रे प्रतीति मेरे बचन, दुरिरे तू इह ओरको।
छिन यहै यहै दिनहूँ भल्यो, निज राखे कछु भोरको॥१०२

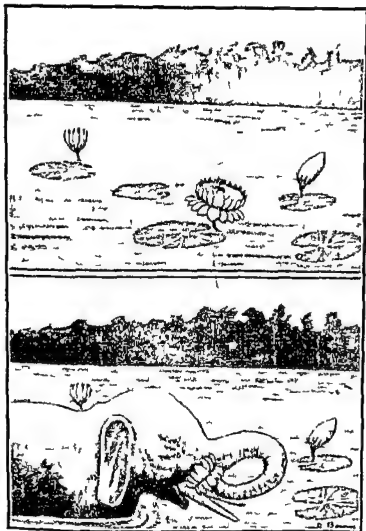
102 The various kinds of sensual pleasures are liable to destruction They are the causes of worldly bondage, what for, O men, then do you wander about so busily? If you trust upon my word, then it is better for you to fix your mind, made pure by the calming down of the hundredfold network of hopes, in contemplation within your own Self for the extermination of your desires

* धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशया॥

नदी की जो धार चली गई है, लौटकर नहीं आयेगी। जो दिन चले गये है, वापस नहीं आयेंगे। जो दिन आज है, वही कल है। कल कोई नई बात नहीं हो जायगी। अतः जो कल करना है, उसे आजही करो, और जो आज करना है, उसे अभी करो, क्योंकि यदि पल भरमें प्रलय हो गई—आप चल बसे, तो फिर कब करोगे? बचपनसे ही राम नाम रटना अच्छा है। जो लोग बचपन से ही तैरना सीख लेते हैं, वे धोखेसे नहीं डूबते। जो लोग यही विचार किया करते हैं, कि अमुक काम हो जायगा, तो उसके बाद हम सब गृहस्थीके झगडे छोड भगवत्-भजन करेंगे, वे इस तरहकी विचार किया ही करते हैं कि, इतने में उनका समय पूरा हो जाता है और काल उनका चोटा पकड कर उन्हें लेजाता है। उस वक्त वह बहुत पछताते और सिर धुनते हैं, लेकिन उस समय हो क्या सकता है? उस समय उनकी गति उस भौंरे की सी होती है, जो कमलके मुख में बन्द होकर कहता है:—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजालम्
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे।
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार॥

बड़े बडे शाल के लट्ठों को छेद डालने की शक्ति रखनेवाला भौंरा, प्रेम के मारे, कोमल कमल में बन्द हो जाता है। रात हो



भौंरा कमल में बैठा हुआ अनेक तरह के विचार करता है,
इतने में हाथी आकर भौंरा समेत कमल को खाजाता है।
यही दशा हमारी है। हम रात दिन विषय-भोगों में लगे
रहते हैं और मृत्यु अचानक आकर हमें लील जाती है।

(पृष्ठ २६६)

जाती है और भौंरा कमलके भीतर बैठा हुआ विचार करता है :—"अब रात का अवसान होगा, सवेरा होगा, सूरज उदय होगा और यह कमल खिल जायगा, तब मैं निकल जाऊँगा। अब रात-भर यहीं आनन्द करूँ।" वह तो ऐसे विचार करता ही रहता है, कि जङ्गली हाथी कमलको उखाडकर मुँहमें रख लेता है और भौंरे के मन-की-मन में ही रह जाती है। यही दशा ससारी विषय-लोलुपों की है। वह विचार बाँधा ही करते हैं और काल उन्हें मुँह में धर लेता है। अत हो सके तो, बचपन में ही ईश्वर-भजन करो। बचपन में यदि ऐसा सौभाग्य न हो, तो जवानी में तो न चूको। जवानी इसके लिये अच्छा समय है। उस अवस्था में शक्ति रहती है। जवानी में ईश्वर-भक्ति करनेवाला निश्चय ही मोक्ष या स्वर्ग पाता है। कहा है —

दान दरिद्रस्य प्रभोश्च शान्ति
यूना तपो ज्ञानवताश्च मौनम्।
इच्छा निवृत्तिश्च सुखासिताना
दया च भूतेषु दिव नयन्ति॥

दरिद्रता का किया दान, निग्रह अनुग्रह की शक्ति होने पर क्षमा, जवानी का किया तप, विद्वान् होकर चुप रहना, सुख-भोग की सामर्थ्य होने पर इच्छाओं को रोक लेना और प्राणियों पर दया करना—ये स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं।

ईश्वर-भजन में आज-कल मत करो।



एक धनवान सदा घर-धन्धों में लीन रहता था। उसकी स्त्री उससे बहुत-कुछ कहती कि, हे स्वामी! यह शरीर विषय-भोगों के लिये नहीं, बल्कि परमात्मा की भक्ति के लिये मिला है। इसे पारस-मणि समझकर, इससे मोक्ष-रूपी सोना बना लीजिये। ऐसा न हो कि,आप सोना न बनावें और यह पारस-मणि पहले ही आप से छीन ली जाय। इस शरीर का बार-म्बार मिलना कठिन है। ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद यह मनुष्य-चोला मिला है। इस बार यदि इससे काम न लिया जायगा, तो फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण होने पर यह मनुष्य-चोला मिलेगा, इसलिये दो चार घड़ी तो सब तरफ से मनको हटाकर परमात्मा को याद किया करो। स्त्री उससे बार बार कहती, पर वह सेठ उसकी बात टाल देता।

एक दिन सेठ बीमार हो गया। उसने सेठानी से वैद्य के बुलाने को कहा। सेठानी ने वैद्यको बुलाया। वैद्यने नाड़ी-नब्ज देख, रोग का हाल पूछ, दवा का नुसखा लिख दिया, और सेवन-विधि बताकर चला गया। सेठानी ने पसारी के यहाँ से दवा मँगा, आलेमें रखदी। दिन-भर हो गया, पर सेठको दवा न दी। सन्ध्या-समय सेठने कहा—"क्या दवा नहीं मँगाई गई?" सेठानी ने कहा—"जी, दवा तो मँगाली है, पर वह रक्खी है उस

ताकमें।" सेठने पूछा—"अबतक दी क्यों नहीं?" सेठानीने कहा—"जल्दी क्या है? आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों दे दूँगी। कभी न कभी देही दूँगी।" सेठने कहा—"अगर मैं मर गया, तो दवा फिर कौन काम आवेगी?" सेठानीने कहा—"मरने को तो आप मानते ही नहीं। मैं जब-जब भगवत्-भजन करनेको कहती हूँ, तब-तब आप कह देते हैं कि, देखा जायगा, जल्दी थोड़े ही है। यदि आपको मरने की ही याद होती, तो ऐसा न कहते। आज दवा के लिये आप को मरने की याद आई है। जिस तरह दवा की रोगनाश के लिये ज़रूरत है, उसी तरह भजन-पूजन की जन्म-मरण का फन्दा काटने के लिये ज़रूरत है। ऐसा न हो कि, पशु-योनि मिल जाय और सारा गुड़ गोबर हो जाय।" आज स्त्री का उपदेश लग गया। सेठ को वैराग्य हो गया। सेठानी ने उसे दवा पिला दी और वह अच्छा भी हो गया। उसी दिनसे उसने ईश्वर-भजनमें लौ लगादी। वह और सब भूला, पर जिन्दगी भर मौत और ईश्वर को न भूला।

मौत को हरदम याद रक्खो।



एक बादशाह ने अपने दरबार और बैठने के स्थानों में क़ब्रें बनवा रक्खी थीं। वह चाहता था कि, मैं हरदम क़ब्रों को देखकर मौत को न भूलूँ। मौत की याद रहने से

पापों से बचा रहूँगा और ईश्वर को न भूलूँगा। हमारे यहाँ के अनेक सच्चे सिद्ध अक्सर श्मशान भूमि में ही अपना डेरा रखते हैं। सारांश यह, मनुष्य को अपनी मौत की याद सदा रखनी चाहिये, ताकि संसार से वैराग्य होकर ज्ञान हो और ज्ञान से मोक्ष मिले। महात्मा कबीरने खूब ज़बर्दस्त चेतावनी दी है—

"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाँही काल।
चेत सकै तो चेतियो, मीच परी है ख्याल॥

हे कबीर! जो दिन आज है, वह कल नहीं होगा, यानी आजका सा मौक़ा फिर कल न मिलेगा। चेतना है तो चेत जा! देख, मृत्यु तेरी घात में है। चूहे पर बिल्ली की तरह झपट्टा मारना ही चाहती है।

गोस्वामीजी ने भी खूब कहा है.—

"तुलसी" बिलब न कीजिये, भज लीजै रघुबीर।
तन तरकसते जात है, श्वास सार सो तीर॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब?

तुलसीदासजी कहते हैं, देर न करो, भगवान् को भज लो, क्योंकि तन-रूपी तरकस से श्वास-रूपी तीर, जो सार है, निकला जाता है। जो काम कल करना है, उसे आज ही कर डालो और जो आज करना है, उसे अभी कर डालो, क्योंकि यदि पलमें प्रलय हो गई, तो फिर कब करोगे?

जो मनुष्य दिन-रात घर-धन्धों में ही लगे रहते हैं, कभी खुश होते हैं, कभी रञ्ज करते हैं, कभी कन्या के वैधव्य-दुःख को देखकर जलते रहते हैं, तो कभी पुत्र के मरण से औंधा मुँह किये पड़े रहते हैं अथवा कान्ता-वियोग या स्त्री के मरण से तड़फते हैं, अथवा धनवृद्धि के लिये दौड़ते फिरते हैं, लेकिन परमात्माका नाम कभी नहीं लेते, यदि लेते हैं तो हाथ को तो गोमुखी में रखते हैं, पर मनको विषयों में लगाये रहते हैं, लोगों से बातें करते रहते और सड़ासड़ माला फेरा करते हैं, ऐसों के पास एक दिन भी चतुर पुरुषों को न रहना चाहिये। कहा है—

राज धर्मविना, द्विज शुचिविना, ज्ञान विना योगिनं ।
कान्ता सत्यविना, हयो गति विना, भूषा च ज्योतिर्विना ।
योद्धा शूरविना, तपो व्रत विना, छन्दो विना गीयते ।
भ्राता स्नेह विना, नरो हरि विना, मुञ्चन्ति शीघ्रं बुधा ॥

धर्महीन राजा को, शौचहीन ब्राह्मण को, ज्ञानहीन योगी को, असत्यवादिनी स्त्री को, गतिहीन घोड़े को, चमक-दमक रहित गहने को, शूरताहीन योद्धा को, नियम रहित तप को, छन्द बिना कविता को, स्नेह-हीन भाई को और हरिभक्ति रहित पुरुष को बुद्धिमान लोग शीघ्र ही छोड़ देते हैं।

हरिभक्ति रहित पुरुष को चतुर लोग इसलिये त्याग देते हैं, कि उसकी सङ्गति में उनका मन भी कहीं वैसा ही न हो जाय। मनुष्य जैसी सङ्गति करता है, वैसा ही हो जाता है।

जो विषयी पुरुषों की सङ्गति करता है, वह विषयी हो जाता है; पर जो ज्ञानी और वैरागियों की सङ्गति करता है, वह ज्ञानी और वैरागी हो जाता है। महापुरुषों की एक शुभ दृष्टि से मनुष्य निहाल हो जाता है, यानी भव-बन्धन से उसका पीछा छूट जाता है। हम आगे दोनों तरह के दृष्टान्त देते हैं:—

एक राजा और महात्मा।



किसी जङ्गल में एक महात्मा रहते थे। वह पेड़-पत्ते और हवा खाकर ज़िन्दगी बसर करते थे। उनकी शोहरत सारे देश में फैल गई। उस देश के राजा ने भी उनसे मिलना चाहा। वज़ीर ने यह खबर महात्मा को दी। महात्मा उस जङ्गल को छोड़ भागने को तैयार हुए, लेकिन मन्त्री के बहुत समझाने-बुझाने से वह वहाँ रह गये और राजा को दर्शन देने पर भी राज़ी हो गये।

एक दिन राजा अपने परिवार और दरबारियों समेत महात्मा के दर्शन को गया। महात्मा के दर्शन कर वह बहुत ही खुश हुआ और उनसे नगर में चलकर बाग में तप करने की प्रार्थना की। महात्मा बहुत ज़ोर देने से इस बात पर राज़ी हो गया। राजा ने अपने बाग में उसके लिये एक एकान्त कमरा खूब सजवा दिया। मखमली गद्दे, तकिये, कोच, पलँग और कुरसियाँ

रखवा दी और चौदह-चौदह बरस की सुन्दरी मनमोहिनी कामिनियाँ महात्माजी की सेवा को नियुक्त कर दी।

महात्माजी खूब आनन्द से दिन गुजारने और विधुवदनी कामिनियों को भोगने लगे। चन्दरोज़ में ही वह विषयों के वशीभूत हो गये। एक दिन राजा फिर उनसे मिलने गया। उसने देखा कि, महात्माजी का रङ्ग रूप गुलाब के फूल जैसा हो गया है। वह मसनदके सहारे लेटे हुए हैं और चन्द्रानना स्त्रियाँ उन पर मोरछल कर रही हैं। यह तमाशा देख राजा को बड़ा दु:ख हुआ। उसने अपने मन्त्री से यह हाल कहा। मन्त्री ने कहा,—"महाराज! निवृत्ति मार्ग वालों को प्रवृत्ति मार्ग वालों की सङ्गति भूलकर भी न करनी चाहिये। कहा है—

"कामिना कामिनीना च सङ्गात् कामी भवेत् पुमान्।
देहान्तरे तत क्रोधी लोभी मोही च जायते॥

"काम क्रोधादि ससर्गाद शुद्ध जायते मन।
अशुद्धे मनसि ब्रह्मज्ञान तच्च विनश्यति॥"

कामी पुरुषों और स्त्रियों की सङ्गति से पुरुष कामी हो जाता है और जन्मान्तर में क्रोधी और मोही हो जाता हैं।

काम क्रोध आदि के सम्बन्ध से मन भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मन से उपदेश किया हुआ ब्रह्मज्ञान भी नष्ट हो जाता है।

एक महात्मा और वेश्या।



एक महात्मा एक दिन वर्षा में भीगते हुए और कीच में लिह्से हुए एक मकान के छज्जे के नीचे जा खड़े हुए। वह मकान राजा की वेश्या का था। महात्मा सर्दी के मारे थर-थर, थर-थर काँप रहे थे। वेश्या की दासी ने महात्मा को देखा और अपनी स्वामिनी से सारा हाल जा कहा। वेश्याने कहा—"जाओ, महात्मा को लिवा लाओ।" दासी उन्हें ले आई। वेश्या ने उनको स्नान कराकर नये कपड़े पहनाये और भोजन कराया। इसके बाद आप भोजन करके उनके पास गई और उन्हें पलँग पर लिटा कर उनके पैर दाबने लगी। महात्मा ने एक नज़र भरके वेश्या को तरफ देखा और उसके हृदयमें अमृत की धारा बहा दी। वह सो गये और वेश्या रात-भर उनके चरण चापती रही। सवेरे के वक्त वह सो गई और महात्मा उठकर चल दिये। भोरमें उठते ही वेश्या ने दासी से पूछा कि, महात्मा कहाँ गये? उसने कहा, कि वे तो चले गये। वेश्या उसी समय नङ्गी होकर घरसे निकल गई और एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गई। राजाने यह समाचार सुनते ही अपने आदमी उसको लिवा लाने को भेजे। वेश्या ने कहा—"राजा से कह दो, कि अब मैं आप का वह मैला उठाने वाली पहले की भगन नहीं हूँ।" राजा ने यह बात सुन हुक्म दे दिया कि, उसे कोई न छेड़े। अगले दिन

वह कहीं चली गई। सच है, महापुरुषों की क्षणभर की संगति से महापापी भी निहाल हो जाता है। निस्सन्देह सत्संग बड़ी चीज़ है। कहा है,—

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्

महापुरुषों की संगति से किस को उन्नति नहीं होती? कमल के पत्तेपर पड़ी जलकी बूँद मोती की शोभा को धारण करती है।

और भी —

॥ दोहा ॥

जेहि जैसी संगति करी, सो तैसो फल लीन
कदली सीप भुजंग-मुख, एक बूँद गुण तीन।

जो जैसी संगति करता है, वह वैसा ही फल पाता है। मेह की एक बूँद केले में कपूर, सीप में मोती और सर्प-मुखमें विष हो जाती है।

सवैया।

ज्ञान बढ़ै गुनवान की संगत,
ध्यान बढ़ै तपसी-संग कीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगत,
लोभ बढ़ै धन में चित दीने।

क्रोध बढे नर मूढ की संगत,
काम बढे तिय के संग कोने।
बुद्धि विवेक विचार बढे,
कवि "दीन" सुसज्जन सगत कीने॥

सत्सग की महिमा का पार नहीं। सत्सग से ही दस्यु भील वाल्मीकि ऋषि हो गये। पद्मयोनि से पैदा हुए ब्रह्मा, कैवर्त्ति से पैदा हुए व्यासजी, उर्वशी से पैदा हुए वशिष्ठजी और हिरनी से पैदा हुए ऋषि शृङ्गी सत्सग से ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए, अत महापुरुषो का सग करना चाहिये। "सत्सग" भवसागर से पार करने के लिये नौका-स्वरूप है। कहा है,—

तत्वं चिन्तय सतत चित्ते,
परिहर चिन्ता नश्वरवित्ते।
क्षणमिह सज्जनसगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका॥

हमेशा तत्त्व की चिन्तना कर, चञ्चल धन की चिन्ता छोड। यह जगत् अल्पकालीन है, केवल सज्जनों की सगति ही भव-सागर के पार जाने के लिये नाव के समान है।

इस ससार-वृक्ष के जितने फल है, सभी प्राणीके नाश करने वाले और उसे सदा दुःखों के गर्त में पटक रखनेवाले हैं, केवल दो फल अमृत-समान हैं। कहा है,—

संसार-विष-वृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृत रसास्वाद आलाप सज्जनै सह॥

इस संसार-रूपी विष-वृक्ष के दो फल अमृत के समान है — (१) काव्यरूपी अमृत का रसास्वादन करना, (२) साधु पुरुषों की सङ्गति करना।

किसी ने कैसा अच्छा उपदेश दिया है। इसमें संसार-सागर से पार होने का सारा मसाला है —

संग सत्सु विधीयतां, भगवतोभक्तिर्दृढा धीयतां,
शान्त्यादि परिचीयतां, दृढतर कर्माशु सन्त्यज्यताम्।
सद्विद्यो ह्युपसर्प्यतां, प्रतिदिन तत्पादुका सेव्यतां,
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यम् समाकर्ण्यताम्॥

साधु पुरुषों का संग करना चाहिए। भगवान् में दृढ भक्ति करनी चाहिये। क्षमा और दम प्रभृति का अभ्यास करना चाहिये। संसार-बन्धन के कारण "कर्म—सकाम कर्मों को" शीघ्र त्यागना चाहिये। सच्चे विद्वानों की सेवा करनी चाहिये और उनकी पादुकाएँ उठानी चाहियें। ब्रह्म-बोधक एकाक्षर प्रणव "ॐ" का जाप करना चाहिए और वेद के शिरोवाक्य "वेदान्त" को सुनना चाहिये।

वाह! क्या खूब कहा है। जो इस वचन पर अमल करेगा, उसे परमानन्द की प्राप्ति क्यों न होगी? अवश्य होगी।

छप्पय ।

योगी जग बिसराय, जाय गिरिगुहा बसत हैं ।
करत ज्योति को ध्यान, मगन आँसू बरषत हैं ।
खगकुल बैठत अंक, पियत निःशंक नयनजल ।
धनि धनि हैं वे धीर, धन्यो जिन यह समाधिबल
हम सेवत बारी बाग सर, सरिता बापी कूपतट ।
खोवत हैं योंही आयुको, भये निपटही निरघट ॥१०३

103. *Worthy of all praise are those who live in the caves of mountains and contemplate upon the Supreme Light and whose tears of joy are drunk by birds sitting fearlessly in their laps, while our lives are passing fruitlessly away in pursuing frolicksome avocations in the play-gardens, situated on the banks osf the tank, belonging to the spacious mansion of Desire*

आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः ॥
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥१०४

मृत्यु ने जन्म को ग्रस रक्खा है, बुढापे ने बिजली के समान चञ्चल युवावस्था को ग्रस रक्खा है, धनकी इच्छाने सन्तोष को ग्रस रक्खा है, स्त्रियों के हावभावों ने मानसिक शान्ति को ग्रस रक्खा है, जलनेवालों ने गुणों को ग्रस रक्खा है, सर्प और जङ्गली जानवरों ने वनको ग्रस रक्खा है, दुष्टों ने राजाओं को ग्रस रक्खा

है, अस्थिरता या चञ्चलता ने धनैश्वर्य्य को ग्रस रक्खा है, तब ऐसी कौनसी अच्छी चीज है, जो किसी दूसरी नाशक चीज के चगुल में नहीं है ? ॥१०४॥

खुलासा यह है, कि जन्म को मृत्यु का भय है, जवानी को बुढापे का भय है, सन्तोष को लोभ का भय है, शान्ति को स्त्रियो के हावभाव और विलासों का भय है, गुणों को उनसे जलने या कुढनेवालो का भय है, वन में सर्प और हिंसक पशुओं का भय है, राजाओ में दुष्ट दरबारियो का भय है, धन और ऐश्वर्य में क्षणभगुरता का भय है। ससार में ऐसी कोई अच्छी वस्तु नहीं है, जिसे किसी का भय न हो। मतलब यह है कि, ससार और ससारके सभी पदार्थ नाशमान् है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जिसका काल नाश नही कर देता, अथवा जिसे किसी तरह का भय नही है।

संसारकी यह दशा है, तब भी तो मनुष्य चेत नही करता, यही तो आश्चर्य की बात है! अज्ञानी मनुष्य, मोहवश, अपना हानि-लाभ नहीं देखता, ससार की झूठी माया में फँसा रहता है। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है —

करत चातुरी मोहवश, लखत न निज हित हान।
शुक मर्कट इव गहत हठ, तुलसी परम सुजान॥
दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तोइ नाहिं।
लखत न कण्टक मीन जिमि, अशन भखत भ्रम माहि॥

विषयो के ससर्ग से मनुष्य के मन में कामना—इच्छा पैदा होती है। जब इच्छा पूरी नहीं होती, तब क्रोध होता है और क्रोध से मोह को उत्पत्ति होती है। मोह होने से प्राणी को अपना हित या परलोक की हानि नहीं दिखती। राग द्वेष प्रभृति के कारण उसमें ज्ञानदृष्टि नहीं रहती, पर पढने-लिखने के कारण वह अपने तई परम चतुर समझता है और जिस तरह हठ करके तोता बहेलिये के फन्दे में आप ही फँस जाता है और पींजरे में क़ैद हो जाता है, तथा बन्दर छोटे मुँह की ठिलिया में रोटी के लिये हाथ डालकर बन्दर वाले के क़ब्जे में हो जाता है, उसी तरह विषयी पुरुष, विषयो के लालच में आ कर, अपने तई ससार-बन्धन में फँसा लेता है।

मनुष्य भूख, प्यास, रोग, शोक, दरिद्रता, प्रिय-वियोग, बुढापा, जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियों में दु.ख-भोग तथा नरक प्रभृति से हर तरह दुखी है, उसे ज़रा भी सुख नहीं है, पर वह मोह के मारे ऐसा अन्धा हो रहा कि, उसे काँटे मे लगे चारे के लिये फँसने वाली मछली की तरह कुछ भी नहीं सूझता। जिस तरह मछली को रोटीका टुकडा चारा है, उसी तरह मनुष्य को विषय-भोग चारा है। जिस तरह मछली को काँटा है, उसी तरह मनुष्य की ममता काँटा है। मतलब यह है, अज्ञानी मनुष्य विषय-रूपी चारे के लोभ से ममता के काटे में फँस कर अपना नाश कराता है, पर मज़ा यह कि वह दु.ख को दु ख नहीं समझता, तरह-तरहके भयोंसे घिरा हुआ नाना

प्रकारके सकट झेलता है, मछली, तोते और बन्दरकी तरह बन्धन में फँसता है, पर निकलना नहीं चाहता। इन दुःखों का उसे ज़रा भी खयाल नहीं आता। रोज़ लोगों को मरते हुए देखता है, रोज़ बूढ़ों को असह्य कष्ट उठाते देखता है, पर आप नहीं समझता कि, मेरी भी यही गति होनेवाली है। उलटा हर साल जन्मतिथि की वर्ष-गाँठका उत्सव करता है। मित्रों और रिश्तेदारों को निमन्त्रण देता है। गाना बजाना और नाच रग कराता है। कैसी बात है, जहाँ रंज करना चाहिये, वहाँ नादान मनुष्य खुशी मनाता है। उसे समझाना चाहिये, कि हर सालगिरह को उसकी उम्रका एक साल कम होता है। महात्मा सुन्दर दासजीने क्या खूब कहा है—

जबतें जनम लेत, तबही ते आयु घट।
माई तो कहत, मेरो बड़ो होत जात है।
आज और काल और दिन-दिन होत और।
दौर्‍यो दौर्‍यो फिरत, खेलत और खात है।
बालपन बीत्यो, जब यौवन लाग्यो है।
यौवनहु बीते बूढो डोकरो दिखात है।
"सुन्दर" कहत, ऐसे देखत ही बूझिगयो।
तेल घटि गये, जैसे दीपक बुझात है॥

प्राणी जब से जन्म लेता है, तभी से उसकी उम्र घटने लगती है। माँ समझती है कि, मेरा लाल बड़ा होता जाता

है। दिन-दिन उसके रङ्ग बदलते हैं। बचपन में खाता खेलता और भागा फिरता है। बचपन के बीतते ही जवानी आ जाती है और जवानी के बीतते ही बुढ़ापा आ जाता है और वह बूढ़ा डोकरा सा दीखने लगता है। सुन्दरदास कहते हैं कि देखते-देखते जिस तरह तेल घट जाने से चिराग बुझ जाता है, उसी तरह वह बुझ जाता है, यानी मर जाता है।

छप्पय।

ग्रस्यो जन्मको मृत्यु, जरा यौवन को ग्रास्यौ।
ग्रसिवे को सन्तोष, लोभ यह प्रगट प्रकास्यौ।
तैसेही समदृष्टि ग्रसित, बनिता बिलास वर।
मत्सर गुण ग्रासिलेत, ग्रसत बनको भुजगवर।
नृप ग्रसित किये इन दुर्जनन, क्रियौ चपलता घन ग्रसित
कछुहू न देख्यो बिन ग्रसित जग, याही तें चित अति त्रसित १०४

104 Birth is threatened by death, youth which is transitory like lightning, by old age, contentment by greed for wealth, mental peace by the strong allurements of women, good qualities by jealous persons, forests by serpents and wild animals kings by wicked courtiers and wealth and power by shortness of duration What good thing exists there which does not lie in the clutches of something else capable of destroying it?

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः॥

जातं जातमवश्यमाशुविवशंमृत्यु करोत्यात्मसात्तत्किं
नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम् ॥१०५॥

सैकडों मानसिक और शारीरिक रोग स्वास्थ्य का नाश कर डालते हैं। जहाँ सम्पत्ति और प्रभुता है, वहाँ विपत्ति दरवाजा तोड कर चोर की तरह चढाई करती है। जो जन्म लेता है, उसे मृत्यु शीघ्र ही जबर्दस्ती अपने जावडों में फँसा लेती है, तब निरङ्कुश विधाता ने सदा स्थायी रहनेवाली कौनसी चीज बनाई है? ॥१०५॥

मनुष्य-शरीर रोगों का घर है। मानसिक और कायिक रोग सदा उसके भीतर डेरा डाले रहते हैं और स्वास्थ्य का नाश करते रहते हैं। सम्पत्ति पर विपत्ति सदा ताक लगाये खडी रहती है और ज़रासा भी मौक़ा पाते ही दरवाजा तोड कर उसका विनाश कर देती है। जन्म लेनेवाले के सिर पर मौत सदा मँडराया करती है एवं दाँव-घात देखती रहती है और जब मौक़ा पाती है, उसे अपने पञ्जों में फँसा लेती है। साराश यह कि, शरीर के साथ रोग, सम्पत्ति के साथ विपत्ति, जन्म के साथ मृत्यु, सयोग के साथ वियोग, सुख के साथ दुःख और जवानी के साथ बुढापा प्रभृति एक दूसरे के नाशक विधाता ने लगा रक्खे हैं। विधाता ने कोई भी चीज़ सदा स्थायी नहीं बनाई, जो कुछ बनाया है वह चन्दरोज़ा और नाशमान् बनाया है।

संसार की असारता देखकर; मनुष्यको अपने तईं, इस ससार में, पाहुने की तरह समझना चाहिये। जिस तरह पाहुना जहाँ कहीं जाता है और जहाँ ठहरता है, वहाँ के लोगों से दिल नहीं लगाता, उसी तरह समझदारों को इस दुनिया से दिल न लगाना चाहिये।

जिसको रहना उत घर, सो क्यों तोड़े मित्त।
जैसे पर-घर पाहुना, रहै उठाये चित्त।
इत पर-घर उत है घरा, बनिजन आये हाट।
कर्म करीना वेचिके, उठि करि चाले बाट॥
मेरा सगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय।
सुन परतीति न ऊपजै, जीव विश्वास न होय॥
"कबिरा" ऐसा ससार है, जैसा सैमल-फूल।
दिन दशके व्यौहार में, झूठे रग न भूल।

मनुष्य का अपना घर वह है जहाँ से वह आया है, यह नहीं, अत उसे अपने उस घरसे दिल न हटाना चाहिये। इस घरमें आकर मिहमान की तरह रहना चाहिये और मिहमान की तरह ही अपना दिल उठाये रखना चाहिये।

यह पराया घर है और वह अपना घर है। यहाँ हाट में अपना व्यवसाय करने आये हैं। हाट में सौदा बेच कर अपनी राह लगे गे, यानी इस दुनियामें अपने कर्मोंका फल भोगकर यहांसे चले जायँगे

इस दुनियाँ में अपना कोई साथी नहीं है। सभी मतलबी

यार हैं, और मतलबके लिये ही हमारे बन रहे हैं। सुनकर प्रतीत नहीं होतो और जीमें विश्वास नहीं आता , पर बात सच्ची है।

कबीरदासजी कहते हैं,—यह ससार सेमल के फूल की तरह है। दस दिन के व्यवहार और मेल-जोल से झूठे रग पर न भूलना चाहिये।

साराश यह है कि, यह दुनिया पराया घर है और प्राणीमात्र यहाँ मिहमान हैं , अथवा यह ससार सराय है और हमलोग मुसाफिर हैं। यदि हम पाहुने हैं तो, और यदि हम मुसाफिर हैं तो—दोनों हालतोंमें ही--हमें इस दुनियासे दिल न लगाना चाहिये। हम जहाँ से आये हैं, अथवा जहाँ हमारा घर है, हमें अपना दिल वहाँ के लिये ही उठाये रहना चाहिये।

दुनिया गोरख-धन्धा है।

यह ससार बिल्कुल मिथ्या और असार है, इसमें कुछ भी तत्त्व नहीं है। केले के खभे और लहसन को ज्यों-ज्यों छीलते जाइये, त्यों-त्यों उनके भीतर से सिवा पत्तो और छिलकोंके कुछ भी नहीं निकलता। यह जगत् भी उनकी तरह ही सारहीन है। इसमें कुछ भी नहीं है। यह कोरा माया-जाल या धोखा है। इस गोरख-धन्धेमें जो फँस जाते हैं, वे बुरी तरह नष्ट होते और अन्तमें पछ-ताते हैं। इसलिये भाइयो! इस माया-जालसे निकलने की चेष्टा करो। खूब खबरदार रहो! इस जगत् के सभी सुख-भोग झूठे और प्राणी के पक्षमें अहितकर हैं। मि० आगा हश्र ने थियेटर के गाने के तर्ज़ में क्या खूब कहा है —

इस जालमें सब उलझाये, दुनिया है गोरखधन्दा ।
डाल रखा है सबने गलेमें, लोभ-मोहका फन्दा ।
ये दुनिया है चूरका लड्डू, देखके जी ललचाये ।
ना खाये तोभी पछताये, खाये तो पछताये ।
फिर भी सकल जगत है अन्धा ।
इस दुनियाके सुख भी झूठे, इसका प्यार भी झूठा ।
सावधान हो ! इस ठगनीने बड़ों बडोंको लूटा ।
मूरख ! मत बन इसका बन्दा ।

यह चोला परोपकार और ईश्वर-भजन के लिये मिला है ।

आप जब इस दुनियामें आनेके लिये माँ के गर्भ में थे, तब आपने परमात्मा से प्रार्थना की थी, कि हे नाथ ! मुझे इस नरक-कुण्ड से निकालिये, मैं दुनियामें जाकर माया-मोहमें, न फँसकर, केवल आपकी ही परिस्तिश और उपासना तथा जगत् के दूसरे प्राणियोंका उपकार करूँगा, पर यहाँ आकर बचपन आपने खेल-कूदमें और जवानी स्त्रीके साथ ऐश-आराम में बिता दी । क्या आपको ऐसा ही करना चाहिये था ?

यह मनुष्य-चोला इसलिये मिला है, कि मनुष्य इस जगत्‌में दूसरे प्राणियोंकी शुभचिन्तना करे और अपने कर्म-बन्धन काट कर परमपदको प्राप्ति करे, पर लोग तो इसकी चमक-दमक पर ऐसे भूल जाते हैं, कि उन्हें अपनी आगेकी सफ़रका खयाल

भी नहीं रहता। ऐसा समझने लगते हैं, मानो वह सदा यही रहेंगे। यहाँ के लिए, जहाँ उन्हें बहुत ही थोड़े दिन रहना होता है, हज़ारों तरह के सामान करते हैं, पर आगे की लम्बी सफ़र के लिये कुछ भी नहीं करते। यहाँ के लिये इतना आडम्बर और वहाँ के लिये कुछ नहीं। यह चतुराई तो अच्छी नहीं मालूम होती। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है '—

> क्या यह दुनियाँ, जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
> वास्ते वाँ के भी कुछ—या सब यहीं के वास्ते॥

इस दुनिया में आकर कुछ परलोक के लिये भी करना चाहिये। यह नहीं, कि उधर की फ़िक्र बिलकुल ही न की जाय।

हमें सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ और नेचर के प्रत्येक काम से परोपकार की शिक्षा मिलती है। सूर्य परोपकार के लिये ही आकाश में भ्रमण करता है। चन्द्रमा परोपकार के लिये ही कष्ट सहकर जगत् में शीतल चांदनी छिटकाता है। सितारे अँधेरी रात में मुसाफ़िरों को राह दिखाने के लिये ही रात-भर टिमटिमाते हैं। ध्रुव उत्तर दिशा का ज्ञान कराने और समुद्र के अगाध और अनन्त जल में जहाज़ोंको राह दिखाने के लिये ही चमकता है। नदियाँ परोपकार के लिये ही बहती हैं। वृक्ष परोपकार के लिये ही फलते हैं। परोपकार के लिये ही, शेषजीने इस लम्बी-चौड़ी पृथिवी का भार अपने सहस्र फणों पर धारण

कार रखा है। कच्छप ने, परोपकार के लिये ही, शेष समेत पृथ्वी का भार अपनी पीठ पर वहन कर रक्खा है। भगवान्‌ने परोपकार के लिये ही बारम्बार अवतार लेकर जन्म-मरण का कष्ट उठाया है। शिवि और दधीचि ने परोपकार के लिये ही अपनी जानें दे दीं। किसी कविने कहा है'—

विरछा फलै न आप को, नदी न अचवे नीर।
परोपकार के कारणे, सन्तन धरो शरीर॥

शेष शीश धारे धरा, कछु न अपनो काज।
परहित पर सारथी रथी, वाङ्क वने न लाज॥

किसी जगल में चूहोकी एक क़तार चली जाती थी। उनमें मे एक चूहा अन्धा था। उसके मुख में एक तिनका पकडा कर, दूसरे चूहे ने उसे अपने मुँह मे पकड रक्खा था। उसके सहारे अन्धा चूहा भी चला जाता था। यह जानवरोंका हाल है। पशुओं में भी परोपकार-वुद्धि होती है। जो मनुष्य होकर परोपकार शून्य है, वह पशुओं से भी गया-बीता है। ख़ासकर मनुष्य-देह तो परोपकार के लिये ही दी गयी है, अतः मनुष्य को परोपकार करना ही चाहिये। कहा है .—

परोपकार कर्त्तव्य प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि॥
परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
यावन्त पशवस्तेषा चर्माण्युपकरिष्यति॥

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन को न जीवति मानव ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥

धन और प्राणों से परोपकार करना चाहिए, क्योंकि परोपकार के पुण्य के बराबर सौ यज्ञों का भी पुण्य नहीं है।

परोपकार-शून्य मनुष्यों के जीने को भी धिक्कार है। पशुओं का चमड़ा भी पराये काम आता है।

अपने लिये इस लोक में कौन नहीं जीता ? पराये लिये जो जीता है वही जीता है और तो मृतकवत् हैं।

सौ यज्ञों का पुण्य भी परोपकार-जन्य पुण्य की बराबरी नहीं कर सकता।

एक वैश्य ने अपने करोड़ों रुपये यज्ञों में खर्च कर दिये। शेष में वह निर्धन हो गया। उसकी स्त्रीने उसे सलाह दी कि, तुम राजा को अपने दो चार यज्ञों का फल देकर धन ले आओ, तो शेष जीवन सुख से कट जाय। वैश्य राज़ी हो गया। सेठानी ने उसे राह में खानेके लिए नौ रोटियाँ रख दीं। वह वन में पहुँच कर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। वहाँ पानी ज़ोर से बरसने के मारे राह न थी। उसी पेड़ के खोंतरे में एक कुतिया व्यायी थी। वह वर्षा के मारे नौ दिन से खूराक की तलाश में कहीं जा न सकी थी, इसलिये भूखी मरणासन्न हो रही थी। वैश्य ने उसे अपनी सब रोटियाँ खिलादीं और आप भूखा रह गया। वह भूखा-प्यासा राजा के पास पहुँचा और उसे अपनी राम-कहानी सुनाई।

राजा ने राज-ज्योतिषी से पूछा—"इस सेठ के कौन से यज्ञ का फल उत्तम है ?" ज्योतिषी ने कहा—"महाराज। इसने राह में कुतिया को अपनी रोटियां खिलाकर जो उपकार किया है, उसी का फल उत्तम है, आप उसे ही ख़रीद लीजिये।" वैश्य उस परोपकार के पुण्य-फल को देने पर राज़ी न हुआ, तब राजा ने उसे कई लक्ष मुद्रा देकर विदा किया। साराम यह, कि संसार में परोपकार और दया के समान और पुण्य नहीं है। अतः मनुष्य को निःस्वार्थ भाव से परोपकार करना चाहिये। जो मनुष्य होकर परोपकार नहीं करता, उसका जन्म वृथा है।

किसी ने कहा है—

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं
श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् ॥
सञ्जातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे प्राणिनोजातनष्टाः ॥

संसार में उस प्रसिद्ध कछुए का जन्म ही सफल है, जिसने इस विशाल पृथ्वी का भार उठाने के लिये अपनी पीठ दे रक्खी है, और इसी तरह ध्रुव का जन्म प्रशंसनीय है, जिसको बीच में लेकर सप्तऋषियों का ज्योति-मण्डल घूमता है। परोपकार करने में अशक्य मनुष्यों का जन्म इस ब्रह्माण्ड में गूलर के बीच में रहने वाले उन मच्छरों के समान वृथा है, जो पंख सहित होने पर भी कुछ नहीं कर सकते।

अत' भाइयो ! स्त्री-पुत्र प्रभृति के लिए अमूल्य जीवन वृथा नाश मत करो। ये आपके कोई नहीं। ये यहीं के साथी और बड़े स्वार्थी हैं, परलोक में आपके साथ न जायँगे, वहाँ केवल धर्म ही आपके साथ जायगा। मौत आप के लेजाने के लिए आना ही चाहती है। इसलिये चेत करो, आँखें खोलो, अब न सोओ। साँस-साँस पर जगदीश का सुमिरन करो और निष्काम भाव से प्राणियों पर दया और परोपकार करो, क्योंकि मरने पर ये ही आप के काम आयेंगे।

कविता या गाने की चीजों का प्रभाव मनुष्य पर बड़ी जल्दी पड़ता है, इसीसे हमने चार-पाँच चित्ताकर्षक और मोह-भञ्जन करनेवाले गाने नीचे दिये हैं —

भजन (रागविहाग)

हे मन गुमानी ! चेत कर, हरिको सुमरि, हरिको सुमिर।
बीती यह जाती है उमर, हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥१॥
नारी नरक की खान है, जिसपर जगत गलतान है।
इसका मजा इस आन है, हरि को सुमिर, हरिको सुमिर ॥२॥
सुत बन्धु माता और पिता, कुनबा कबीला आशनाँ।
सब सुखके साथी हैं तेरे ; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥३॥
दुनिया कहो क्या माल है, माया का फैला जाल है।
इसपर तू क्या खुशहाल है, हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥३॥
कहना मेरा ले मान तू, हरगिज न कर अभिमान तू।
एक प्रभुको साँचा जान तू, हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥५॥

भजन ।

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥

माया बनी सारकी सूली, नारी नरक का कूआ रे ॥ १ ॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआँ सूआ रे ॥ २ ॥
भाई बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमें पच २ मूआ रे ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हार चला जग जूआ रे ॥ ४ ॥

भजन (राग काफी)

नर समझत नाहि अनारी ॥ टेर ॥

गर्भवास में उलटो लटक्यो, पायो दुःख अति भारी ।
जो प्रभु! अबके मैं बाहर निकसों, तेरो भजन करूँ हरबारी ।
पलक नहिं टेऊ विसारी ॥ १ ॥

जन्म होत माया लिपटायो, भूल गयो सुध सारी ।
भक्ति भाव में चित ना राख्यो, ऐसी कुमत विचारी ।
जन्म की कर दई ख्वारी ॥ २ ॥

आया था कुछ लाभ करन को, गाँठ की पूँजी हारी ।
सौदा कर ले राम नाम का, आओ शरण गिरधारी ।
भरोसा जिनका है भारी ॥ ३ ॥

श्री सतगुरु तोहि नित समझावें, वे हैं सबके हितकारी ।
आप तरें औरन को तारें, कहे "हरिदास" पुकारी ।
उम्र योंही मुफ्त गुज़ारी ॥ ४ ॥

गज़ल ।

उठ जागरे मुसाफिर, किस नींद सो रहा है ।
जीवन अमूल्य प्यारे, क्यों मुफ्त खो रहा है ॥ १ ॥

रहना न यहाँ पे होगा, दुनिया सराय फानी ।
फँसकर बदी में प्यारे, क्यों मस्त हो रहा है ॥ २ ॥

ले ले धरम का तोषा, मत भूल ऐ दिवाने ।
नेकी की खेती करले, क्यों पाप बो रहा है ॥ ३ ॥

माता पिता वा भाई, होंगे न कोई साथी ।
क्यों मोहरूपी बोझा, नाहक को ढो रहा है ॥ ४ ॥

किश्ती तेरी पुरानी, हिकमत से पार करले ।
ऐ दिल ! अथाह जलमें, तू क्यों डुबो रहा है ॥ ५ ॥



भजन (लावनी)

पड लोभ मोहके जालमें, नर आयू क्यों खोता है ॥ टेक ॥
यह जग जान रैनका सुपना, जिसको कहता अपना-अपना ।
भूल गया ईश्वर का जपना, फँसा हुआ धन-माल में ।
क्या सुख की नींद सोता है ॥ १ ॥

चलै अकड बन छैल छबीला, अन्त समय सब हो जाय ढीला ।
काम न आवे कुटुम्ब-कबीला, भूला जिनके ख्याल में ।
कोई साथी नहि होता है ॥ २ ॥

अब क्यों सिर धुनि-धुनि पछितावे, रुदन करै और रौल मचावे।
कुछ नहिं तेरी पार बसावे, चूका पहिली चालमें।
क्या खड़ा-पड़ा रोता है ॥ ३ ॥

समझ सोच कर क़दम उठाना, मुशकिल मनुषजन्म है पाना।
कहै "मुरारी" जो हो दाना, भज हर को हर हाल में।
क्यों पाप-बीज बोता है ॥ ४ ॥

महात्मा सुन्दरदासजी को भी सुनिये :—

वैरी घर माँहि तेरे, जानत सनेही मेरे।
दारा सुत वित्त तेरे, खोंसि-खोंसि खायँगे।
औरहु कुटुम्बी लोग, लूटें चहुँ ओरही तें।
मीठी बात कहि, तोसूँ लपटायँगे।
सङ्कट परैगो जब, कोई नहीं तेरो तब।
अन्तही कठिन, वाकी बेर उठि जायँगे।
"सुन्दर" कहत, तातें झूठो ही प्रपञ्च सब।
सपनको नाईं, यह देखत बिलायँगे ॥१॥
घरी-घरी घटत, छीजत जात छिन-छिन।
भीजतही गरिजात, माटी को सो ढेल है।
मुकुतिके द्वार आई, सावधान क्यूँ न होइ।
बेर-बेर चढत न, तियाको सो तेल है।
करि ले सुकृत, हरि भज ले अखण्ड नर।
याही में अन्तर पड़े, यामें ब्रह्म मेल है।

मनुष्य-जनम, यह, जीत भावै हार अब।
"सुन्दर" कहत यामें जूआको सो खेल हैं॥२॥

जिनको तू अपने स्नेही-मित्र और स्त्री-पुत्र, माता-पिता भाई-बहन आदि समझता है, वे तेरे घर में तेरे ही दुश्मन है। वास्तव में, वे सब तेरे शत्रु हैं, पर मोहके कारण तुझे वे मित्र से मालूम होते हैं। स्त्री-पुत्र आदि तेरा धन तुझसे छीन-छीन कर खायेंगे। और कुटुम्बी लोग भी तुझे चारों ओर से लूटेंगे और मीठी-मीठी बातें बनाकर तेरे लिपटेंगे। तेरे लिये वे धन-दौलत, जीव-जान और सर्व्वस्व तक स्वाहा कर देने को डोगें मारेंगे, लेकिन जब तुझ पर सङ्कट पड़ेगा, काल तुझ पर आक्रमण करेगा, तब तेरा कोई न होगा। अन्तकाल ही कठिन है और उस समय सब तुझे छोड़-छोड़ कर दूर हो जायेंगे। "सुन्दरदास" कहते हैं, इसलिये यह सब प्रपञ्च झूठा है, कोई किसी का साथी नहीं है। मरने पर सब स्वप्न की माया की तरह बिलाय जायेंगे।

घड़ी-घड़ी उम्र घटती है और क्षण-क्षण काया छीजती है। जिस तरह मिट्टी का ढेला भीजते ही गल जाता है, उसी तरह यह काया गल जाती है। अरे मूढ! मुक्ति के द्वार पर आकर, होशियार क्यों नहीं होता? मनुष्य-चोला पाकर, आवागमनसे पीछा क्यों नहीं छुड़ाता? यह चोला तुझे उसी तरह बारम्बार नहीं मिलेगा, जिस तरह त्रिया का तेल बारबार नहीं चढ़ता। तू पुण्य करले और अखण्ड अविनाशी ब्रह्म को भजले। इसमें अन्तर

पढने से अन्तर पडता है और इसमें लग जाने से जीव ब्रह्म में मिल जाता है । इस मनुष्य-जन्मका मिलना जूएका सा खेल है ! अब चाहे जीत या हार , बाजी मार ले और चाहे खो दे ।

दोहा ।

रोग वियोग विपत्ति बहु, देह आयु आधीन, ।
निदर विधाता जग रच्यो, महा अथिरता लीन ॥१०५॥

105 *People's health is destroyed by hundreds of mental and physical diseases Wherever there is wealth misfortunes come in like thieves breaking open the doors of houses He who is born, soon falls helplessly into the jaws of death from which there is no escape Then what is there in this world which is made by the wilful Brahama to last for ever?*

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकर विषमे यौवने विप्रयोग ॥ नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः ससारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥१०६॥

प्रथमावस्था में प्राणी माता के गर्भ में पडा रहता है। वहाँ वह, मल मूत्र राध लोहू प्रभृति गन्दी चीजों के बीच में पडा हुआ, बडे-बडे कष्ट भोगता है और हिल भी नहीं सकता । दूसरी अवस्था—जवानी में, वह अपनी प्यारी स्त्री की जुदाई के दुःख सहन करता

है। तीसरी अवस्था—बुढ़ापे में, वह स्त्रियों से अनादृत होकर दुःख में पड़ा रहता है। हे मनुष्यो! इस संसार में जरासा भी सुख हो तो हमें बताओ ॥१०६॥

गर्भावस्था।

माताके खून और पिताके वीर्य्यसे, गर्भाशय में, प्राणीकी देह बनती है। चार मास बाद, उस देह मे जीव आ जाता है। उस समय वह घोर अन्धकारपूर्ण क़ैदखाने मे हाथ-पांव-बँधा हुआ उल्टा लटका रहता है। मुँह पर झिल्ली होनेके कारण, न बोल सकता है और न रो सकता है। जिस स्थानमें वह नौ मास तक रहता है, वह स्थान—गर्भाशय—मल, मूत्र, राध, खून, पीव और कफ प्रभृति महागन्दे पदार्थोंसे भरा रहता है। वह जगह गन्दी होनेके सिवा, इतनी तङ्ग भी है कि, वहाँ वह अच्छी तरह फैल-पसर भी नहीं सकता। उसी मैली और तङ्ग जगह में, जो साक्षात् नरक है, वह बड़े ही कष्ट से नौ महीने काटता है। नरक-कुण्ड के कष्टों से दुःखी होकर, वह परमात्मा को याद करता और उससे वादा करता है कि, इस बार मैं जन्म लूँगा, तो, और कुछ न करके, केवल आपकी उपासना ही करूँगा। खैर, भगवान् दया कर उसे बाहर निकालते हैं, पर बाहर आतेही वह, माया-मोह में फँसकर, ईश्वर को भूल जाता है।

बालावस्था ।

बालावस्था भी परम दुःख की मूल है। इस अवस्था में प्राणी पराधीन और अतीव दीन रहता है। अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता और दुःख-सन्ताप,—ये विकार इस अवस्था में आ जाते हैं। बालक एक पदार्थ की ओर दौड़ता, दूसरे को पकड़ता और तीसरे की इच्छा करता है। वह बड़ी-बड़ी इच्छायें करता है, पर उसकी इच्छायें पूरी नहीं होतीं। वह सदा तृष्णा के फेर में पड़ा रहता और क्षण-क्षण में भयभीत होता है। उसे कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती। जिस तरह कदलीवनका हाथी, सङ्कलों में बँधा हुआ, दीन हो जाता है, उसी तरह यह चैतन्य पुरुष, बालावस्था रूपी सङ्कलोंमें, महादीन हो जाता है। जिस तरह क्षण-क्षण में द्वार की ओर दौड़ने वाले कुत्ते का अपमान होता है, उसी तरह बालक का अनादर होता है। उसे सदा माता-पिता और बान्धवों का भय रहता है। यहाँ तक कि, अपने से बड़े बालकों और पशु-पक्षियों से भी उसे भीत रहना पड़ता है। स्त्री के नयन और नदी के प्रवाह से भी बालक और मन की चञ्चलता अधिक है। सच तो यह है कि, बालक और मन की चञ्चलता समान है, और सब की चञ्चलता इन दोनों की चञ्चलता के नीचे है। जिस तरह वेश्या का मन एक पुरुषमें नहीं ठहरता, उसी तरह बालकका मन भी एक पदार्थ

मे नही ठहरता। इस काम या पदार्थ से मेरा अनिष्ट होगा या कल्याण, इतना भी ज्ञान बालक को नही होता। जिस तरह ज्येष्ठ आषाढ में पृथ्वी तपती रहती है, उसी तरह सुख-दु ख और इच्छा प्रभृति के दोषो से बालक जलता रहता है।

बालक मे अशक्तता और पराधीनता इतनी होती है कि, वह आप न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न चल सकता है और न खा सकता है। कोई उठा लेता है, तो गोद में आ जाता है, नही तो अपने मल-मूत्र में ही पडा-पडा रोया करता है। कोई दूध पिला देता है, तो पी लेता है नही तो रोता रहता है। यह शिशु अवस्था है। इस अवस्था को पार कर वह बालकावस्थामें आता है, तब लिखने-पढने का भार उसके सिर पर आता है। उस समय बालक गुरुसे इस तरह डरता है, जिसतरह कोई यमदूत से डरता है। जरा भी दङ्गा करने या न पढने से माता-पिता और गुरु प्रभृति की ताडनायें सहनी पडती है। अगर उसे कुछ रोग हो जाता है, तो वह साफ-साफ कह नही सकता और उसे सह भी नही सकता, भीतर-ही-भीतर जलता और दु ख पाता है। यह अवस्था महामूर्खतापूर्ण है। बालक कभी कहता है कि, मुझे बर्फका टुकडा भून दो, कभी कहता है कि आकाश का चाँद उतार दो। भोला इतना होता है कि, थाली में जल भरकर चाँद दिखाने और दूध की जगह आटा घोल कर दे देने से राजी हो जाता है। इस अवस्था में दु ख-ही-

दु:ख है, सुख और स्वाधीनता का नाम भी नहीं। परमात्मा यह अवस्था किसी को न दे।

युवावस्था।

बालावस्था के बाद युवावस्था आती है। यद्यपि यह अवस्था नीचे से ऊपर चढ़ती है, पर यह औरभी बुरी है। १५।१६ साल की अवस्था में शादी कर दी जाती है। इसे 'शादी खाने आबादी' कहते हैं, पर यह है बर्बादी। बेचारे के पैरोंमें ऐसी बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं, कि उसे जन्म-भर आज़ादी नहीं मिलती। लोहे और काठकी बेड़ियोंसे चाहे मनुष्योंको छुटकारा मिल जाय, पर स्त्री-रूपी बेड़ियोंसे जीवन-भर छुटकारा नहीं मिलता। अब तक पढ़ने लिखने की चिन्ता और गुरु प्रभृति के भय से ही दुखी रहना पड़ता था, पर अब और फिक्र—चिन्तायें सिर पर सवार होती हैं। वही माता-पिता, जिन्होंने शादी-शादी कहकर पैरों में स्त्री रूपी बेड़ियाँ पहना दी थीं, उठती जवानी के पट्ठे को भून भूनकर खाते हैं। कहते हैं,—"हमने तुझे पढ़ा-लिखा दिया तेरा शादी-ब्याह कर दिया, हमारा कर्त्तव्य पूरा हुआ, अ तू कमा। अगर नहीं कमाता है, तो अपनी स्त्री क लेकर अलग हो जा।" इस समय बेचारे की जान पर ब आती है। नौकरी या रोज़गार का मिलना कोई खेल नहीं

इसलिये बेचारा भीतर-ही-भीतर जल-जलकर खाक होने लगता है। अगर धनी घर में जन्म होता है, तो ये कष्ट भोगने नहीं पड़ते। उस अवस्था में और ही नाश के समान आ इकट्ठे होते हैं। धन, यौवन और प्रभुता इनमें से प्रत्येक अनर्थ की जड़ है। जहाँ ये सब इकट्ठे हो जायें, वहाँ का तो कहना ही क्या ? जिस तरह, धन पाने की आशासे, निर्धन लोग धनी को घेरे रहते हैं, उसी तरह, इस अवस्था में, सब दोष आकर युवक को घेर लेते हैं। युवावस्था रूपी रात्रि को देखकर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार "आत्मज्ञान-रूपी धन को" लूटते हैं, इसलिये चित्त शान्त नहीं रहता और विषयों की ओर दौड़ता है। विषयों का संयोग होनेसे तृष्णा बढ़ती है। इस तृष्णा-राक्षसी के मारे प्राणी जन्म-जन्मान्तर में दुःख भोगता है।

इस अवस्था में विषय-भोगों की ओर मन जियादा रहता है। स्त्री अत्यधिक प्यारी लगती है। नितनयी स्त्रियों पर मन चला करता है। अगर कोई मित्र आता है, तो नवयुवक उससे कहता है,—"अरे यार! वह नाजनी कैसी खूबसूरत है! उसने तो मेरा दिलही ले लिया। उसके दीदार बिना मुझे क्षण भर चैन नहीं। वह कैसे मिले ?" बस, ऐसीही बातें अच्छी लगती हैं। अगर इच्छित स्त्री नहीं मिलती, तो मनमें क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिके नष्ट होनेसे मनुष्य बिना पतवार की नाव की तरह नष्ट हो जाता है। समुद्र में अगाध जल भरा है। उसमें अनन्त तरंगें उठती

है। इतना विशाल महासागर, ईश्वर-आज्ञाके विरुद्ध, मर्यादाको नहीं मेटता, पर युवावस्था शास्त्र और ईश्वर दोनोंकी आज्ञाको मेट देती है। जिस तरह अँधेरेमें पदार्थोका ज्ञान नहीं रहता, उसी तरह युवावस्था से शुभ-अशुभ या भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। जवानी दीवानी में लोक-लाज और हया-शर्म सब हवा हो जाती है।

लिख चुके है, युवा अवस्था में स्त्री सबसे अधिक प्यारी लगती है। अगर किसी तरह स्त्री से वियोग हो जाता है, तो उसकी वियोगाग्नि में पुरुष इस तरह जलता है, जिस तरह दावाग्नि से वन के वृक्ष जलते है। युवावस्था में बड़े-से-बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि उसी तरह मलिन होजाती है, जिस तरह वर्षाकाल मे निर्मल नदी मलिन हो जाती है। इस अवस्था में "वैराग्य और सन्तोष प्रभृति" गुणोका अभाव हो जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने महामुनि वशिष्ठजी से कहा है—"हे मुनिवर! जिस महासागर में अनन्त और अगाध जलराशि है तथा लाखों-करोडो बड़े-बडे मगर, मच्छ और घड़ियाल है, उसका पार करना महा कठिन हैं, पर मैं उसका पार करना उतना मुश्किल नही समझता, जितना कि मै इस युवावस्था का पार करना कठिन समझता हूँ। युवावस्था विषयोकी ओर ले जाने वाली, महा अनर्थकारी और लोक-परलोक नशाने वाली है। जिस तरह आकाश में वन का होना आश्चर्य की बात है, उसी तरह युवावस्थामें सब सुखो के मूल "वैराग्य

विचार, सन्तोष और शान्ति" का होना आश्चर्य है।" महाराजा रामचन्द्र एक और जगह कहते हैं —"युवावस्था! मुझ पर दया करके, तू न आना। मुझे तेरी ज़रूरत नहीं, क्योंकि मेरी समझमें तेरा आना दुःखों का कारण है। जिस तरह पुत्रके मरने का सङ्कट पिता के सुख के लिए नहीं होता, उसी तरह तेरा आना भी सुख के लिए नहीं होता।"

वृद्धावस्था।

यह अवस्था पहली दो अवस्थाओं से भी बुरी है। बाल्यावस्था महा जड़ और अशक्त है, युवावस्था अनर्थ और पापों की मूल है तथा वृद्धावस्था में शरीर जर्ज्जर और बुद्धि क्षीण हो जाती है, कूब निकल आता है, दाँत गिर पड़ते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं, बल कम हो जाता है, आँखों से कम सूझता या सूझता ही नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता, पैरों से चला नहीं जाता, लकड़ी टेक-टेक कर चलना होता है, कफ और खाँसी अपना दौर-दौरा जमा लेते हैं, हर समय साँस फूलने लगता है। बहुत क्या—सारे रोग, शत्रुओं की तरह मौका पाकर, इस अवस्था में चढ़ाई कर देते हैं। स्त्री पुत्रादिक सभी नाते-रिश्तेदार बूढ़े को उसी तरह त्याग देते हैं, जिस तरह पके फल को वृक्ष और निकम्मे बूढ़े बैल को बैलवाला त्याग देता है।

जरा अवस्था या बुढापा मृत्युका पेशखीमा या लैनडोरी है। जिस तरह साँझ होने से रात निकट आती है, उसी तरह बुढापे के आने से मौत नजदीक आती है। सन्ध्या के आने पर जो दिन की इच्छा करते हैं और बुढापे के आने पर जो जीने की अभिलाषा रखते है, वे दोनों ही मूर्ख हैं। जिस तरह बिल्ली चूहे के खा जाने की घातमें रहती है और चाहती है कि, चूहा आवे तो खा जाऊँ, उसी तरह मौत देखती रहती है कि, बुढापा आवे तो मैं इसे ग्रहण करूँ। ऐसा जान पडता है, मानो वृद्धावस्था काल की सखी है। वह आकर रोगरूपी आग से शरीर के मास को जलाती या पकाती है और उसका स्वामी—काल आकर प्राणीको भक्षण कर जाता है। अशक्तता, अङ्गपीडा और खाँसी,—ये तीनो कालकी पटरानियाँ हैं। जिस तरह वन में बाघिन आकर पहले शब्द करती या गरजती है, और मृगका नाश करती है, उसी तरह शरीर-रूपी बनमें खाँसी-रूपी बाघिन आकर बल-रूपी मृग का नाश करती है। जिस तरह चन्द्रमा के उदय होने से कमलिनी खिल उठती है, उसी तरह बुढापे के आने से मृत्यु प्रसन्न होती है। जरा बडी ज़बर्दस्त है। इसने बडे-बड़े शत्रुहन्ताओं के मान मर्दन कर दिये हैं। यह शरीर को आग की तरह जलाती है। जिस तरह वृक्ष में आग लगती है, तब धूआँ निकलता है, उसी तरह शरीर-वृक्षमें जरा-रूपी अग्नि के लगने से तृष्णा-रूपी धूआँ निकलता है। जरा रूपी ज़ञ्जीर में बँधने से मनुष्य दीन हो जाता है, अङ्ग शिथिल

हो जाते हैं, बलक्षीण हो जाता है, इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं और शरीर जर्जर हो जाता है, पर तृष्णा उलटी बलवती हो जाती है। इस अवस्था में घोर दुःख है, सुख का तो लेश भी नहीं।

जिस समय पुरुष बूढ़ा हो जाता है, उसमें कमाने की शक्ति नहीं रहती, तब सभी उसे पागल समझ कर, उसकी हँसी करते और उसके पुत्र-पौत्रादिक उसे बुरी नज़र से देखते हैं। यहाँ तक कि, खास उसकी अर्द्धाङ्गी उस से घृणा करने लगती है। पुत्र उसे कोई चीज़ नहीं समझते, और लोग भी उसे वृथा की बला समझते हैं। पुत्र और पुत्र-बधुएँ उसे एक टूटी सी खाट पर पौली में डाल देते हैं और उसके थूकने को एक ठिकरा रख देते हैं। आप समय पर अच्छे-से-अच्छा खाना खाते हैं, पर उसे, समय-बे-समय, जब याद आ जाती है, बचा-खुचा बासी-कूसी खाना एक पुरानी और फूटी सी थाली या ठीकरे में रख कर दे आते हैं। जब उसका थूक-खखार या मल-मूत्र उठाते हैं, तब उसे सैकड़ों तरह की न कहने योग्य बातें सुनाते हैं,—"अब मर क्यों नहीं जाते? जवान-जवान मरे जाते हैं, पर तुम को मौत नहीं आती।" प्रभृति। यह दुर्गति बुढ़ापे में होती है।

अगर घर-गृहस्थी में सौभाग्य से कोई दुःख नहीं होता, घरवाले स्त्री-पुत्र आदि अच्छे मिल जाते हैं, घरमें परमात्मा की दयासे सुखैश्वर्य के सभी सामान मौजूद होते हैं, तो दूसरों

का भला न चीतने वाले, दूसरो को अच्छी अवस्था में देख कर कुढने वाले ही तङ्ग करते हैं। वह अपनी ओर से उसके सर्व्व-नाश करने में कोई बात उठा नही रखते। यद्यपि ऐसी बातो से उन्हें कोई लाभ नही होता, तोभी वह बिल्ली कोसो कर तूतों से बाज़ नही आते, हरदम नाक में दम किये रहते हैं। मतलब यह कि, ससार में दुःखों की ही अधिकता है। यहाँ सुख है ही नहीं। अगर है, तो बराय नाम और उससे परिणाम में कोई लाभ नही, वरन हानि है। उस्ताद जौक़ कहते हैं—

राहतो रज जमाने में हैं दोनों, लेकिन।
याँ अगर एक को राहत है, तो है चारको रज॥

निस्सन्देह ससार में सुख और दु,ख दोनो ही हैं—पर बहु-लता दु ख ही की है, क्योकि चार दु खियों मे मुश्किल से एक सुखी मिलता है।

उस्ताद जौक ही एक जगह और कहते हैं —

हलावते शरमो पासदारी, जहाँ में है जौक़ रजोख्वारी।
मजेसे गुजरी, अगर गुजारी किसीने बे नामोनग होकर॥

ससार से दूर रहना अच्छा, यहाँ के सम्बन्धों की जड में दु ख और क्लेश भरा हुआ है। जिसने अपनी जिन्दगी चुप-चाप गुजार दी, सच तो यह है, उसने अच्छी गुजार दी।

सारांश यह, कि सभी महात्माओं ने संसार के दु खों का

अनुभव करके औरों को चेतावनी दी है, कि इस मिथ्या जगत् की माया में न भूलो, इससे दिल मत लगाओ, किन्तु इसके बनानेवाले के साथ दिल लगाओ। इस के साथ दिल लगाने से तुम्हारा बुरा और उसके साथ दिल लगाने से भला है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है —

सलिल युक्त शोणित समुझ, पल अरु अस्थि समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सुसमुझ करु चेत॥
ऐसेहि गति अवसान को, तुलसी जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरल हरि चित चेत॥

स्त्री की रज और पुरुष के वीर्य से तुम्हारे शरीर के खून, मास और हड्डियाँ बनी। फिर तुम गर्भाशय से बाहर आये। फिर बालक अवस्था में रहे, उसके बाद युवावस्था आई, फिर बुढापा आया। फिर तुम मरे और कर्मफल भोगने को फिर जन्म लिया। इस तरह लोक-वासना के कारण तुम्हें बारम्बार जन्मना और मरना पड़ता है। इसमें कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं, इन बातोंको याद करते रहो और कष्टों से बचनेके लिये सावधान होकर परमात्मा से प्रीति करो, तभी तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे सारे नातेदार मतलबी हैं, केवल एक वह सच्चा सहायक और रक्षक है। यही सब विषय नीचे के भजनोंमें कैसी खूबी से दिखाये हैं —

भजन (राग धनाश्री)

हरि बिन और न कोई अपना, हरि बिन और न कोई रे।
मात पिता सुत बन्धु कुटुम सब, स्वारथके ही होई रे ॥१॥

या काया को भोग बहुत दे, मरदन कर-कर धोई रे।
सो भी छूटत नेक न खसकी, सङ्ग न चाली सोई रे ॥२॥
घरकी नारि बहुत ही प्यारी, तनमें नाहीं दोई रे।
जीवत कहती सङ्ग चलूँगी, डरपन लागी सोई रे ॥३॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनो, जिन उज्ज्वल मति खोई रे।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्राण ले जोई रे ॥४॥
इस जग में कोई हितू न दीखे, मैं समझाऊँ तोई रे।
चरणदास-सुखदेव कहैं, ये सुन लीजो सब कोई रे ॥५॥

भजन (राग सोरठ)

सुध राखो वा दिन की कछु तुम, सुध राखो वा दिन की रे।
जादिन तेरी यह देह छुटैगी, ठौर बसौगे बन की रे ॥१॥
जिनके सङ्ग बहुत सुख कीने, तेरो मुख ढँक होयँगे न्यारेरे।
जम के त्रास होयँ बहु भाँती, कौन छुटावनहारे रे ॥२॥
देहल लौं तेरी नारि चलेगी, बडी पौल लौं माई रे।
मरघट लो सब बीर भतीजे, हंस अकेला जाई रे ॥३॥
द्रव्य पडे और महल खडे रहैं, पूत रहैं घर माही रे।
जिनके काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं रे ॥४॥
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिनकी सेवा लावे रे।
चरणदास-सुखदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्ति न पावे रे ॥५॥

परमात्मा की भक्ति करो तो ऐसी करो कि, परमात्मा के सिवा अन्य किसी भी देवी-देवता या संसारी पदार्थ को कुछ समझो ही नहीं, यानी उस जगदीश के सिवा सबको झूठे, निकम्मे और नाशमान् समझो। केवल उसके प्रेम में गर्क हो जाओ और उससे प्रेम के बदलेमें कुछ माँगो नहीं, तब देखो, क्या आनन्द आता है। कबीर साहब कहते हैं —

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतङ्ग।
प्रान तजै छिन एकमें, जरत न मोरे अङ्ग॥

इसी बात को उस्ताद जौक़ ने किस तरह कहा है —

कहा पतंग ने यह, दारे शमा पर चढ कर।
अजब मजा है, जो मर ले किसीके सर चढ कर॥

ऐसी प्रीति को ही प्रीति कहते हैं। दीपक और पतङ्ग, मछली और जल, नाद और कुरङ्ग, चातक और मेघ,—इनकी प्रीति आदर्श प्रीति है। ऐसी प्रीति से ही सच्ची सिद्धि मिलती है—ऐसी प्रीतिवालो को ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

दोहा।

सह्यो गर्भदुख जन्मदुख, जोबन त्रिया वियोग।
वृद्ध भये सबहिन तज्यो, जगत किधौं यह रोग॥१०६॥

106 *In their earliest stage of existence creatures remain in their mothers' wombs in the midst of impurities suffering great hardships with motionless bodies In youth comes the unbearable pain of separation from consorts Then comes the mis-*

erable old age marked unmistakeably by the insolence of women Thus O men, let us know if there is any the least happiness in this world !

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयो ॥
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुत प्राणिनाम् ॥१०७॥

मनुष्य की उम्र औसत सौ बरस की मानी गई है। उसमें से आधी तो रात में सोने में गुज़र जाती है, बाकी में से एक भाग बचपन में और एक भाग बुढापे में चला जाता है। शेष में जो एक भाग बचता है,—वह रोग, वियोग, पराई चाकरी, शोक और हानि प्रभृति नाना प्रकार के क्लेशों में बीत जाता है। जल तरङ्गवत् चञ्चल जीवन में प्राणियोंके लिये सुख कहाँ है ? ॥१०७॥

आयु का हिसाब ।



खुलासा—शास्त्रों में मनुष्य की आयु सौ बरस की मानी गई है। उसमें से पचास बरस, यानी आधी आयु तो रात के समय सोने में बीत जाती है। अब रहे पचास बरस, उनके तीन भाग कीजिये। पहले १७ साल बचपन की अज्ञानावस्था और पराधीनता में बीत जाते हैं। दूसरे १७ साल वृद्धावस्था

में चले जाते हैं और शेष १६ साल नाना प्रकार के रोग, शोक, वियोग, हानि-लाभ की चिन्ता और दूसरों से लडने-झगडने प्रभृति में बीत जाते हैं।

प्राणी को कभी सुख नहीं।

पचास साल में से पहले १७ बरस बचपन में बीतते हैं। इस अवस्था में, पैदा होते ही, बच्चा पराधीन होता है। आप उठ-बैठ चल-फिर नहीं सकता। कोई उठा लेता है, तो उठ आता है, नहीं तो मल-मूत्र में ही पडा रहता है। कोई खिला-पिला देता है, तो खा-पी लेता है, नहीं तो पडा-पडा रोया करता है। कैसी बुरी अवस्था है। इसमें ज़रा भी सुख दिखाई नहीं देता। इसके बाद ज्योंही वह ५।६ साल का हुआ, कि उस पर पढने-लिखने का भार आ पडता है। रात-दिन पढने-लिखने की चिन्ता में बेचारा पागलसा बना रहता है।

इसके बाद जवानी आती है। जवानी में स्त्री आ जाती है। अगर धन नहीं कमाता, तो माता-पिता कहते हैं— "हमने तुम्हारी शादी कर दी, बना जितना पढा-लिखा दिया, अब कमाओ, यदि नहीं कमाते, तो अपनी लुगाई को लेकर अलग हो जाओ। हमसे तुम्हारा दोनों का खर्च उठाया नहीं जाता।" अगर कोई धन्धा लग गया, तो खैर, नहीं तो जब

तक नौकरी-चाकरी या रोजगार नहीं लगता, रात-दिन बेचारा भाड में चनों की तरह भूना जाता है। अगर धन्धा भी लग जाता है, तो स्वामी की राज़ी या नाराज़ होने की चिन्ता लगी रहती है अथवा कारोबार के नफ़े-नुक़सान की फ़िक्र शरीर को भीतर-ही-भीतर जलाये देती है। इसी बीच में रोग भी होते हैं। दूसरों से मुक़द्दमेबाज़ी होती है। इस तरह इस अवस्था में भी चैन नहीं मिलता।

अब रहा बुढ़ापा। यह तो दु खों का भाण्डार ही है। इसमें अनेक रोग शत्रुओं की तरह चढ़ाई करते हैं, शरीर काम नहीं देता और घर के लोग अनादर करते हैं। इस अवस्था में औरभी मिट्टी खराब होती है। इस तरह स्पष्ट है, कि प्राणी को इस चञ्चल जीवन में क्षण-भर भी सुख नहीं मिलता।

दुःखपूर्ण जीवन से प्राणी सन्तुष्ट !



यद्यपि इस जीवन में ज़रा भी सुख नहीं है, क्षण-भर भी शान्ति नहीं है, तोभी मनुष्य का ऐसा मोह है कि, वह मरना नहीं चाहता, मौत का नाम सुनने से काँप उठता है। अगर इस जीवन में सुख होता, तो न जाने क्या होता ? घोर कष्ट और दु.खों में भी यदि मनुष्य मरता है तो कहता है—"हम कुछ न जिये. अगर और कुछ दिन जीते तो "

किसी कवि ने कहा है—

हो उम्र खिज्र भी, तो कहेंगे वक्के मर्ग।
हम क्या रहे यहाँ, अभी आये अभी चले ॥

चाहे हजारों वरस की उम्र हो जाय, मरते समय यही कहेंगे, इस संसार में कुछ भी न रहे, अभी आये अभी जाते हैं। जीने की अभिलाषा बनी ही रहती है।

घृणित जीवन से भी क्यों घृणा नहीं होती ?



मनुष्य-जीवन में दुःख-ही-दुःख है, फिर भी मनुष्य इस घृणित जीवन से सन्तुष्ट क्यों रहता है ? इससे उसे घृणा क्यों नहीं होती ? जिस तरह मैले से भङ्गी को घृणा नहीं होती, उसी तरह जिनके स्वभाव में मनुष्य-जीवन के दुःख समा गये हैं, उन्हें इस मलिन और घृणित जीवन—दुःखपूर्ण जीवन से घृणा नहीं होती। मैलेका कीडा मैले में ही सुखी रहता है, मैले से निकलने में उसे दुःख होता है। यही हाल उनका भी है, जिनके अन्तःकरण मलिन हैं। वे मलिन गृहस्थाश्रम में ही सुखी हैं।

मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है ?



मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। यह ८४ लाख योनियाँ भोगने

के बाद मिलता है। अगर मनुष्य इस मानव-जीवन में भी चूक जाता है, आवागमन—जन्म-मरण—के फन्दे से छूटने का उपाय नहीं करता, तो वह पछताता और रोता है, पर यह सुअवसर उसे फिर जल्दी नहीं मिलता। इस पर एक दृष्टान्त है—

अवसर चूके पछताना होता है।



किसी राजा के ३६० रानियाँ थीं। राजा विदेश गया था। जिस दिन वह लौटकर आया, उस दिन ३६० वें नम्बरकी रानी के यहाँ उसके जाने की बारी थी। रानीने दासियोंसे कह दिया. कि, मैं सोती हूँ,जब राजाजी आवें, मुझे जगा देना। रात को राजा आया, किन्तु दासियोंने भयके मारे रानी को न जगाया। सवेरे राजा चला गया। रानी ने उठ कर पूछा—"क्या राजाजी आये थे?" दासियों ने कहा—"हाँ, आये थे। हम लोग उनके भय के मारे आपको जगा न सकीं।" रानी बहुत रोई पछताई। उसे ३६० दिन तक फिर राह देखनी पड़ी। बस, यही हाल उनका है,जो इस मनुष्य-जन्मको वृथा गँवा देते हैं। इसमें भगवद्भक्ति या उपासना नहीं करते। मर जाने पर, ८४ लाख योनियों को भोगकर, फिर कहीं ऐसा अवसर हाथ आता है। अत मनुष्य को, सब जञ्जाल छोड़कर, एकमात्र भगवद्भक्ति में लगना चाहिये एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाना चाहिये। दम निकले तो

जगदीश्वर की याद करता हुआ ही निकले। इसी में कल्याण है। साँस का भरोसा क्या ? आया आया, न आया न आया। "गुरु-कौमुदी" में कहा है'—

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे।
बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः क प्रवर्त्तते ॥

अरे जीव! प्रत्येक क्षण हरि का नाम भज। हरि का नाम कल्याण-धाम है। जो साँस बाहर निकल जाता है, उसका क्या भरोसा ? आवे, न आवे।

महाभारत में आयु की क्षणभंगुरता पर एक इतिहास लिखा है —

एक ब्राह्मण राह भूल कर किसी भयानक वन में जा निकला। वहाँ हाथी और सर्प प्रभृति भयानक हिंसक पशु घूम रहे थे। एक पिशाचिनी हाथ में फाँसी लिये सामने आ रही थी। उन्हें देखकर वह डर के मारे रक्षा का स्थान खोजने लगा। उसने एक अन्धा कूआ देखा, जिसमें घास छा रही थी तथा अनेक प्रकार की बेलें लग रही थीं। वह एक बेल को पकड़ कर, औंधा सिर किये, कूएँ में लटक गया। थोड़ी देर बाद उसने नीचे की ओर देखा, तो एक बड़ा भारी सर्प मुँह फाड़े हुए नजर आया, ऊपर की ओर देखा, तो एक मस्त हाथी खड़ा दीखा। उस हाथी के छः मुख थे। उसका आधा शरीर सफेद और आधा काला था। जिस बेल को वह

ब्राह्मण पकडे हुए था, उसको वह हाथी खा रहा था और सफेद तथा काले दो चूहे उस बेल की जड को काट रहे थे।

इसका मतलब यों है:—वह ब्राह्मण जीव है। सघन वन यह ससार है। काम क्रोध आदि भयानक जीव इस जीव के नष्ट करने को घूम रहे हैं। स्त्री-रूपी पिशाचिनी, भोग-रूपी पाश लेकर, इस जीव के फँसाने के लिये फिरती है। कूएँ में जो बेल लटक रही है, वही आयु है। उसी को पकड कर यह जीव लटक रहा है। कूएँ में जो कालसर्प है, वह इस जीव का काल है, वह अपनी घात देख रहा है, उधर रात-दिन रूपी चूहे इस आयु रूपी बेल की जड काट रहे हैं। वह हाथी वर्ष है। उसके छ, मुख छ ऋतुएँ हैं। शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष उस हाथी के वर्ण या रग हैं। मनुष्य इस तरह मौत के मुँह में है। हर क्षण मौत उसे निगलती जा रही है, पर आश्चर्य है कि, इस आफत में भी—मृत्यु-मुखमे पडा हुआ भी—वह अपने को सुखी समझता है और इस नितान्त भयपूर्ण जीवन से सन्तुष्ट है।

बीत गई सो बीत गई, आगे की सुधि लो।



बहुत से लोग कहा करते हैं, कि हमने सारी उम्र परपीड़न या पापकर्मों में खोई, भगवान् को कभी भूल से भी याद न किया, अब हम क्या कर सकते हैं? यह कहना भारी भूल है। जो

समय वीत गया, वह तो लौट कर आवेगा नहीं, पर जो समय हाथमें है, उसे तो सुकर्म और ईश्वरकी यादमें लगाना चाहिये। यदि बाकी उम्र भी व्यर्थके झञ्झटोंमे गँवाई जायगी, तो अन्त-कालमें भारी पछतावा होगा। किसी कविने ठीक ही कहा है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र,
धरा धन धाम हैं बन्धन जीको।
बारहिं बार विषैफल खात,
अघात न जात सुधारस फीको।
आन औसान तजो अभिमान,
कही सुन, नाम भजो सिय-पीको।
पाय परमपद हाथ सों जात,
गई सो गई अब राख रही को।

एक नट की उपदेशप्रद कहानी।



एक राजा बड़ा ही कञ्जूस था। उसने प्रचुर धन सञ्चय किया था, पर उससे न तो वह अपने पुत्रको सुख भोगने देता था और न खर्चके डरसे अपनी कन्या की शादी ही करता था। एक दिन एक नट नटी उसके दरबारमें आये और राजासे तमाशा देखने की प्रार्थना की। राजाने कहा—"अच्छा, अमुक दिन देखा जायगा।" नटनी बार-बार याद दिलाती रही और राजा बारबार-

टालता रहा। अन्त में नटनी ने वजीर से कहा—"अगर राजा साहब तमाशा न देखें, तो हम चले जायें, हमें खर्च खाते बहुत दिन हो गये।" यह सुन वजीर ने राजा से कहा—"महाराज! आप तमाशा देख लीजिये। हम लोग चन्दा करके नटको कुछ दे देंगे। अगर आप तमाशा न देखेंगे, तो बड़ी बदनामी होगी।" राजा इस बात पर राजी हो गया। तमाशा हुआ। तमाशा करते-करते जब दो घड़ी रात रह गई और राजा ने कुछ भी इनाम न दिया, तब नटनी ने नट से कहा—

रात घड़ी भर रह गई, थाके पिञ्जर आय।
कह नटनी सुन मालदेव, मधुरा ताल वजाय॥

नटनी की बात सुनकर नट ने कहा:—

वहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
कहे नाट सुन नायिका, तालमें भङ्ग न पाय॥

एक तपस्वी भी वहाँ तमाशा देख रहा था। उसने ये सवाल-जवाब सुनते ही नट को अपना कम्बल दे दिया, राजाके लड़के ने उसे अपनी हीरों की जड़ाऊ कड़ों की जोड़ी दे दी और राजकन्या ने अपने गले का हीरों का हार दे दिया।

राजा यह सब देखकर चकित हो गया। उसने सब से पहले तपस्वी से पूछा—"तुम्हारे पास यही एक कम्बल था। तुमने क्या समझकर उसे कम्बल दे दिया?" तपस्वी ने कहा—

"आपके ऐश्वर्य को देखकर मेरे मन में भोगों की वासना उठ खडी हुई थी, पर नट के दोहे से मेरा विचार बदल गया। मैंने उससे यह उपदेश ग्रहण किया कि, बहुत सी आयु तो तप में बीत गई, अब जो थोडी सी रह गई है, उसे भोगोंकी वासना में क्यों खराब करूँ? मुझे नट से उपदेश मिला, इससे मैंने अपना एकमात्र कम्बल-अपना सर्वस्व उसे दे दिया।"

इसके बाद राजा ने राजपुत्र से पूछा—"तुमने क्या समझ कर अपनी बेशक़ीमत कडोंकी जोडी उसे दे दी?" राजपुत्र ने कहा—"मैं बडा दुखी रहता हूँ, क्योंकि मुझे आप कुछ भी खर्च करने नहीं देते। दुखी होकर मैंने यह विचार कर रखा था कि, किसी दिन राजा को विष देकर मरवा दूँगा, पर इस नटके दोहेसे मुझे यह उपदेश हुआ है कि, राजा की बहुत सी आयु तो बीत गई, अब वह बूढा हो गया है, दो-चार बरस की बात और है, इस अर्से में वह आपही मर जायगा, अत. पितृहत्या क्यों की जाय? इसी उपदेश के बदले में मैंने नट को कडों की जोडी दे दी।"

फिर राजा ने राजकन्या से पूछा—"तुमने अपना क़ीमती हार नटको क्यों दिया?" कन्या ने कहा—मेरी जवानी आ गई है, आप खर्च के भय से मेरी शादी नहीं करते। कामदेव बडा बलवान है। कामकी प्रबलता के मारे, मेरा विचार वज़ीर के लडके के साथ निकल भागने का था, पर नट के दोहे से मुझे यह उपदेश मिला कि, राजा की बहुतसी आयु तो चली गई,

टालता रहा। अन्त में नटनी ने वजीर से कहा—"अगर राजा साहब तमाशा न देखें, तो हम चले जायें, हमें खर्च खाते बहुत दिन हो गये।" यह सुन वजीर ने राजा से कहा—"महाराज! आप तमाशा देख लीजिये। हम लोग चन्दा करके नटको कुछ दे देंगे। अगर आप तमाशा न देखेंगे, तो बडी बदनामी होगी।" राजा इस बात पर राजी हो गया। तमाशा हुआ। तमाशा करते-करते जब दो घडी रात रह गई और राजा ने कुछ भी इनाम न दिया, तब नटनी ने नट से कहा—

रात घड़ी भर रह गई, थाके पिञ्जर आय।
कह नटनी सुन मालदेव, मधुरा ताल बजाय॥

नटनी की बात सुनकर नट ने कहा—

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
कहे नाट सुन नायिका, तालमें भङ्ग न पाय॥

एक तपस्वी भी वहाँ तमाशा देख रहा था। उसने ये सवाल-जवाब सुनते ही नट को अपना कम्बल दे दिया, राजाके लडके ने उसे अपनी हीरों की जडाऊ कडों की जोडी दे दी और राजकन्या ने अपने गले का हीरों का हार दे दिया।

राजा यह सब देखकर चकित हो गया। उसने सब से पहले तपस्वी से पूछा—"तुम्हारे पास यही एक कम्बल था। तुमने क्या समझकर उसे कम्बल दे दिया?" तपस्वी ने कहा—

"आपके ऐश्वर्य को देखकर मेरे मन में भोगों की वासना उठ खड़ी हुई थी, पर नट के दोहे से मेरा विचार बदल गया। मैंने उससे यह उपदेश ग्रहण किया कि, बहुत सी आयु तो तप में बीत गई, अब जो थोड़ी सी रह गई है, उसे भोगोंकी वासना में क्यों खराब करूँ? मुझे नट से उपदेश मिला, इससे मैंने अपना एकमात्र कम्बल-अपना सर्वस्व उसे दे दिया।"

इसके बाद राजा ने राजपुत्र से पूछा—"तुमने क्या समझ कर अपनी बेशक़ीमत कड़ोंकी जोड़ी उसे दे दी?" राजपुत्र ने कहा—"मैं बड़ा दुखी रहता हूँ, क्योंकि मुझे आप कुछ भी खर्च करने नहीं देते। दुखी होकर मैंने यह विचार कर रखा था कि, किसी दिन राजा को विष देकर मरवा दूँगा, पर इस नटके दोहेसे मुझे यह उपदेश हुआ है कि, राजा की बहुत सी आयु तो बीत गई, अब वह बूढ़ा हो गया है, दो-चार वरस की बात और है, इस अर्से में वह आपही मर जायगा, अत पितृहत्या क्यों की जाय? इसी उपदेश के बदले में मैंने नट को कड़ों की जोड़ी दे दी।"

फिर राजा ने राजकन्या से पूछा—"तुमने अपना क़ीमती हार नटको क्यों दिया?" कन्या ने कहा—मेरी जवानी आ गई है, आप खर्च के भय से मेरी शादी नहीं करते। कामदेव बड़ा बलवान है। कामकी प्रबलता के मारे, मेरा विचार वज़ीर के लड़के के साथ निकल भागने का था, पर नट के दोहे से मुझे यह उपदेश मिला कि, राजा की बहुतसी आयु तो चली गई,

अब जो शेष रह गई है, वह भी बीतने ही वाली है। थोड़े दिनों के लिये, पिता के नाममें क्यों बट्टा लगाऊँ ? यह अनमोल उपदेश मुझे नटके दोहे से मिला, इसी से मैंने अपना बहुमूल्य हार उसे दे दिया। हे पिता ! नट के दोहेने आप की जान और इज्जत बचाई है, अत. आप को भी उसे कुछ इनाम देना चाहिये।" राजा ने सब बातें सोच-समझ कर नट को इनाम दे विदा किया। वज़ीर के लड़के के साथ कन्या की शादी कर दी। राजपुत्र को गद्दी देकर आप वैरागी हो गया और अपनी शेष रही आयु आत्मविचार में लगा दी। इसी तरह सभी संसारियोंको, अपनी शेष आयु सुकर्म और ब्रह्मविचार में लगा, जन्म-मरण से पीछा छुड़ा, नित्य सुख-शान्ति लाभ करनी चाहिये।

बाल-बच्चों का क्या किया जाय ?



प्रथम तो स्त्री-पुत्र प्रभृति आप के कोई नहीं, एक सराय के मुसाफिर के समान हैं। यहाँ आकर नाता जुड़ गया है। अपने-अपने टाइम पर सब अपनी-अपनी राह लगेंगे। इसके सिवा, ये आपसे सच्ची मुहब्बत भी नहीं करते। आपसे इनका काम निकलता है, पाप-पुण्यकी गठरी आप बाँधते हैं और सुख ये भोगते हैं, इसी से कोई आप को "बाबूजी", कोई "चाचा जी" और कोई "नानाजी" कहता है। अगर आप इनकी ज़रूरतों

या फरमायशोंको पूरी न करें, तो ये आपका नाम भी न लें। ऐसे स्वार्थी लोगों की मिथ्या प्रीतिके फेर में पड़कर, आप अपने अमूल्य और दुष्प्राप्य जीवन को क्यों नष्ट करते हैं ? जब आप इस देहको छोड़ कर परलोक में जायँगे, तब क्या ये आपके साथ जायँगे ? हरगिज नहीं। कोई पौली तक, और कोई श्मशान तक आपकी लाश के साथ जायँगे। वहाँ पहुँच, आप को जला-बला खाक कर सब भूल जायँगे।

आप भी मुसाफिर हैं और आप के स्त्री-पुत्र भी मुसाफिर हैं। आप को अगली सफर बड़ी लम्बी है। यह तो बीच का एक मुक़ाम है। कर्म-भोग भोगनेको आप यहाँ ठहर गये और कर्मवश ही इन सब से आपका मेल हो गया। ये अपनी सफर का प्रबन्ध करें चाहे न करें, पर आप तो अवश्य करें। इनके झूठे मोह में आप न भूलें। अगर आप बाल-बच्चों की रोटी और लपड़ों की फ़िक्र में लगे रहेंगे, तो, यह फ़िक्र तो अन्त तक लगी ही रहेगी और आप को ले जाने वाली गाड़ी या मौत आ जायगी। उस समय बड़ी कठिनाई होगी। जो लोग उम्र-भर ग्रहस्थी के झंझटों में लगे रहे, अन्तमें उनका बुरा ही हुआ। ये घर-झगड़े ही तो ईश्वर-दर्शन या स्वर्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति में बाधक हैं। महात्मा शेख़-सादी ने कहा है :—

ऐ गिरफ़्तारे पाये बन्दे अयाल।
दिगर आजादगी मबन्द खयाल॥

उत्पन्न होते ही, उन्होंने घर-गृहस्थी त्याग, वन की राह ली थी।

यह बात भी नहीं है कि, गृहस्थाश्रममें ज्ञान होता ही न हो। जनकादिक महात्मा गृहस्थाश्रममें ही ज्ञानी हुए थे। ज्ञानका कारण "वैराग्य" है। जो गृहस्थ होकर, सदैव, वैराग्य और विचार में मग्न रहता है, उसके ज्ञानी होने में सन्देह नहीं, पर जो सन्यासी होकर भी भोगोंमें राग रखता है, उसके अज्ञानी होने में संशय नहीं। "वैराग्य" ही आत्मज्ञान का साधन है। मनुष्य—ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या सन्यास—किसी आश्रम में क्यों न हो, बिना वैराग्यके ज्ञान नहीं और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं। जो पुरुष गृहस्थाश्रम में रह कर भी उसमें आसक्त नहीं होता, जल में कमल की तरह रहता है, उसकी मुक्ति में जरा भी सन्देह नहीं। एक दृष्टान्त इस मौक़े का हमें याद आया है, उससे पाठकों को अवश्य लाभ होगा :—

राजा जनक और शुकदेव जी।



एक बार व्यास जी ने शुकदेव जी से कहा कि, तुम राजा जनक के पास जाकर उपदेश लो। शुकदेव जी जनक के द्वार पर गये। भीतर ख़बर कराई, तो राजाने कहला भेजा कि, द्वार पर ठहरो। शुकदेव जी तीन दिन तक द्वार पर खड़े रहे, पर उन्हें क्रोध न आया। राजाने उनके क्रोध की परीक्षा करनेके लिये

को, उन्हें, तीन दिन तक, द्वार पर खडा रक्खा और चौथे दिन अपने पास बुलाया। वहाँ जाकर शुकदेव जी क्या देखते है कि, राजा जनक सोने के जडाऊ सिंहासन पर बैठे हैं, सुन्दरी नवयौवना स्त्रियाँ उनके चरण दाब रही हैं और कुछ मोरछल और पङ्खे कर रही हैं। जगह-जगह विषय-भोग या ऐश-आराम के सामान धरे हैं। सामनेही सुन्दरी नर्त्तकियाँ नाच कर रही हैं। यह हाल देखकर, शुकदेव जी के मन में राजाकी ओरसे घृणा हुई। उन्होंने मनमें कहा—"नाम बडे और दर्शन छोटे" वाली बात है। यह तो भोगों में आसक्त हैं, पिताजी ने इन्हें परम ज्ञानी क्यों कहा? राजा जनक शुकदेव जी के मन की बात ताड गये। दैवात, उसी समय मिथिला पुरी में जोरसे आग लग गई। बाहरसे दूत दौडे आये और कहने लगे—"महा राज। पुरी में आग लग गई है और राजद्वार तक आ पहुँची है।" शुकदेव जी मन में सोचने लगे कि, मेरा दण्ड-कमण्डल बाहर रक्खा है, कहीं वह न जल जाय। उस समय राजा ने कहा—

"अनन्तवत्तु मे वित्त यन्मे नास्ति हि किञ्चन
मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन।"

मेरा आत्मरूप-धन अनन्त है। उसका अन्त कदापि नहीं हो सकता। इस मिथिलाके जलने से तो मेरा कुछ भी नहीं जल सकता।

राजा जनक के इस वाक्य से पदार्थों में उनकी आसक्ति नहीं—अनासक्ति ही साबित होती है। अगर कोई मनुष्य, गृहस्थी में रह कर, स्त्री-पुत्र-धन प्रभृति में अनासक्त रहे, उनमें ममता न रक्खे, चाहे व्यवहार सब तरहके करे, वह सच्चा ज्ञानी है, उस की मोक्ष अवश्य होगी।

ममता ही दुःखों का कारण है। जिसकी किसी भी पदार्थ में ममता नहीं, उसे दुःख क्यों होने लगा ? उसकी ओर से वह पदार्थ मिले तो अच्छा, न मिले तो अच्छा, बचा रहे तो भला और नष्ट हो जाय तो भला। जिसकी जिस चीज़में ममता होती है, उसे उस चीज के नाश होने या उसके न मिलने से अवश्य दुःख होता है। कहा है :—

यस्मिन् वस्तूनि ममता मम तापस्तत्र तत्रैव।
यत्रैवाहमुदासे मुदा स्वभाव सन्तुष्ट ॥

जिस-जिस चीज में मनुष्य की ममता है, वहीं-वहीं दुःख है और जिस-जिस से उसे उदासीनता है, वही सन्तुष्टता है। मतलब यह कि, "ममता" ही दुःखों का मूल है। घर-गृहस्थी में रहो और गृहस्थी के सारे कार्य-व्यवहार करो, पर किसी भी पदार्थ में ममता मत रक्खो। तुम्हारी ओर से कोई मर जाय तो शोक नहीं, धन-दौलत नष्ट हो जाय तो रंज नहीं, आ जाय तो खुशी नहीं, इस तरह उदासीन-भाव रक्खो। अगर इस तरह गृहस्थी में रहो, तो तुम से बढकर ज्ञानी कौन है ? तुम्हें अवश्य मोक्ष-पद मिलेगा।

निर्मोही पुरुष ।



एक मनुष्य के एक ही लड़का था। लड़का जवान हो गया था। उसकी शादी भी हो गई थी। एक दिन पिता ने किसी उद्देश्य से ग्रामको एक सभा बुलानेका निमन्त्रण दिया। दैवयोग से, दोपहर को उसका पुत्र अचानक मर गया। उसने उस की लाश को बैठक में लिटा कर, ऊपर से कपड़ा उढ़ा दिया और आप द्वार पर बैठकर शान्त-भावसे हुक्का पीने लगा। इतने में सभा का समय हो गया, मित्र लोग आने लगे। उनमें से एक मित्र उसी बैठकमें किसी जरूरी कामसे गया। वहाँ एक लाश पड़ी देख, उसने बाहर आकर पूछा,—"यह क्या।"

उसने कहा—"भाई! लड़का मर गया है। पहले सभाका काम कर लें, तब सब मिल कर इसे श्मशान-घाट पर ले चलेंगे।" मित्र लोग उस निर्मोही पिताकी बात सुनकर चकित हो गये। उन्होंने कहा—"तुम तो अजब आदमी हो। तुम्हें अपने इकलौते जवान पुत्र का भी रञ्ज नहीं!" उसने कहा—"भाई! मेरा इसका क्या नाता? हम सब सराय के मुसाफिर हैं। पूर्वजन्म के कर्म-वश, एक दूसरे से मिल गये हैं। अपना-अपना समय होने से, अपनी-अपनी राह चले जा रहे हैं, इसमें रञ्ज या शोक की बात ही क्या है?" ऐसे ही मनुष्य, गृहस्थी में रहकर भी, जन्म-मरण के फन्दे से छूटकर, मोक्ष लाभ करते और जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

काम करो, पर मन को ईश्वर में रखो।

अगर भगवान् कृष्ण के कथनानुसार संसार के काम-धन्धे किये जाय, तोभी हर्ज नहीं, पर मन को संसारी पदार्थों या विषय-भोगों से हटाकर एकमात्र भगवान् में लगाना चाहिये। दुनियवी काम करते रहने और मन को भगवान् में लगाये रहने से सिद्धि मिल सकती है। महाकवि रहीम कहते हैं,—

दोहा।

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परी, काया भीजन नाहिं॥

सारा दारमदार मन पर है। व्यभिचारिणी स्त्री घर के धन्धे किया करती है, पर मन को हर क्षण अपने यार में रखती है। गाय जहाँ-तहाँ घास चरती-फिरती है, पर मन को अपने बच्चे में रखती है। स्त्रियाँ जब धान कूटती हैं, तब एक हाथसे मूसल चलाती हैं और दूसरे से ओखली के धानको ठीक करती जाती हैं। इसी बीच में यदि उनका बच्चा आ जाता है, तो उसे दूध भी पिलाती रहती हैं, किन्तु उनका ध्यान बराबर मूसल में ही रहता है। अगर ज़रा भी ध्यान टूटे, तो हाथके पलस्तर उड़ जायँ। इसी तरह मनुष्य, यदि संसार के काम-धन्धे करता हुआ भी, ईश्वर में मन लगाकर उसकी भक्ति करता रहे, तो कोई

हर्ज नहीं, उसे भगवत्-दर्शन अवश्य होंगे। यद्यपि इस तरह संसारमें रहकर सिद्धि लाभ करना—है बड़े शूरवीरों का काम, तोभी इस तरह अनेक गृहस्थ घर-गृहस्थी में रहते हुए भी, मोक्ष-पद पा गये हैं।

ईश्वर-प्राप्ति की सहज राह कौनसी है ?



गृहस्थीमें रहने की अपेक्षा, गृहस्थी त्याग कर, वनके एकान्त भाग में रहकर, भगवत् में मन लगाना अवश्य आसान है। गृहस्थी में रहने से मन विषय-भोगों की ओर दौड़ता ही है। स्त्री को देखनेसे काम जागता ही है, पर न देखनेसे मन नहीं चलता। पराशर ऋषि ने मत्स्यगन्धा देखी, तो उनका मन चलायमान हुआ। विश्वामित्र ने मेनका देखी, तो उनका मन बिगड़ा। शिव ने मोहिनी देखी, तो उनका मन चञ्चल हुआ। इसीलिये पहलेके अनेक महापुरुष अपने-अपने घर त्यागकर वन में चले गये और वहाँ उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई। पर वनमें जाकर भी, जो मन को विषयों में लगाये रहते हैं, ममता को नहीं त्यागते कामना को नहीं छोड़ते, वे गृहस्थों से भी बुरे हैं। वे धोबी के कुत्ते की तरह घर के न घाट के।



त्याग में ही सुख है ।

जो धन-दौलत, राजपाट, स्त्री-पुत्र प्रभृति को त्याग कर वन में रहते हैं, किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं रखते, यहाँ तक कि, खानेके लिये पाव भर आटेकी भी ज़रूरत नहीं रखते, जहाँ जगह पाते हैं वहीं पड़ रहते हैं; जो मिल जाता है, उसीसे पेट भर लेते हैं,—वे सचमुच ही सुखी हैं। शङ्कराचार्य्य महाराज ने "मोहमुद्गर" में कहा है—

सुरमन्दिरतरुमूलनिवास,
शय्याभूतलमजिनवास ।
सर्वपरिग्रहभोगत्याग,
कस्य सुखं न करोति विराग ॥

जो देवमन्दिर या पेड़ के नीचे पड़े रहते हैं, ज़मीन ही जिनकी चारपाई है, मृगछाला ही जिनका वस्त्र है, सारे विषय-भोग के सामान जिन्होंने त्याग दिये हैं, यानी वासना-रहित हो गये हैं,—ऐसे किन मनुष्यों को सुख नहीं है ? अर्थात् ऐसे त्यागी सदा सुखी हैं।

देह के नहीं, मन के वैराग्य से लाभ है।

अनेक लोग गेरुए कपड़े पहन लेते हैं, लम्बी-लम्बी मालायें

गले में डाल लेते हैं, तिलक-छापे या राख लगा लेते हैं, पर उनका मन सदा भोगों में लगा रहता है। वे शरीर को वैरागियों का सा बना लेते हैं, पर मन उनका भोगियों का सा रहता है, इसलिये उनका जन्म वृथा जाता है। आजकल साधु-संन्यासी बनना एक प्रकारका रोज़गार हो गया है। जिनसे किसी तरहकी मिहनत-मजदूरी नहीं होती, वे साधु-वेष बनाकर लोगों को ठगते और घर मनीआर्डर भेजते हैं। बहुत से ढोंगी नगरों में आकर बड़े आदमियों के यहाँ डेरे लगा देते हैं, चेले-चेलियोंसे भेंट लेते हैं, नवयौवना सुन्दरियोंको पास बैठाकर उपदेश देते हैं, अपने क़दमों में रुपये और अशर्फियों के ढेर लगवाते हैं। भला ऐसों का मन परमात्मा में लग सकता है? जब विश्वामित्र और पराशर जैसे, हवा और पानी पर गुजारा करनेवाले, मुनियों का मन स्त्रियोंको देखते ही चञ्चल हो गया, तब रबड़ी-मलाई और मावा-मोहनभोग उड़ाने वालोंका मन कैसे स्त्रियों पर न चलेगा? ऐसा कौन है, जिसका मन स्त्रियों ने खण्डित नहीं किया? कहा है—

कोऽर्थान प्राप्य न गर्वितो ?
विषयिण कस्यापदो नागता ?
स्त्रीभि कस्य न खण्डितं भुवि मन ?
को नाम राज्ञा प्रिय ?
क कालस्य न गोचरान्तरगत ?
को अर्थी गतो गौरव ?

को वा दुर्जन-वागुरा-निपतित
क्षेमेण यात. पुमान ?

किसे धन पाकर गर्व नहीं हुआ ? किस विषयी पर आपद नहीं आई ? पृथ्वी पर किसका मन नारी ने आकृष्ट नहीं किया ? कौन राजाओं का प्यारा हुआ ? कौन काल की नजर से बचा ? किस मँगते का गौरव हुआ ? कौन सज्जन दुष्टों के जाल में फँसकर कुशल से रहा ?

सन्यासियों को स्त्री-दर्शन भी मना है ।

धर्मशास्त्र मे लिखा है —

सम्भाषयेत् स्त्रिय नैव, पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासा, नो पश्येल्लिखितमपि ॥

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुन सेवेत्तु मैथुनम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठाया जायते कृमि ॥

यति को स्त्री से बात न करनी चाहिये, पहले की देखी हुई स्त्री की याद न करनी चाहिये तथा स्त्रियों की चर्चा भी न करनी चाहिये और स्त्री का चित्र भी न देखना चाहिये । जो सन्यासी होकर स्त्री के साथ मैथुन करता है, वह ६० हजार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है ।

और विषयों से मन को रोकना उतना कठिन नहीं, जितना कि स्त्री से रोकना कठिन है, इसीसे स्त्री का चित्र तक देखने की

मनाही की है। जो ढोंगी साधु-सन्यासी दुनियादारोंके घर आते और स्त्रियों में बैठे रहते हैं, उनको उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

ढोंगी साधुओं के लिये अमूल्य उपदेश।

बनावटी या ढोंगी साधुओं के सम्बन्ध में महात्मा तुलसीदासजीने कहा है —

तन को योगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय ॥१॥
जाके उर बर वासना, भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि विडम्बना, केहि विधि कथहि प्रमान ॥२॥
काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहि।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घर ही माहि ॥३॥
रामचरण परचे नहीं, बिन साधन पद-नेह।
मूँड मुडायो बादिही, भाँड भये तजि गेह ॥४॥
कीर सरस वाणी पढत, चाखत चाहत खाँड।
मन राखत वैराग महँ, घर में राखत राँड ॥५॥
जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहि काम।
तुलसी दोनों नहिं मिलें, रवि रजनी इक ठाम ॥६॥
तब लगि योगी जगत् गुरु, जब लगि रहै निरास।
जब आशा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥७॥

(१)

शरीर को योगी बहुत लोग करते हैं, पर मन को कोई विरला ही योगी करता है। अगर मन योगी हो जाता है, तो सहज में सिद्धि या मोक्ष मिल जाती है। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि, लोग भेष तो संन्यासी-महात्माओंकासा कर लेते हैं, पर मन उनका विषय-भोगों में लगा रहता है, इसलिये उन को कुछ भी लाभ नहीं होता,—सिद्धि नहीं मिलती। अगर वे लोग शरीर को चाहे गृहस्थोकासा रक्खें, उत्तम से उत्तम खाने खायँ, बढिया से बढिया कपडे पहनें, पर मन में स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, गाडी-घोडे, नाच-रङ्ग आदिकी वासना और ममता न रक्खें, तो उन्हें निश्चय ही सिद्धि मिल सकती है। मतलब यह कि, मनके योगी होनेसे सिद्धि मिलती है, कपडे रँगने, माथा मुँडाने और दण्ड-कमण्डल प्रभृति रखने से सिद्धि नही मिलती।

(२)

जिस के विशुद्ध हरि-भक्तिपूर्ण हृदय में काम, लोभ और मोह प्रभृति की वासना पैदा हो जाती है, वह अपनी वासना पूरी करने के लिये, नाना प्रकार के नीच कर्म करता है; फिर उसकी जो फज़ीती और बदनामी होती है। उसका यथार्थ रूप में वर्णन करना कठिन है। मतलब यह है कि, जिसके हृदय मे केवल एक भगवान् की वासना होती है, उस का हृदय श्रेष्ठ और विशुद्ध समझा जाता है। यदि उसके हृदयमें इसके सिवा—

भगवान्‌के अतिरिक्त और वासना उत्पन्न हो उठती है, उसका दिल धन-दौलत, स्त्री और राजपाट प्रभृति पर चलायमान हो जाता है, तो उसको संसारमें बड़ी बदनामी होती है। साराश यह कि, यदि कोई सन्यासी, यति या हरिभक्त विषयोंको त्याग कर फिर विषयोंके जालमें फँसता है, राड रखता है, इत्र फुलेल लगाता है, मलमल खासा पहनता है, और गद्दे तकियो पर आराम करता है, तो उस को वर्णनातीत अपकीर्त्ति होती है।

(२)

अगर कोई शख्स घर छोड कर और सन्यासी का भेष बना कर बन-बन फिरता है, पर उसका मन भगवान्‌में नही लगता, तो उसके घर छोड़ने और तकलीफ उठाने से कोई लाभ नहीं। वह वैरागी तो बन जाता है, भेष तो सन्यासियो का सा धर लेता है, पर उस का मन विषयो में लगा रहता है, इसलिये वह धोबीके कुत्ते की तरह घर और घाट कही का नही रहता लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो घरमें ही रहते हैं, पर सत्सग करते हैं, और हरि-यश सुनते हैं। वे सत्सङ्ग के प्रभाव और गुरु की दया से, विषयो से मनको हटाकर, ईश्वर के गुणगान करने लगते हैं। फिर, धीरे-धीरे उनकी भक्ति ईश्वरमें बढ जाती है और वे सच्चे भक्त हो जाते है। अनेक लोग घरमें ही रहकर इस तरह सिद्धि लाभ कर चुके हैं। सारांश यह, विषयोंसे मन खींच लेने वाला, ममता और वासना न रखने वाला गृहस्थ भला,

पर विषयो में मन रखने वाला, ममता और वासना को न त्यागने वाला त्यागी संन्यासी भला नही।

(४)

जिनका भगवान् के चरण-कमलों में सच्चा प्रेम नहीं है, जिनका हरिभक्ति के साधन--सन्तों के चरणों मे नेह नहीं है, जो महात्माओं की सङ्गति और पदवन्दना नहीं करते, वे वृथा ही घर छोड़, सिर मुँडा, भेष बदल कर भाँड हो गये हैं।

भाँड जिस तरह लोगों को रिझाने और रुपया कमाने के लिये अनेक प्रकार के स्वाङ्ग भरते है, उसी तरह आज-कल बहुतसे लोग रुपया कमाने और अपने तईं पुजवाने को संन्यासियो का सा भेष बनाते है। वे न तो भगवान्को जानते है और न उस के जानने के लिये महात्माओ की सङ्गति और उनकी सेवा ही करते है। उन्हें सिर मुँडाने, गेरुए कपडे पहनने और घर त्यागने से कोई लाभ नही।

(५)

कुछ लोग ऐसे होते है, जो घर-गृहस्थी मे रहते है और शरीरसे अपने कुल के व्यवहार करते है, पर मनको सब ओरसे खींच कर, ममताको त्याग कर, उसे परमात्मामें लगाते है। प्रह्लाद और अम्बरीष प्रभृति ऐसे ही भक्त हो गये है। कुछ ऐसे लोग होते है, जो तन और मन दोनोंसे ही ईश्वरकी भक्ति और उपासना करते हैं। नारद और शुकदेव की गणना ऐसो मे ही है।

इन्होंने घर त्यागकर हरिभक्ति की। कुछ ऐसे लोग होते हैं कि, जो लोगोंको रिझाने और हलवा-पूरी तथा खीर-खाँड उडाने के लिए, वेदान्त और पुराणोंको सीख लेते हैं और तोतेकी तरह मीठी-मीठी बातें बनाते हैं। सीधे-सादे भोंदू लोग उनकी बातो पर रीझ कर, उन्हें रबडी-मलाई और मोहन-भोग खिलाते हैं। इन मालों के खाने से जब कामदेव ज़ोर करता है, तब काम शान्ति के लिये, ये लोग इधर-उधर से व्यभिचारिणी दुष्टाओ को उडा लाकर घरमें रख लेते हैं। मनमें समझते हैं, हम वैराग्यवान् हैं और इस अभिमान में चूर भी रहते हैं। स्वय जगत् से पुजना चाहते हैं, पर आप घरमें रक्खी हुई रांड को पूजते हैं। ऐसो का मानव-जन्म वृथा नष्ट होता है।

(६)

जो कामी या स्त्री-लोलुप होते हैं, उनका मन भगवान मे नही लग सकता, पर जो सच्चे ईश्वर-भक्त होते हैं, वे विषय-भोग और स्त्रियों का नाम तक नहीं लेते। विषयी पुरुषो से हरि-भक्ति नही हो सकती और हरिभक्तों से स्त्री नही भोगी जा सकती। जिस तरह सूरज और रात अथवा दिन और रात एकत्र नहीं हो सकते, उसी तरह राम और काम दोनो एकत्र नहीं हो सकते। मतलब यह है, जिन्हे ईश्वर के दर्शन करने हों, जिन्हें परमपद या सिद्धि प्राप्त करनी हो, वे स्त्रियो के दर्शन, उनकी चर्चा और उनके चित्रों तक से बचें, क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति मे स्त्री एक खाई के समान है।

(७)

जब योगी के मन में आशा नहीं रहती, उसे किसी से कुछ चाहना नहीं रहती, तब योगी जगत्‌का गुरु होता है, लेकिन जब योगी के मन में आशा-तृष्णाका उदय होता है, जब योगी किसीसे कुछ चाहता है, तब योगी चेला हो जाता है और जगत् उसका गुरु हो जाता है, यानी जगत् उसकी निन्दा करता और उसे नसीहत देता है। मतलब यह, सच्चे योगियों को किसी भी पदार्थकी चाहना नहीं होती, अत: वे जगत्‌को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं, पर वासना या इच्छा रखनेवाले जगत् की खुशामद करते और इस तरह संसारी आदमियों से छोटे बनते हैं।

कोरा सन्यासी-भेष धारना, नरक के सामान करना है।



आजकल अनेक वेद-विरुद्ध काम करनेवाले, मनगढ़न्त मत चलानेवाले, झूठ बोलनेवाले, बगुला और बिलाव कीसी वृत्ति रखनेवाले फिरते हैं। गृहस्थों को चाहिये कि, उनकी बातों से भी सत्कार न करें। ठगों का सत्कार होने से ही ठग-साधु बढ़ रहे हैं। उनमें से कोई मूर्त्ति बनाकर पूजता और पुजवाता है। कोई अपने को कबीरपन्थी, कोई नानकपन्थी, कोई रामानुजी और कोई दादूपन्थी कहता है। इन पन्थोंसे कोई लाभ नहीं। जब तक 'आत्मज्ञान' नहीं होता, तब तक सिद्धि या मोक्ष

नही मिलती , अत मन को, सब तरफ से हटाकर, आत्म-चिन्तनमें लगाना चाहिये । ढोंग करनेसे मनुष्य-जन्म वृथा जाता है। काम तो सब यतियों के से किये जाते हैं, कष्ट भी उन्ही की तरह उठाये जाते हैं, पर परिणाममें मिलता कुछ भी नहीं। बिना आत्मज्ञान या ब्रह्मविचार के कल्याण नही होता। गृहस्थों को भी चाहिए कि, ऐसे ठगों का आदर-सम्मान न करें। ऐसे बनावटी साधु-सन्यासी आप नरक में जाते और अपने शिष्यों को भी नरक में घसीट ले जाते हैं।

किसी ने ठीक यही बात कविता में बडी खूबी से कही है :—

आत्मभेद बिन फिरें भटकते,
सब धोखे की टाटी में।
कोई धातु में ईश्वर मानत,
कोई पत्थर कोई माटी मे।
वृक्ष कोई जल में कोई,
कोई जङ्गल कोई घाटी मे।
कोई तुलसी रुद्राक्ष कोई,
कोई मुद्रा कोई लाठी में।
भगत कबीर कोई कह नानक,
कोई शकर परिपाटी में।
कोई नीमार्क रामानुज है,
कोई बल्लभ परिपाटी मे।

कोई दादू कोई गरीब दासी,
कोई गेरू रंग की छाटी में।
कहे "आज़ाद" भेष जो धारे,
चले नरक की भाटी में॥

सन्यासी एक जगह न रहे।



सन्यासी का मन किसी की प्रीति में न फँस जाय अथवा किसी से उसको मुहब्बत न हो जाय, इसलिये धर्मशास्त्र में सन्यासियों को एक दिन से जियादा एक गाँव में रहना तक मना लिखा है। कहा है'—

आबे दरिया बहे तो बेहतर,
इन्सॉं रवा रहे तो बेहतर।

पानी न बहे तो उसमें दुर्गन्ध आये।
खञ्जर न चले तो मोर्चा खाये॥

गिरिधर कवि कहते हैं —

कुण्डलिया।

(१)

बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग़ न लागे कोय।

दाग न लागे कोय, जगत से रहे अलहदा।
राग-द्वेष युग प्रेत, न चित को करें विच्छेदा।
कह "गिरिधर" कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होय न कहुँ आसक्त, यथा गङ्गा-जल वहता॥

(२)

रहनो सदा इकन्त को, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन श्रवण अद्वैत को, यही मतो है सन्त।
यही मतो है सन्त, तत्त्व को चितवन करनो।
प्रत्यक् ब्रह्म अभिन्न, सदा उर अन्तर धरनो।
कह "गिरिधर" कविराय, वचन दुर्जनको सहनो।
तज के जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो॥

संन्यासियों के कर्त्तव्य कर्म।

(यतिपञ्चक से)

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो,
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्त ।
विशोकमन्त करणे रमन्त,
कौपीनवंत खलु भाग्यवन्त ॥

२

मूलं तरो केवलमाश्रयन्त,
पाणिद्वय भोक्तुममन्त्रयन्त ।

कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयन्त ,
कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त ।

३

देहादिभाव परिवर्त्तयन्त.,
आत्मानमात्मन्यवलोकयन्त ।
नान्त न मध्य न बहिःस्मरन्त.,
कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त ॥

४

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्त ,
सुशान्त सर्वेन्द्रियतुष्टिमन्त ।
अहर्निशं ब्रह्मसुखे रमन्त ,
कौपीनवन्त. खलु भाग्यवन्त ॥

५

पञ्चाक्षर पावनमुच्चरन्त ,
पति पशूना हृदि भावयन्त ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्त ,
कौपीनवन्त खलु भाग्यवन्त ॥

भावार्थ ।

१

वेदान्त वाक्य या उपनिषदों में अथवा ब्रह्मविद्या में मन

लगाये रहने वाला, केवल भिक्षा के अन्न से सन्तुष्ट रहने वाला, मन को शोक-ताप शून्य करके सन्तुष्ट रहने वाला और कोपीन पहनने वाला योगी भाग्यवान् है।

केवल वृक्ष के मूल में आश्रय लेनेवाला, दोनो हाथो को भोजन के लिये न लगानेवाला, आत्मश्लाघा की तरह लक्ष्मी की निन्दा करनेवाला अर्थात् अपनी तारीफ और धन से दूर रहने वाला, एव कोपीन धारण करनेवाला योगी सुखी है।

(३)

सुखासक्ति—वासना को त्यागनेवाला, अपने स्वरूप मे औरो को देखनेवाला, अन्त, मध्य और पुत्रकलत्रादि को न याद करनेवाला एव कोपीन बाँधनेवाला यति भाग्यवान् है।

(४)

अपने आत्मा के ही आनन्द में मग्न रहनेवाला, आँख कान नाक जीभ प्रभृति इन्द्रियो के विषय-सुखो के त्यागने से सन्तुष्ट और आत्मसाक्षात्कार से खुश रहनेवाला एव दिन रात ब्रह्मके दर्शनों से पैदा हुए आनन्द में रमनेवाला तथा कोपीन पहनने वाला योगी सुखी है।

(५)

"शिवाय नम" इस पाँच अक्षर के, आत्मा को शुद्ध करने वाले, मंत्र का उच्चारण करनेवाला, हृदय में पशुपति शङ्कर की भावना करता हुआ, भिक्षान्न पर गुजारा करके, दिशाओं में घूमनेवाला और कोपीन धारण करनेवाला योगी भाग्यवान है।

यतिपञ्चकका फल ।

वास्तविक महापुरुष होने की इच्छा रखनेवालों को उपरोक्त "यतिपञ्चक" कण्ठाग्र कर लेना और इस पर अमल करना चाहिये, तब उन्हें निश्चय ही शान्ति और सिद्धि मिलेगी।

छप्पय ।

शतहि वर्ष की आयु, रात में बीतत आधे।
ताके आधे आध, वृद्ध बालकपन साधे।
रहे यहै दिन, आधि व्याधि गृहकाज समोये।
नाना विधि बकवाद करत, सबहिनको खोये।
जलकी तरग बुदबुद सहश, देह खेह ह्वै जात है।
सुख कहो कहाँ इन नरनकों, जासों फूलत गात है ॥१०७

107. The average longevity of a man is estimated at hundred years Half of it passes away in nights Of the remainder one portion is spent in childhood and another in old age What finally remains is led with hardship caused by disease and separation in other people's service etc Where is the happiness for living beings in a life which is as restless as the currents of water?

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं
यन्मुंचन्त्युपभोगकांचनधनान्येकांततो निःस्पृहाः ॥
न प्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्तावयम् ॥१०८॥

उन बुद्धिमान, निर्मल ज्ञानवाले, ब्रह्मज्ञानियों का कठिन व्रत देखकर हमें बड़ा विस्मय होता है, जो विषय भोग, धन दौलत, सोना चाँदी और स्त्री पुत्र प्रभृति को एकदम से त्याग देते हैं और फिर उनकी इच्छा नहीं रखते ॥१०८॥

सत् और असत् का विचार करनेवाले, देह और आत्माको अलग-अलग समझनेवाले, इस संसार को स्वप्नवत माननेवाले, इस जगत् की झूठी चमक-दमक पर मोहित न होनेवाले पुरुष "ज्ञानी" कहलाते हैं। जिनके सामनेसे माया का पर्दा हट जाता है, जिन्हें देहके नाशमान् और आत्मा के नित्य और अविनाशी होनेका ज्ञान हो जाता है, उन्हें परमात्मा दीखने लगता है। उन्हें परमात्माके ध्यानमें जो आनन्द आता है, उसकी बराबरी त्रिभुवनके सारे सुखैश्वर्य्य भी नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी इस जगत् से नाता क्यों जोड़ने लगे ? जब तक उन्हें ज्ञान नहीं होता, मायाका पर्दा उनकी आँखोंके सामने से नहीं हटता, शरीर और आत्माका भेद मालूम नहीं होता, तभी तक वे इस-संसारी जालमें फँसे रहते हैं, जहाँ उन्हें ज्ञान हुआ, और उन्होंने संसारकी असलियत समझी, तहाँ फौरन ही इसे छोड़ा। एकबार छोड़ कर, फिर इसकी इच्छा वे इसलिये नहीं करते, कि वे समझ-बूझ कर इसे छोड़ते हैं, ज़बर्दस्ती या किसीके बहकाने से अथवा दूकान्दारी के लिए तो वे इसे छोड़ते ही नहीं, जो उनको लालसा इस में बनी रहे।

जो लोग रुपया पैदा करने या पुजने के लिए घर-गृहस्थी

को छोडते है, उनका मन संसार के विषय-भोगो में लगा रहता है। वे न तो इधरके ही रहते हैं और न उधरके हो। वे "धोबी का कुत्ता घरका न घाट का" अथवा "खुदाही मिला न विसाले सनम" या "दुविधा में दोनो गये, माया मिली न राम" वाली कहावतो को चरितार्थ करते हैं। ऐसे कच्चे त्यागियो के सम्बन्ध में गोस्वामि तुलसीदास जी कहते हैं :—

इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों वघूर को पान॥

अर्थात् इधर तो वे अपना घरबार और स्त्री-पुत्र तथा अपने कुल के कामों को छोड बैठते हैं और उधर भगवान् को भी नहीं भजते। वे हवा के ववण्डर या भभूले में चक्कर खाने वाले पत्ते की तरह अधपर में ही चक्कर खाते रहते हैं।

अगर वे अपने घरमे ही रहते, तो अपने कुल-वर्णके अनुसार कर्म करते और महात्माओं की सगति तथा उनकी सेवा-टहल से ससार की असारता, अपने नातेदारों की स्वार्थपरता एव ईश्वर की महिमाका ज्ञान लाभ करके, ईश्वर की भक्ति करते हुए,प्रह्लाद, जनक और अम्बरीष प्रभृति की तरह, घर में रहकर ही, सिद्धि लाभ करते। नादान लोग, बिना पूर्ण वैराग्य और ज्ञानके, घर-गृहस्थीको छोडकर वनमें चले तो जाते हैं, पर उनकी वासना—ममता अपने घर वालों अथवा पराई स्त्रियों या धन-दौलत में बनी ही रहती हैं, इसलिये वे ससारियोकी निन्दाके भयसे लुक-

छिपकर विषयों को भोगते और परमात्मा में मन नहीं लगाते। इस तरह उनके लोक-परलोक दोनो बिगडते हैं—वे न तो संसारी सुख ही भोग सकते है और न स्वर्ग या मोक्ष ही लाभ कर सकते है। साराश यह, मनुष्य को संसार से पूरी विरक्ति होनेपर सन्यास लेना चाहिये और एक बार त्यागी बन कर फिर अत्यागी न बनना चाहिये। त्यागी होकर विषयों में लालसा रखने वाले महा नीच है। उनकी दोनों जहान में घोर दुर्गति होती है।

प्रत्येक मनुष्यको समझना चाहिये कि, यह ससार वास्तव में ही माया-जाल है। यहाँ कोई किसीका नही है। सब अपना-अपना मतलब गाँठते है। मतलब नही, तो कोई किसी का नही। तुलसीदासजी कहते हैं—

> तुलसी स्वारथके सगी, बिन स्वारथ कोई नाहि।
> सरस वृक्ष पक्षी बसें, निरस भये उड जाहि॥

सभी स्वार्थ के सगी हैं, बिना स्वार्थ कोई किसी का नही है। जबतक वृक्षमें फल रहते है, तभी तक पक्षी उस पर रहते हैं, जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि वे उसे छोडकर और जगह उड जाते है। यही हाल ससार का है। सब खडे दमका मेला है। सभी जीते जीके साथी हैं, मरतेही सारी मुहब्बत उड जाती है। जो स्त्री अर्द्धाङ्गी कहलाती है,जो पुरुषको अपना प्राणप्यारा कहती है, उसे गलेसे लगाती है और उसके लिये जान तक देनेको

तैयार रहती है, दम निकलतेही उससे डरने या भय खाने लगती है। अगर वह रोती भी है, तो अपने सुखों के लिए रोती है, उसके लिए नहीं रोती। और कुटुम्बी—माता-पिता बहिन भाई इत्यादि भी दम निकलतेही कहने लगते हैं,—"जल्दी उठाओ, अब घरमें रखना ठीक नहीं।"

इस मौके की एक कहानी हमें याद आई है। उसे हम पाठकों के उपकारार्थ नीचे लिखते हैं:—

सब जीते जीके साथी हैं।



एक सेठका लडका किसी महात्माके पास आया करता था। सेठको भय हुआ कि, कहीं पुत्र वैराग्य न ले ले, इसलिये उसने पुत्र-वधूसे कहला दिया कि, वह पुत्रको हर तरह से अपने वशमें कर ले, जिससे महात्माकी सगति छूट जाय। लडके की स्त्री उस दिन से उसकी सेवा-टहल औरभी ज़ियादा करने लगी, हावोंमें उसका मन रखने लगी। लडका जब घरसे वाहर जाता, तभी वह कहती—"आपका वियोग मुझसे सहा नहीं जाता। क्षण-भर मेंहो मेरे प्राण अकुलाने लगते हैं, अतः आप मुझे छोड कर कहीं न जाया करें।" लडके ने महात्मा के पास जाना कम जरूर कर दिया, पर कभी-कभी वह चला ही जाता था। एक दिन वह बहुत दिन बीच में टिकर पहुँचा। महात्माने कहा—

"भाई, आजकल तुम आते क्यों नहीं ?" उसने कहा—"मेरी स्त्री मुझे बहुत ही प्यार करती है। उसे मेरे बिना क्षण-भर भी कल नहीं पड़ती, इसीसे आना नहीं होता।" महात्माने कहा—"भाई! ये सब झूठी बातें हैं। संसार में कोई किसीको नहीं चाहता। अगर तुमको विश्वास न हो, तो परीक्षा कर लो।"

सेठके पुत्रने परीक्षा करना ही उचित समझा। महात्माने उसे प्राणायाम या साँस चढ़ाने की क्रिया सिखा दी। जब वह प्राणायाम की क्रिया में पक्का होगया, तब महात्मा ने कहा—"आज तू घर जाकर कहना कि, मेरे पेटमें बड़ा दर्द है। इसके बाद साँस चढ़ाकर पड़ जाना, पर पहले यह कह देना कि, यदि मेरी मृत्यु होजाय, तो अमुक महात्मा को बुलाये बिना मुझे मत जलाना।" लड़का घर पहुँचा और पेटके दर्दके मारे चिल्लाने लगा। कुछ देर बाद जमीन पर गिर पड़ा और माता-पितासे कहने लगा—"यदि मैं मर जाऊँ,तो बिना अमुक महात्मा को बुलाये और दिखाये मुझे मत जलाना।" इसके बाद उसने साँस चढ़ा लिया। घरवालों ने उसे देखा तो बोले—"अब इसमें दम नहीं, काठी-कफ़न लाओ और श्मशानकी तैयारी करो।" इतने में उसकी माँ बोली,—"पुत्रने अमुक महात्माको बुलानेको कहा था, इसलिये पहले उन्हें बुलवालो।" सेठने महात्मा के पास आदमी भेजा। वह तत्काल चले आये। उन्हें देखते ही सेठ बोला—"मैं मर जाऊँ तो हानि नहीं, पर मेरा पुत्र जी उठे, यही मेरी इच्छा है।" यही बात सेठानी और लड़के की स्त्री ने भी कही।

महात्माने कहा—"मैं एक पुडिया देता हूँ। तुममें से जो कोई इसे खा लेगा, वह मर जायगा और लडका जी उठेगा।" इस बातके सुनते ही, सब लगे बगलें झाँकने और बहाना करने। तब महात्मा ने कहा—"खैर, तुम सब नहीं खाते, तो मैं ही खा लेता हूँ।" यह कह, महात्माने पुडिया खा ली और क्रिया द्वारा लडके का साँस उतार, उसे होश में कर दिया। लडके ने सारा हाल सुना। सुनते ही उसे ससारी मुहब्बतका सच्चा हाल मालूम होगया और उसने घर छोड वैराग्य ले लिया। देखिये! कुटुम्बियो की प्रीति का चित्र महात्मा सुन्दरदासजी कैसी उमदगी के साथ खींचते हैं —

(१)

मात पिता युवती सुत बान्धव।
लागत है सब कूँ अति प्यारो॥
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत।
छोड़ नही हमते कहुँ न्यारो॥
देह-सनेह तहाँ लग जानहु!
बोलत है मुख शब्द उचारो॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब।
बेगि कहें घर बार निकारो॥

(२)

रूप भलो तबही लग दीसत।
जौं लग बोलत-चालत आगे॥

पीवत खात सुनै और देखत ।
सोइ रहै उठिके पुनि जागै ॥
मात पिता भइया मिलि बैठत ।
प्यार करै युवती गल लागै ॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब ।
देखत ताहि सबै डरि भागै ॥

मा, बाप, स्त्री, पुत्र और नातेदार सबको पुरुष बहुतही प्यारा लगता है। सब लोग उससे खूब मुहब्बत करते और चाहते हैं कि, यह हमसे अलग न हो। लेकिन यह देहकी मुहब्बत उसी समय तक है, जबतक कि प्राणी अच्छी तरह बोलता-चालता है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं,—जहां शरीरमेंसे चेतन-शक्ति—आत्मा निकल कर गई, कि वेही सब कहने लगते हैं—"इसे जल्दी घरसे बाहर निकालो।" जब तक प्राणी बोलता, चालता, खाता, पीता, सुनता और देखता है एव सोकर फिर जाग उठता है, तभी तक मा-बाप और भाई पास बैठते हैं और युवती गलेसे लगकर प्यार करती है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं,—ज्योंही चेतन-शक्ति शरीर से निकल कर बाहर गई कि, लोग उसे देखते ही डर कर भागने लगते हैं।

जिस ससारकी ऐसी गति है, जो निरा माया-जाल या गोरख-धन्धा है, जिसमें कुछ भी सार-तत्त्व नहीं है, जिसमें स्वार्थपरता या खुदगरज़ी कूट-कूट कर भरी है, उस पर मूर्ख ही लट्टू होते

है। जो दाना और समझदार है,वे उसके जालमें नहीं फँसते। अगर फँस भी जाते है, तो सबको छोड़-छाड़कर अलग हो जाते है। जितने विद्वान् और महात्मा हुए हैं, सभी ने कहा है— "इस ससार के साथ दिल मत लगाओ , इसके बनाने वाले के साथ दिल लगाओ। इसी में आपकी भलाई और आपका कल्याण है। उसकी शरण में जाने वाले के पास दु'ख और क्लेश नहीं फटकते। वह अपने शरणार्थी की सदा रक्षा करता है। कौरव-सभा में उसीने द्रौपदी की लाज रक्खी थी। जो उसे याद करता है, उसकी ख़बर वह अवश्य लेता है।" कहा है:—

जो तुमको सुमिरत जगदीशा, ताहि आपनो जानत ईशा।
अभिमानी से हो तुम दूरा, सतवादी के जीवनमूरा।
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हरशरण न एकौ बाधा॥

दोहा।

बडे विवेकी तजत हैं, सम्पत्ति सुत पितु मात।
कन्था और कोपीन हूँ, हम से तजो न जात॥१०८

108 How wonderful is the action of those wise in the knowledge of Brahma and pure of reason, who renounce altogether without any further desire to regain them the pleasures of life gold and all other objects of wealth! We neither possessed such things before, nor do we possess them now, nor is there any certainty of getting them hereafter, still we are unable to give up even the desire for obtaining them.

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥१०८॥

वृद्धावस्था भयङ्कर बाघिनी की तरह सामने खडी है। रोग शत्रुओं की तरह आक्रमण कर रहे हैं, आयु फूटे हुए घड़े के पानी की तरह निकली चली जा रही है। आश्चर्य्य की बात है, फिर भी लोग वही काम करते हैं, जिससे उनका अनिष्ट हो! ॥१०६॥

बुढ़ापा मौत का पेशख़ीमा है।



बुढ़ापा मौतका पेशख़ीमा या वकील "सिसरो" ज़िन्दगी के ड्रामा या नाटकका आख़िरी सीन है। इसीसे चतुर पुरुष बुढ़ापे को देखते ही समझ लेते हैं कि, मौत अब आने ही वाली है— हमारे जीवन-नाटक का अन्तिम पर्दा गिरने ही वाला है— हमारी ज़िन्दगी का अभिनय अब ख़तम होने ही वाला है। इसीसे अगर उन्होंने जवानी और बचपनके दिन वृथाके जञ्जालों में भी खोये हैं, तो बुढ़ापे में वे चेत जाते हैं और सब तजकर हर भजने लगते हैं, पर ऐसे समझदारों की संख्या बहुत थोड़ी है। ज़ियादा तादाद उन अज्ञानियोंकी है, जो बुढ़ापेको सामने देखकर भी दम और खाँसी के आक्रमण होने पर भी, घर-

वालों से तिरस्कृत होने पर भी, ससार की ममता नहीं छोड़ते। अनेक बूढ़े ठीक चला-चली के समय शादी-विवाह करते हैं, अनेक बेटे पोतोंको पालनामें लगे रहते हैं और अनेक धन बढ़ाने की चिन्ता में ही मशगूल रहते हैं। इन सब कामोंसे मनुष्योंका अनिष्ट साधन होता है। न तो उन्हें इस जन्म में ही क्षण-भर की शान्ति मिलती है और न मरने पर अगले जन्म में ही। ममता और कामना के कारण उन का संसार-बन्धन दृढ़ होता जाता है और वे बारबार मरते और जन्म लेते हैं तथा इस घोर दुःख को सुख समझते हैं। भगवान् जाने उन्हें इन घोर दुःखों को देख कर भी कैसे सन्तोष होता है? भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम्।
इति संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव। तव सन्तोष ?

जब तक जन्म ग्रहण करना है, तब तक मरना और माता के पेट में सोना है। ससार में यह दोष स्पष्ट है। हे मनुष्य! तुझे फिर भी इस जगत् से कैसे सन्तोष है?

रोज़ आँखों से देखते हैं, कि इस ससार में ज़रा भी सुख नहीं है। माता के पेट में प्राणी नौ महीने तक घोर नरक-कुण्ड में पड़ा-पड़ा सड़ता है। वहाँ परमात्मा से बारम्बार विनय करता है, कि मुझे इस नरकसे बाहर कीजिये। मैं बाहर जाते ही, केवल आपका भजन करूँगा, पर बाहर आते ही, वह सब भूल जाता

है। उसे अपने वादेका ध्यान भी नहीं रहता। बाल्यावस्था वह खेल-कूद या पढने-लिखने में गँवा देता है, तरुणावस्था में वह तरुणीके फन्दे में फँसा रहता है और बुढापे में नाती-पोतों और दोहितो का सुख देखना चाहता है। इसी तरह उसकी सारी उम्र बीत जाती है और जिस कामके लिये वह यहाँ आया था, वह काम अधूरा या बिना हुआ रह जाता है और समय पूरा होने पर, काल चोटी पकड कर ले जाता है। इसके बाद, वह फिर जन्म लेता और मरता है। इस तरह उसे ८४ लच योनियों में जन्म लेना पडता है, तब कही फिर ऐसा अवसर उसे मिलता है, यानी जन्म-मरण की फाँसी काटने वाली मनुष्य-देह मिलती है। अत. ज्ञानीको चाहिये कि, अपने मन को अपने अधीन करे, और एकाग्र चित्त से परमात्मा की उपासनामे लवलीन होजाय। इस दुर्लभ मनुष्य-देह को वृथा न गँवावे।

किसी कविने यही सब मोह-मदिरा का नशा उतारनेवाली और गफ़लत को दूर करने वाली बातें नीचेके भजनमें बडो ही खूबी से अदा की हैं.—

भजन (रागजंगला।)



पीले रे प्याला हो जा मतवाला, प्याला प्रेम हरीरसका रे ॥टेक॥
पाप पुण्य दोउ भुगतन आये, कौन तेरा और तू किसका रे।

जो दम जीवे प्रभुके गुण गाले, धन यौवन सुपना निशका रे ॥१॥

बाल अवस्था खेल गँवाई, तरुण भया नारी-वश का रे।
वृद्ध भया कफ बायने घेरा, खाट परा नहि जाय मसका रे ॥२॥

नाभ-कमल-विच है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे पशुका रे।
मन सतगुरु यों भरमत डोले, जैसे मिरग फिरै वन का रे ॥३॥

लख चौरासी से उवरा चाहे, छोड़ कामिनी का चसका रे।
प्रेम लगन "चरणदास" कहत हैं, नखसिख स्वास भरा विषका रे ४

बुढ़ापे में तो मोक्ष-रूपी सोना बना लो।



मनुष्यकी आयु फूटे घड़ेके जलकी तरह नित्य निकली चली जारही है। प्राणी हर क्षण कालके गालमें है। जबतक वह काल के गलेके नीचे नहीं उतारता, तभी तक खैर है। पर मजा यह कि, मनुष्य आप कालके गालमें है, तोभी विषयोंका पीछा नहीं छोड़ता। इसकी दशा उस मेंडक के समान है, जो साँप के मुँह में फँसा हुआ मच्छरों को मारनेकी चेष्टा करता था। मनुष्य नित्य देखता है कि, करोड़पति अरबपति और राजा महाराजा अपनी धन-दौलत को यहीं छोड़-छोड़ कर चले जा रहे हैं, पर फिर भी उसे होश नहीं होता! भला इस बेहोशी और गफ़लत का भी कोई ठिकाना है। बचपन और जवानीमें ही परमात्मासे प्रीति करनी चाहिये।

अगर उन अवस्थाओं में भूल हो गई हो, तो बुढापे में तो अवश्य ही सम्हल जाना चाहिये। यह काया पारसमणि है। यह इसलिये मिली है कि, इससे मोक्ष रूपी सोना बना लिया जाय। जो लोग देर करते हैं, अवधि बीतने पर, यह पारसमणि उनसे छीन ली जाती है और वे मोक्ष-रूपी सोना नहीं बना पाते, यानी मोक्ष-लाभ के उपाय करने के पहले ही काल उन्हे ले जाता है।

पारस पत्थर की वटिया।



एक महापुरुष के पास पारस-पत्थरकी वटिया थी। उन्होंने एक दरिद्र गृहस्थपर दयाकर, उसे वह वटिया दे दी और कह दिया कि, हम तीर्थ करने जाते है, १८ महीने बाद लौटेंगे, तब तक तुम इस वटियासे इच्छानुसार सोना बनाकर, अपना दारिद्र-दु ख दूर कर लेना। महात्मा चले गये। गृहस्थने बाज़ारमें जाकर लोहेका भाव पूछा। भाव मँहगा था, इसलिये सोचा कि, जब लोहा सस्ता होगा, लाकर झट सोना बना लूँगा। इस तरह १८ महीनोंमें जब दो चार दिन रह गये, तब वह लोहा गाड़ियो पर लदाकर लाया। विचार किया—"अब क्या देर है, झट सोना बना लेंगे।" उसे तो खयाल रहा नही और १८ वें मासका आखिरी दिन आगया। महात्मा भी आगये। उन्होंने आतेही अपनी पा-

रसमणि माँगी। गृहस्थने कहा—"मैं आज शामकोही आपकी बटिया दे दूँगा।" महात्माने कहा—"अब समय हो गया, एक क्षण भी बटिया तुम्हारे पास रह नहीं सकती।"महात्माने बटिया लेली। गृहस्थ रोता और हाथ मलता रह गया। यह दृष्टान्त है। दार्ष्टान्त यह है कि, समय पूरा हो जाने पर,'काल इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करता कि, किसीका काम हुआ है या नहीं, वह तो प्राणी को लेकर चलता बनता है, अतः समय रहते मोक्षका उपाय करना चाहिये। आग लगने पर कूआ खोदने से कोई लाभ नहीं। बुढापा या मौत का पेशखीमा आया देखकर भी होश न करना भारी नादानी है।

मनुष्यो! विषयों को छोडो और परलोक बनाने की फिक्र करो, क्योंकि काल तुम्हारे सिरों पर उसी तरह मँडरा रहा है, जिस तरह बाज़ चिड़िया की घात में मँडराया करता है। महात्मा सुन्दरदासजी ने खूब कहा है:—

(१)

तू अति गाफिल होइ रह्यो शठ,
कुञ्जर ज्यूँ कछु शङ्क न आनै।
साय नहीं तन में अपनो बल,
मत्त भयो विषया-सुख ठानै।
खोसत खात सबै दिन बीतत,
नीत अनीत कछु नहिं जानै।

"सुन्दर" केहरि काल महारिपु।
दन्त उखारि कुम्भस्थल भानै* ॥

अरे शठ! तू बहुत ही गाफिल और असावधान हो रहा है। हाथीकी तरह मनमें भय नहीं करता। तेरे शरीर में तेरा बल नहीं समाता। मतवाला होकर विषय-भोगों का आनन्द लूट रहा है। छीनते और खाते तेरे दिन बीते जारहे हैं। तू न्याय-अन्याय कुछ नहीं समझता। "सुन्दरदास" कहते हैं, घोर शत्रु कालरूपी सिंह तेरे दाँतों को उखाड कर तेरा कुम्भस्थल फाड डालेगा।

(२)

सन्त सदा उपदेश बतावत।
केश सबै सिर श्वेत भये हैं॥
तू ममता अजहुँ नहि छाँडत।
मौतहु आइ सन्देश दये हैं॥
आजु कि काल चलै उठि मूरख।
तेरे हि देखत केते गये हैं॥
"सुन्दर" क्यूं नहि राम सँभारत?।
या जगमें कहु कौन रहे हैं?॥

*इस कविता में मनुष्य को हाथी और मौत को सिंह माना है। सिंह जिस तरह हाथीके दाँत उखाड़ कर उसके कुम्भस्थलको चीर डालता है, उसी तरह काल सिंह मनुष्यको मार डालता है। (हाथी की पेशानी के ऊपरी भाग में, सामने ही, जो दो गोले होते हैं उन्हें "कुम्भस्थल" कहते हैं।

सन्त लोग सदा उपदेश देते हैं। तेरे सिर के बाल सफेद हो गये हैं, मौतने अपना सन्देशा भेज दिया है। अरे मूर्ख! आज या कल तू उठ जायगा। पर अफसोस! इतनी खबर पाने पर भी, तू होश नहीं करता और अब तक भी ममता नहीं छोड़ता। अरे शठ! तेरी आँखों-देखते-देखते कितने ही चले गये हैं, क्या तू यहाँ ही रहा आवेगा? इस जगत्में कौन रहा है? अब भी तू भगवान् को याद क्यों नहीं करता?

(२)

करत-करत धन्ध, कछु न जाने अन्ध।
आवत निकट दिन, आगले चपाकदै॥
जैसे बाज़ तीतर कुँ, दावत है अचानक।
जैसे बक मछरी कुँ, लीलत लपाकदै॥
जैसे मक्षिकाकी घात, मकरी करत आय।
जैसे साँप मूसक कुँ, ग्रसत गपाक दै॥
चेत रे अचेत नर, "सुन्दर" सँभार राम।
ऐसे तोहिं काल आय, लेइगो टपाक दै॥

अरे अन्धे! धन्धों में लगकर तुझे होश नहीं, तेरे अन्तिम दिन शीघ्र-शीघ्र नज़दीक आ रहे हैं। जिस तरह बाज़ अचानक आकर तीतर को दबा लेता है, जिस तरह बगुला मछली को चट से निगल जाता है, जिस तरह मकड़ी मक्खी की घात में

लगी रहती है, जिस तरह साँप चूहे को गप से गपक लेता है, उसी तरह काल तुझ पर झपट्टा मारना ही चाहता है। अरे गाफिल मनुष्य ! होश कर और भगवान् को याद कर।

(४)

मेरो देह, मेरो गेह, मेरो परिवार सब।
मेरो धन-माल, मैं तो बहु विधि भारो हूँ॥
मेरे सब सेवक, हुकाम कोउ मेटे नाहिं।
मेरी युवती को मैं तो अधिक पियारो हूँ॥
मेरो वंश ऊँचो, मेरे बाप-दादा ऐसे भये।
करत बडाई, मैं तो जगत-उजारो हूँ॥
"सुन्दर" कहत, मेरो-मेरो करि जाने शठ।
ऐसे नाहिं जाने, मैं तो काल ही को चारो हूँ॥

यह मेरी देह है, यह मेरा घर है, यह सब मेरा कुटुम्ब है, यह मेरा धन-माल है, मैं हर तरह से बडा आदमी हूँ। मेरे सब नौकर हैं, जो मेरी आज्ञाको उल्लङ्घन नही करते। मैं अपनी युवती का बहुत ही प्यारा हूँ, मेरा कुल और वंश ऊँचा है, मेरे बाप-दादा ऐसे नामी हुए, मैं जगत् का उजियारा हूँ, इस तरह मनुष्य अपनी बडाई करता और शेखी बघारता है। "सुन्दरदास" कहते हैं, शठ मेरा ही मेरा करता है, पर यह नहीं जानता कि, मैं स्वयं ही मौत का चारा हूँ।

(५)

माया जोरि जोरि, नर राखत जतन करि।
कहत है एक दिन, मेरे काम आइ है॥
तोहि तो मरत कछु, बेर नहि लागि शठ।
देखत-हि-देखत, बबूलासो बिलाइ है॥
धन तो धर्‍यो ही रहे, चलत न कौडी गहे।
रीते हाथन से जैसो आयो, तैसो जाइ है॥
करिले सुकृत, यह बेरिया न आवे फेरि।
"सुन्दर" कहत, नर पुनि पछिताइ है॥

मनुष्य धन जोड-जोड कर रखता है और कहता है कि, यह एक दिन मेरे काम आवेगा। अरे मूर्ख! तुझे तो मरते देर न लगेगी, देखते-देखते, पानी के बबूले की तरह, बिलाय जायगा। तेरा धन यहाँ का यही रक्खा रह जायगा, चलते समय कौडी भी तू साथ न ले जायगा, जिस तरह रीते हाथों आया था, उसी तरह खाली हाथो चला जायगा। अरे मूर्ख! परोपकार या धर्म-पुण्य कर ले, यह मौका फिर न मिलेगा। "सुन्दर दास" जी कहते है, अगर हमारी चेतावनी पर ध्यान न देगा, तो अन्त समय पछतावेगा।

किसी कविने मोह-निद्रा में सोनेवाले गाफ़िल को जगाने और उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ करने के लिये कैसा अच्छा भजन कहा है —

भजन

मूरख छाँड वृथा अभिमान ।।टेक।।
औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिन को महमान ।।
भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रुप तेज बलवान् ।
कौन बच्यो या काल बली से, मिट गये नामनिशान ।।१।।
धवल धाम धन गज रथ सेना, नारी चन्द्र-समान ।
अन्त समय सबही को तज के, जाय बसै समसान ।।२।।
तज सतसंग भ्रमत विषयनमें, जा विधि मर्कट-स्वान ।
क्षण-भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासों होत कल्यान ।।३।।
रे मन मूढ ! अन्त मत भटके, मेरो कह्यौ अब मान ।
"नारायण" ब्रजराज कुँवर से, बेगि करो पहचान ।।४।।

दोहा ।

कुपित सिंहनी ज्यों जरा, कुपित शत्रु ज्यों रोग ।
फूटे घट जल त्यों वयस, तऊ अहितयुत लोग ।।१०९।।

109. *Old age stands in front like a ferocious-looking she wolf Diseases attack the physical body like so many enemies Life is leaking away like water from a broken vessel Still it is strange that men go on doing what will bring them harm in the end !*

स्रजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।।
तदपि तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपंडिततावि‍धेः ।।

मनुष्य जैसे प्राणी का, क्षणभर में ही, बबूले की तरह विलाय जाना सब से अधिक खटकता है।

110 How painful is the lack of wisdom of Brahma, who creates man as a mine of all the good qualities, a gem among all creatures and the ornament of the universe, yet makes him perishable in a moment!

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्द-
ष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा
कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ १११ ॥

मनुष्य की वृद्धावस्था बडी खेदजनक है। इस अवस्था में शरीर सुकड जाता है, चाल मन्दी पड जाती है, दन्त-पंक्ति टूटकर गिर जाती है, दृष्टि नाश हो जाती है, बहरापन बढ जाता है, मुँह से लार टपकती है, बन्धुवर्ग बातों से भी सम्मान नहीं करते, स्त्री भी सेवा नहीं करती और पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥१११॥

बुढ़ापे का चित्र।

मनुष्य का बुढापा सचमुच ही दुखों की खान है। जिस तरह शत्रु घात लगाये रहते हैं और मौका पाते ही हमला करते हैं, वैसे ही रोग जवानी में तो दबे-छिपे पडे रहते हैं, पर



मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। शरीर काम नहीं देता, स्त्री सेवा नहीं करती—देखते ही आँखें निकालती है। पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं।

बुढापेकी चवाई देखतेही प्राणोपर चढ बैठते है। बुढापेमे शरीर निकम्मा हो जाता है, खाल झूलने लगती है, इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती है, आँखो से दिखाई नहीं देता, कानो से सुनाई नही देता, पैरो से चला नहीं जाता और दम चढा करता है। हर समय खो-खों लगी रहती है, दाँत अलग हो कष्ट देते और हिल-हिल कर प्राण लेते है। कोई कडी चीज खाई नहीं जाती। जरा भी कडी चीज़ दाँतों-तले आने से दम निकलने लगता है। जिस समय दन्त-पीडा के मारे माथा और कनपटी भन्नाने लगते है, तब मनुष्य मृत्यु को याद करने लगता है। दाँतो पर उस्ताद ज़ौक़ ने खूब कहा है,—

जिन दाँतो से हँसते थे हमेशा, खिल-खिल।
अब दर्द से है वही रुलाते, हिल-हिल।
पीरी में कहाँ, अब वह जवानी के मज़े।
ए ज़ौक़, बुढापे से है दाँता-किल-किल॥

जिन दाँतों से जवानी में खिल-खिला खिल-खिलाकर हँसा करते थे, अब बुढापे में वही हिल-हिल कर हमें रुलाते हैं। ऐ ज़ौक़। बुढापे में अब वह जवानी के मजे कहाँ है? अब तो इस बुढापे से दाँता-किल-किल है।

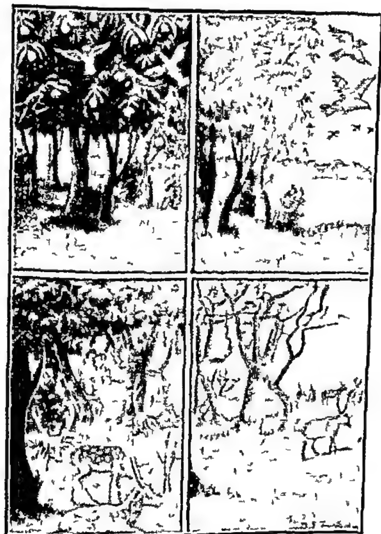
महाकवि नज़ीर अकबराबादी "बुढापे" का क्या ही अच्छा चित्र खींचते हैं —

और मोहन-भोग खिलाते, गरमागरम दूध पिलाते अथवा कोई और सुखसे खाये जाने-योग्य पदार्थ बना देते हैं, यदि पास पैसा नही होता, तो सभी घरवाले हर तरह से अनादर करते और सूखे टुकडे सामने रखते हैं, इच्छा हो बूढा खाय, इच्छा हो न खाय। अगर बूढे के पास धन होता है, तो स्त्री, पुत्र, पौत्र और पुत्री तथा पुत्र-वधुएँ हर समय बूढे की हाज़िरी में खडे रहते हैं, मुँह से बात नही निकलती और काम हो जाता है। अगर बूढेके पास धन नही होता, तो सब उसे त्याग देते हैं; क्योकि यह ससार मतलब का है, बिना स्वार्थ, बिना मतलब और बिना पैसे कोई बात नही करता। मतलब से ही एक दूसरे के नातेदार और सम्बन्धी बने हुए हैं, वर्ना कोई किसी का नहीं है।

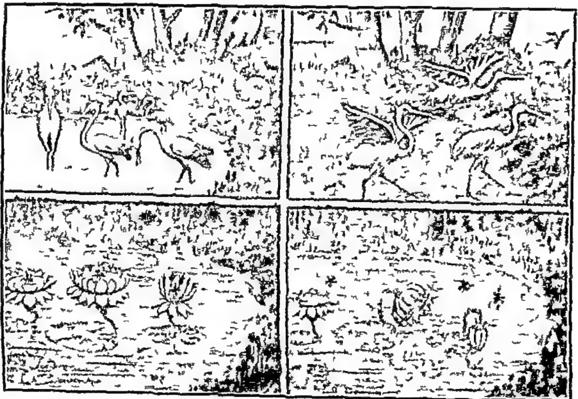
कहा है :—

वृक्ष क्षीणफल त्यजन्ति विहगा', शुष्कसर. सारसा ।
पुष्प पर्य्युषित त्यज्यन्ति मधुपा, दग्ध वनान्त' मृगाः ।
निर्द्रव्य पुरुष त्यजन्ति गणिका, भ्रष्टश्रियं मन्त्रिण ।
सर्व्वे कार्यवशात् जनोऽभिरमते, कस्याऽस्ति को वल्लभ ?॥

फलहीन वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं, सूखे तालाब को सारस छोड देते हैं, मधुहीन फूलो को भौंरे त्याग देते हैं, जले हुए वन को हिरन छोड देते हैं, धनहीन पुरुष को वेश्या त्याग देती है और श्रीहीन राजा को मन्त्री त्याग देते हैं। सब



सभी स्वार्थ के सगे हैं। स्वार्थ बिना कोई किसी का नहीं। देखिये, फलहीन वृक्षको पक्षी और जले हुए जंगल को हिरन त्याग रहे हैं। पृ० ४०० (शेष पुस्तपर देखिये।)



बगुले जल-हीन सरोवर को और भौंरे कमल-हीन तालाब को त्याग रहे हैं।

मतलब से एक दूसरे को चाहते हैं, नहीं तो कौन किसका प्यारा है?

"मोहमुद्गर" में लिखा है:—

यावद् वित्तोपार्जनशक्तः, तावत् निज परिवारो रक्तः।
तदनु च जरया जर्जर देहे, वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

जब तक धन कमाने की सामर्थ्य रहती है, तब तक कुटुम्ब के लोग राज़ी रहते हैं, इसके बाद, बुढापे से शरीर जर्जर होते ही, कोई बात तक नहीं पूछता।

संसार की यही धारा है। जिस पुत्रके लिये बचपनमें कहीं से धन लाते और उसे अच्छा खिलाते-पिलाते और पहनाते थे, इस तरह लाड-प्यार करते थे, पास पैसा न होनेपर भी, पढाने-लिखाने में अपनी शक्ति से अधिक खर्च करते थे, आप तंगी भोगते थे, पर पुत्र को तंगदस्त न होने देते थे, आप फटे कपडे पहने फिरते थे, पर उसे अच्छे से अच्छा पहनाते थे, अब वही पुत्र मुँह से नहीं बोलता, मौका पडने से वह या उसके पुत्र गालियाँ देते और कभी-कभी बूढे को मार तक बैठते हैं, पुत्रवधुयें दिन-भर तनतनाया करती और कहती हैं,—"ससुरजी मरें तो सकट कटे, दिन-भर पडे-पड़े खाते और थूक-थूक कर घर खराब करते हैं, हम से तो रोज़ की रोज़ मैला साफ नहीं होता।" बेटों की बहुएँ तो बहुएँ, खास अपनी अर्धाङ्गी देखते ही आँखें चढा लेती और खाँउँ-खाँउँ करती रहती है, बूढे पतिको आलिङ्गन

करना, उसकी सेवा करना तो दूर की बात है, उसे पास बैठाना भी बुरा समझती है। बीमारी में सेवा-शुश्रूषा करती-करती कहने लगती है—"अब तो तुम मर जाओ तो अच्छा हो। मुझ से यह सब अब नहीं होता।" कहाँ तक गिनावें, बुढ़ापे में ऐसे-ऐसे अनगिन्ती दुःख आ घेरते है, पर आश्चर्य तो यह है कि, इतने पर भी, अज्ञानियों का मोह नहीं छूटता। हमें एक मोहान्ध बूढ़े की कहानी याद आई है, उससे पाठकों को बहुत कुछ ज्ञान होगा—उनकी आँखें खुल जायँगी:—

एक बूढ़े सेठ की दुर्दशा।

किसी नगर में एक बूढ़ा सेठ रहता था। उसने जवानी में बहुत सा धन सञ्चय किया था। बुढ़ापे में, पुत्रों ने उससे सारा धन अपने हाथों में ले लिया। बूढ़े को पौली में, एक टूटी सी चारपाई पर, एक फटी-पुरानी गुदड़ी बिछाकर पटक दिया। एक लाठी उसके हाथमें दे दी और कह दिया कि, घरमें चोर-चकोर या कुत्ता-बिल्ली न आने पावें। सब घरके भोजन कर लेने पर, बचा-खुचा खाना एक फूटीसी थालीमें रखकर बहुएँ बूढ़ेको दे जातीं। कुछ दिन इस तरह गुजरे। पुत्र-बधुओं को यह भी अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—"ससुर जी के कारण निकलने-बैठने में बार-बार घूँघट करना होता है, इससे बड़ा कष्ट होता है। अच्छा हो,

यदि ये ऊपर के चौवारे में रख दिये जायँ और एक घण्टी इन्हें दे दी जाय। जब इन्हें किसी चीज की ज़रूरत होगी, यह घण्टी बजा देंगे।" कलियुगमें जोरू का हुक्म खुदा के हुक्म के बराबर समझा जाता है। बेटों ने अपनी घरवालियों की बात मञ्जूर कर ली और कह-सुन कर बूढ़े को ऊपर पहुँचा दिया और एक घण्टी उसे दे दी। बूढ़े को जब खाना या पानी वगैर की जरूरत होती, घण्टी बजा देता। कुछ दिनों बाद, एक दिन, बूढ़े का नाती ऊपर चला गया। बूढ़ा उसे खिलाता रहा। शेष में, वह खेलता-खेलता घण्टी ले आया। अब तो मुश्किल हो गई, बूढ़ा खाने-पीने बिना मर गया। २४ घण्टे बीतने पर किसीको उसकी याद आई। देखा, तो बूढ़ेराम कूच कर गये थे। पुत्रों ने उसे श्मशान पर लेजाकर जला दिया। बुढ़ापे में ऐसी ही दुर्गति होती है।

बुढ़ापे में ममता औरभी बढ़ जाती है।



एक बूढ़ा अपने मकान की पौली में पड़ा रहता था। कोई उसको बात न पूछता था। बेचारा ज्यों त्यों करके दिन काटता था। एक दिन उसका पोता उसे मारने और गाली देने लगा। बूढ़ा भी उसे गाली देने लगा। इतने में नारदजी उधर से आ निकले। उन्हों-ने बूढ़े से सारा हाल पूछा। उसकी दुर्दशाका हाल सुनकर, नारद

जीने उससे कहा—"तुम्हारा जीवन वृथा है। तुम या तो वनमें जाकर तप करो या हमारे साथ स्वर्ग को चलो।" सुनते ही बूढ़ा लाल हो गया और बोला—"महाराज! अपनी राह लीजिये। मेरे नाती-बेटे मुझे मारें चाहें गाली दें, आप काजी या मुल्ला? मैं इन्हीं मे खुश हूँ।" नारदजी संसार की मोह-ममता देखकर दङ्ग रह गये। बात यह है कि, अज्ञानी लोगों की तृष्णा और ममता बुढापे में औरभी बढ जाती है। वे हज़ारों तरह के कष्ट सहते और अपमानित होते हैं, पर गृहस्थाश्रम को नहीं त्यागते। इसी मिथ्या और स्वार्थपर ससार की हाय हाय में एक दिन मर जाते और ममता के कारण बार-बार जन्म लेते और मरते हैं। इस तरह उनके जन्म-मरणका चक्र घूमा ही करता है।

मोह त्यागने में ही भलाई है।

मोह—ममता ही ससार-बन्धन का कारण है। ज्ञानी समझते हैं कि, यहाँ कोई किसी का नहीं है। सभी सराय के मुसाफिर हैं। राह चलते-चलते एक जगह एकत्र होगये हैं। अपना-अपना समय होने पर, अपनी-अपनी राह लगते हैं। न कोई किसी की स्त्री है और न कोई किसीका पति है, न कोई किसीका पुत्र है और न पिता न कोई किसीका भतीजा है और न चाचा प्रभृति। स्वार्थ की जञ्जीर में सब बँधे हुए हैं।

फिर इन स्वार्थियों का साथ भी सदा-सर्व्वदा को नहीं। आज साथ है, तो कल अलग हो जायँगे। जन्म के साथ मृत्यु निश्चित है और सयोग के साथ वियोग अटल है। जब पुरुषका स्त्री से वियोग होता है, तब उस को बडा कष्ट और शोक होता है। इसी तरह पुत्र के मरने पर भी महा शोक होता है। पर जो ज्ञानी है, तत्ववेत्ता है, वे इस जगत्‌के नातों की असलियत को जानते है, अत., या तो वे गृहस्थी को तज देते है या कुटुम्बियों में रहते हुए भी उनमें मोह-ममता नहीं रखते। जो परिवार में रहते हुए भी, परिवार में मोह-ममता नहीं रखते, वे जीवन्मुक्त है। धन्य है ऐसे नररत्न! एक निर्मोही राजा की कहानी सुनने और ध्यान देने योग्य है —

निर्मोही राजा।



किसी नगरमें एक ज्ञानी राजा था। उसे सब निर्मोही कहते थे। एक दिन उसका राजकुमार वनमें शिकार खेलने गया। उसे प्यास ज़ोर से लगी। पानी की खोज में, वह एक मुनि के आश्रम में जा पहुँचा। मुनिने उसे जल पिलाया और पूछा—"आप किस के पुत्र हैं?" लडके ने कहा— "मैं निर्मोही राजा का पुत्र हूँ।" महात्माने कहा—"राज कुमार! एक ही मनुष्य निर्मोही भी हो और साथ ही राजा भी हो, यह नितान्त असम्भव है। जो राजा होगा, वह

निर्मोही न होगा और जो निर्मोही होगा, वह राजा न होगा।" राजकुमार ने कहा—"यदि आप को विश्वास नहीं आता, तो आप जाकर परीक्षा कर लीजिये।" मुनिने कहा—"अच्छा, हम नगर में जाते हैं। जब तक हम न लौटें, तब तक आप यहीं ठहरें।" यह कहकर मुनि महाराज नगर को चले गये और राज-भवन के द्वार पर जा पहुँचे। द्वार पर उन्हें एक दासी खड़ी मिली।

मुनिने दासी से कहा.—

॥ दोहा ॥

तू सुन चेरी श्याम की, बात सुनावौं तोहि ।
कुवर विनास्यौ सिंहने, आसन परयो मोहिं ॥

दासीने जवाब दिया —

॥ दोहा ॥

ना मैं चेरी श्याम की, नहिं कोई मेरो श्याम ।
प्रारब्धवश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥

इस के बाद ऋषि आगे चले, तो उन्हें राजकुमार की स्त्री मिली। उस से उन्होंने कहा :—

॥ दोहा ॥

तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवन वान ।
देवीवाहन दलमल्यौ, तुम्हरो श्रीभगवान् ॥

स्त्री ने जवाब दिया ।

॥ दोहा ॥

तपिया पूरब जनम की, क्या जानत है लोक ।
मिले कर्मवश आन हम, अब विधि कीन वियोग ॥

इस के बाद ऋषि ने राजकुमार की माता से मिलना चाहा । वे रानी के पास जा पहुँचे और उससे मिलकर उन्होंने कहा —

॥ दोहा ॥

रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना कियो, तिसी मृतकके काज ॥

रानीने जवाब दिया ‌:—

॥ दोहा ॥

एक वृक्ष डालें घनी, पछी बैठे आय ।
यह पाटी पीरी भई, उड उड चहुँ दिशि जायँ ॥

इस के बाद ऋषि राज-दरबार में गये और राजा से मिले । [मं]गल-प्रश्न होनेके बाद, ऋषि ने कहा —

॥ दोहा ॥

राजा मुखतें राम कहु, पल पल जात घडी ।
सुत खायो मृगराज ने, मेरे पास खडी ॥

राजा ने जवाब दिया ।

॥ दोहा ॥

तपिया तप क्यों छाँडियो, इहाँ पलक नहिं सोग ।
बासा जगत सराय का, सभी मुसाफिर लोग ॥

राजाका जवाब सुनते ही ऋषि को विश्वास हो गया कि, राजा ही नहीं, राजा और राजाका सारा कुटुम्ब निर्मोही है।

मनुष्य को प्रथम तो गृहस्थाश्रम में रहना ही नहीं चाहिये और यदि रहे भी, तो निर्मोही राजा की तरह मोह त्याग कर रहे। ममता त्याग कर गृहस्थी में रहने से, मनुष्य भवबन्धन में नही बँधता और ससार के दुःख-क्लेश उसे सन्तप्त नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी को जीवन्मुक्त कहते है।

पर हम देखते है कि, बुढापे में मनुष्य की आशा-तृष्णा औरभी बढ जाती है। बूढा रात-दिन अपने बेटे-पोतों और दोहितोंकी चिन्ता में ही मग्न रहता है। आप मरनेके किनारे बैठा रहता है, तोभी पुत्र-पौत्रों के लिये धन की चिन्ता किया करता है। उसे कम-से-कम इस चला-चली की अवस्था में तो परमात्मा का भजन करना चाहिये, पर बूढे से यह नही होता। शङ्कराचार्य कृत "मोहमुद्गर" में लिखा है —

बालस्तावत् क्रीडासक्त, तरुणस्तावत् तरुणीरक्त ।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्न,, परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्न ॥

वचपन में मनुष्य खेल-कूद में लगा रहता है, जवानी में युवती स्त्री में आसक्त रहता है और बुढापे में चिन्ता-फिक्रों में डूबा रहता है, लेकिन परम ब्रह्म की चिन्तना में कोई नही लगा रहता।

शोक चिन्ता करना वृथा है।

यह संसार मिथ्या और नाशमान् है। यहाँ कोई किसीका नही। फिर वृथा शोच फिक्रमें अपनी दुर्लभ मनुष्य-देहको नाश करना और जिस काम के लिये जगत् में आये हैं, उस काम की ओर ध्यान न देना, सचमुच ही भारी नादानी है। पुत्र मर गया तो क्या ? स्त्री मर गयी तो क्या ? धन चला गया तो क्या ? जिस तरह पुत्र-स्त्री या मित्र-यार प्रभृति चले गये, मर गये, उसी तरह हम भी एक दिन मर जायँगे, फिर शोच किस का ? यदि वे चले जाते और हम सदा बने रहते, तोभी शोच कर सकते थे, पर जब सभी को जाना है, तब कौन किसका शोच करे ? कहा है—

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्रा ब्रह्म-पुरन्दर-दिनकर-रुद्रा ।
न त्वं, नाहं, नायं लोकः, तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥

हिमालय और विन्ध्याचल प्रभृति पर्वत, सातों ...

इन्द्र, सूर्य और रुद्र सभी अनित्य और नाशमान् हैं। न तू, न मैं, और न यह लोक स्थायी है, तो फिर शोक किस लिये किया जाता है ?

मृत्यु से डरने और घबराने की ज़रूरत नहीं।



जबतक मनुष्यको शरीर और शरीरी अथवा देह और आत्मा के अलग-अलग होनेका ज्ञान नहीं होता, जबतक वह इस बात को नहीं समझता कि, आत्मा अमर, अविनाशी, नित्य और शाश्वत है, वह कभी नहीं मरता, उसे जल डुबा नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, हवा सोख नहीं सकती, तलवार बन्दूक प्रभृति मार नहीं सकती, तभी तक वह डरता और घबराता है। यह शरीर नाश होता है, आत्मा नहीं, मरना, एक कपडा उतारकर दूसरा पहनना है, शरीर आत्मा के ठहरनेकी धर्मशाला मात्र है, अगर यह धर्मशाला टूट जायगी, तो आत्मा दूसरी में जा रहेगा,—ऐसा ज्ञान होते ही, मनुष्य के मनमें भय और भावना नहीं रहती। दुःख-सुख का सम्बन्ध शरीर से है, आत्मा से नहीं, आत्मा को दुःख-सुख नहीं व्यापते, क्योंकि वह निराकार है,—ऐसा ज्ञान होते ही, दुःख आप-से-आप भाग जाते हैं—हां, मौत की याद हरदम रखनी चाहिये, क्योंकि मौत की याद रखने से पाप नहीं होते और परमात्मा की शरण में शान्ति

लाभ करना ही अच्छा मालूम होता है, पर मौतसे डरना कभी न चाहिये। जो शरीर और आत्मा में भेद नहीं समझते, वे ही मौत के नाम से काँप उठते हैं, किन्तु जो शरीर और आत्मा को जुदा-जुदा समझते हैं, जीवन में कभी पाप नहीं करते, सदा पराया भला करते और परमात्मा को हर क्षण याद करते हैं, वे हँसते-हँसते चोला छोड़ देते हैं। भीष्मपितामह कई दिनो तक शरशय्या पर लेटे रहे, उन्हें जरा भी कष्ट न मालूम हुआ। अन्तिम दिन उन्होंने, जगदीश की याद करते-करते, यह नश्वर चोला हँसते-हँसते त्याग दिया।

भीष्म पितामह आत्मतत्त्व को पूर्णतया जानने वाले थे। वे जानते थे कि, मैं पहले भी था, अब वर्त्तमान में भी हूँ और आगे भविष्य मे भी इसी तरह रहूँगा। शत्रु मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। हाँ, वे मेरी इस देहका नाश कर सकते हैं, पर देह के नाश होने से मेरी क्या हानि? इस देह के नाश होने पर, दूसरी देह इससे ताज़ा और नई मुझे मिलेगी। मेरा आत्मा नित्य और अविनाशी है, उसे नाश करने वाला जगत्में कोई भी नहीं। गीता में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥ २३॥

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ १७॥

मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार।
दाग दे मुझको, कहाँ है वह नार॥
गरम मुझको करे, कहाँ है वह पानी।
हवा में कब ताब, सुखाने की॥
मौत को मौत, न आयेगी।
क़सद मेरा, जो करके आयेगी॥

—·—

मौत का शोक दूर करने का नुसखा।



महात्मा बुद्ध के जमाने में, किसी स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र-शोक सब शोकों से भारी होता है, इसलिये वह स्त्री शोकाभिभूत होकर, महात्मा बुद्ध के पास गयी और उनसे लड़के के जिला देने की प्रार्थना की। महात्मा ने कहा—"जिस घर में कोई न मरा हो, उस घरसे थोड़ेसे राईके दाने ले आओ। अगर तुम वैसे दाने ले आईं, तो हम तुम्हारे पुत्र को ज़िन्दा कर देंगे।" वह स्त्री घर-घर पूछती फिरी; पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला, जिसमें मौत न हुई थी। अत वह वैरंग वापस आई और महात्मा से सारा हाल निवेदन कर दिया। सुनते ही महात्मा ने कहा—"मौत प्राणिमात्र के पीछे लगी हुई है, जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। यह ससार नाशमान् है। आगे पीछे सब को इस जगत् से चल

देना है। कोई सदा-सर्वदाके लिये यहाँ नहीं आया। इसलिये इसमें शोक को कोई बात नहीं। मूर्ख ही मरे हुए का शोच किया करते हैं, ज्ञानी नहीं। ज्ञानी जानते हैं कि, आत्मा अजर, अमर, अविनाशी और नित्य है, इसीसे वे शोच नहीं करते, किन्तु मूर्ख देहको आत्मा समझते हैं। इसीसे शोक करते हैं।" महात्मा का यह उपदेश सुनते ही, स्त्री का शोक दूर हो गया और उसे परम शान्ति लाभ हुई।

भगवान् की शरण में ही सुख है।



इस जगत् में मनुष्य को किसी अवस्था में भी सुख नहीं है। फिर बुढापा तो हर तरह दु खोंकी खानही है। अत मनुष्यको जवानी में ही, आगे आनेवाले बुढापेका खयाल करके, विषयों से मनको हटा लेना और परिवार वालोंसे नामको भी मोह न रखना चाहिये। समझदारको कमसे-कमजवानीके उतारमें तोघर-जञ्जाल त्याग, वनमें जा, परमात्माकी भक्ति और उपासना करनी चाहिये। मन बारम्बार दवाने और समझानेसे शान्तही जाता है और धीरे-धीरे रही-सही ममता भी छूट जाती है। अभ्यासके कारण, अन्तकाल में, भगवतमें ही मन रहनेसे, मनुष्य की मुक्ति भी हो जाती है, यानी आवागमनसे पीछा छूट जाता है। परब्रह्मकी शरणमें चलेजाने से जो आनन्द आता है, उसे लिखकर बता नहीं सकते।

मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार।
दाग दे मुझको, कहाँ है वह नार॥
गरम मुझको करे, कहाँ है वह पानी।
हवा में कब ताब, सुखाने की॥
मौत को मौत, न आयेगी।
क़सद मेरा, जो करके आयेगी॥

—:—

मौत का शोक दूर करने का नुसखा।



महात्मा बुद्ध के ज़माने में, किसी स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र-शोक सब शोकों से भारी होता है, इसलिये वह स्त्री शोकाभिभूत होकर, महात्मा बुद्ध के पास गयी और उनसे लड़के के जिला देने की प्रार्थना की। महात्मा ने कहा—"जिस घर में कोई न मरा हो, उस घरसे थोड़ेसे राईके दाने ले आओ। अगर तुम वैसे दाने ले आईं, तो हम तुम्हारे पुत्र को ज़िन्दा कर देंगे।" वह स्त्री घर-घर पूछती फिरी, पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला, जिसमें मौत न हुई थी। अतः वह बैरंग वापस आई और महात्मा से सारा हाल निवेदन कर दिया। सुनते ही महात्मा ने कहा—"मौत प्राणिमात्र के पीछे लगी हुई है, जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। यह संसार नाशमान् है। आगे पीछे सब को इस जगत् से चल

बुढ़ापे में तो जगदीश को याद करो।



बुढापा आ जाने पर भी, जो परलोक बनाने की सुध नहीं करते, स्त्री-पुत्रों की ममता मे पडकर, घर-गृहस्थी के जञ्जाल, में फँसकर उम्र पूरी कर देते हैं, उनकी भयङ्कर हानि और निन्दा होती है। कहा है.—

> मूर्खो द्विजाति स्थविरो गृहस्थ ।
> कामी दरिद्रो, धनवान तपस्वी॥
> वेश्या कुरूपा, नृपति कदर्य्य ।
> लोके पडेतानि विडम्बितानि॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढा गृहस्थ, दरिद्री कामी, धनवान तपस्वी, कुरूपा वेश्या, और स्वेच्छाचारी राजा—ये ६ अपना फज़ीता और लोक-निन्दा कराने वाले हैं।

जो बुढापे तक भी गर्भावस्था का किया इक़रार पूरा नहीं करते, उनको विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग पुरुष नहीं 'नपु सक' कहते हैं। उनको बारम्बार जन्म लेना और मरना होता है। अत बुढापे में तो मनुष्य को सब तज कर हर भजना और अपना परलोक सुधारना चाहिये।

देखिये, नीचे के चन्द भजनो में कैसे मद-मोह नाश करने वाले, गाफ़िलों की गफ़लत छुडाने वाले और सोतो को जगाने वाले उपदेश भरे पडे हैं —

खुलासा—बुढापे का चित्र देखकर, मौतको सिर पर मँडराती समझ कर, कुटुम्बियों का नाता झूठा समझ कर, विषय-वासनाओं को त्यागकर, पुत्र-कलत्र और धन-दौलतकी ममता छोडकर, वैराग्यमें मन लगाओ। अच्छा हो, यदि शरीरमें शक्ति-सामर्थ्य होते हुए, घरसे निकलकर वनमें जा बसो और सबसे नाता तोड, एकमात्र परमात्मासे नाता जोड लो। उसका नाता ही सच्चा नाता है, और सब नाते झूठे हैं। उसको शरण में चले जानेसे शोक-ताप सता नहीं सकते। भगवान् को भूलने सेही मनुष्य दुःख भोगता है और संसारी शत्रुओं से तंग रहता है, किन्तु जो भगवान् के चरण-कमलों में चला जाता है, उसका कोई अनिष्ट कर नहीं सकता, और शोक-ताप तो उससे हज़ार कोस दूर भागते हैं। याद रक्खो, परमात्माकी शरणमें चले जाने वाले से काल और यमराज तक भय खाते हैं और ऋद्धि सिद्धि तो उसके सामने हाथ बाँधे खडी रहती हैं। भगवान्ने कहा है:—

जो समीप आवै शरणाई।
राखौं ताहि प्राण की नाई॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं —
कोटि विघ्न सकट बिकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहीं कर सकें, जो सुदृष्टि रघुनाथ॥
राखनहारा साइयाँ, मारि न सकिहै कोय।
बाल न बंका कर सकें, जो जग बैरी होय॥

बुढ़ापे में तो जगदीश को याद करो।



बुढापा आ जाने पर भी, जो परलोक बनाने की सुध नही करते, स्त्री-पुत्रों की ममता में पडकर, घर-गृहस्थी के जञ्जाल, में फँसकर उम्र पूरी कर देते है, उनकी भयङ्कर हानि और निन्दा होती है। कहा है —

मूर्खों द्विजाति स्थविरो गृहस्थ ।
कामी दरिद्रो, धनवान तपस्वी॥
वेश्या कुरूपा, नृपति कदर्य्य ।
लोके षडेतानि विडम्बितानि॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढा गृहस्थ, दरिद्री कामी, धनवान तपस्वी, कुरूपा वेश्या, और स्वेच्छाचारी राजा—ये ६ अपना फ़ज़ीता और लोक-निन्दा कराने वाले हैं।

जो बुढापे तक भी गर्भावस्था का किया इक़रार पूरा नहीं करते, उनको विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग पुरुष नही 'नपुसक' कहते है। उनको बारम्बार जन्म लेना और मरना होता है। अत बुढापे में तो मनुष्य को सब तज कर हर भजना और अपना परलोक सुधारना चाहिये।

देखिये, नीचे के चन्द भजनों में कैसे मद-मोह नाश करने वाले, गाफ़िलो की गफ़लत छुडाने वाले और सोतों को जगाने वाले उपदेश भरे पडे हैं —

खुलासा—बुढ़ापे का चित्र देखकर, मौतको सिर पर मँडराती समझ कर, कुटुम्बियों का नाता झूठा समझ कर, विषय-वासनाओं को त्यागकर, पुत्र-कलत्र और धन-दौलतकी ममता छोड़कर, वैराग्यमें मन लगाओ। अच्छा हो, यदि शरीरमें शक्ति-सामर्थ्य होते हुए, घरसे निकलकर वनमें जा बसो और सबसे नाता तोड़, एकमात्र परमात्मासे नाता जोड़ लो। उसका नाता ही सच्चा नाता है, और सब नाते झूठे हैं। उसको शरण में चले जानेसे शोक-ताप सता नहीं सकते। भगवान् को भूलने सेही मनुष्य दुःख भोगता है और संसारी शत्रुओं से तंग रहता है, किन्तु जो भगवान् के चरण-कमलों में चला जाता है, उसका कोई अनिष्ट कर नहीं सकता, और शोक-ताप तो उससे हज़ार कोस दूर भागते हैं। याद रक्खो, परमात्माकी शरणमें चले जाने वाले से काल और यमराज तक भय खाते हैं और ऋद्धि सिद्धि तो उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। भगवान्ने कहा है:—

जो समीप आवै शरणाई।
राखौं ताहि प्राण की नाई॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं —

कोटि विघ्न संकट विकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहीं कर सकें, जो सुदृष्टि रघुनाथ॥
राखनहारा साइयाँ, मारि न सकिहै कोय।
बाल न बका कर सकै, जो जग बैरी होय॥

बुढ़ापे में तो जगदीश को याद करो।



बुढापा आ जाने पर भी, जो परलोक बनाने की सुध नही करते, स्त्री-पुत्रो की ममता में पडकर, घर-गृहस्थी के जञ्जाल, में फँसकर उम्र पूरी कर देते है, उनकी भयङ्कर हानि और निन्दा होती है। कहा है,—

मूर्खो द्विजाति स्थविरो गृहस्थ ।
कामी दरिद्रो, धनवान तपस्वी ॥
वेश्या कुरूपा, नृपति कदर्य्य ।
लोके षडेतानि विडम्बितानि ॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढा गृहस्थ, दरिद्री कामी, धनवान तपस्वी, कुरूपा वेश्या, और स्वेच्छाचारी राजा—ये ६ अपना फज़ीता और लोक निन्दा कराने वाले है।

जो बुढापे तक भी गर्भावस्था का किया इक़रार पूरा नही करते, उनको विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग पुरुष नहीं 'नपु सक' कहते है। उनको बारम्बार जन्म लेना और मरना होता है। अत बुढापे में तो मनुष्य को सब तज कर हर भजना और अपना परलोक सुधारना चाहिये।

देखिये, नीचे के चन्द भजनों में कैसे मद-मोह नाश करने वाले, गाफिलों की गफ़लत छुडाने वाले और सोतों को जगाने वाले उपदेश भरे पड़े हैं —

भजन (राग रेखता ।)

जो तू प्रभु-नाम से अपने, मुहब्बत दिल बढ़ावेगा।
कहा मेरा मान ले प्यारे, फिर आवेगा न जावेगा ॥१॥
जन्म और मरण दुख-दोजख, तुझे हरगिज़ न छावेगा।
वही प्रभु-नाम तुझको, सब अज़ाबों से बचावेगा ॥२॥
रहेगा याद में हरदम, कदम खादिम कहावेगा।
यहाँ वहाँ—दो जहानों में, तुझे शाबाश दिलावेगा ॥३॥
समझ मक़बूल जब तुझको, सभी कोई सर नवावेगा।
डरेगा काल भी तुझ से, न जम ज़ालिम सतावेगा ॥४॥
बचेगा गजब गालिब से, नहीं गम गैब लावेगा।
मिटेगा खौफ़ का खतरा, खुशामद खुद करावेगा ॥५॥
हुकम जो मुर्शद "विद्यादास" का, दर अमल लावेगा।
मिलेगा मोहन प्यारे से, शुभा मिट सुख समावेगा ॥६॥

भजन (गज़ल ।)

ऐ दिल ! क्यों हिर्स करता है, तुझे संसार क्या करना।
सदा जंगल में रहना है, तुझे घर बार क्या करना ॥१॥
रहा मालो-मकाँ किसका, जो रहवेगा तेरा बाकी।
यहाँ दो दिन का जीना है, तुझे शृङ्गार क्या करना ॥२॥

हजारों नामवर गुजरे, नहीं जिनका निशाँ बाकी।
ये सब दो दिनकी दुनियाँ हैं, तुझे जर तार क्या करना ॥३॥

उठा ले हाथ तू सबसे, खुदा से दिल लगा अपना।
तुझे ये लाल याकूतों के, गजरे हार क्या करना ॥४॥

वतन जागीर को लेकर, करेगा क्या बता तो दिल।
लहद को याद कर अपनी, तुझे गुलजार क्या करना ॥५॥

ये सब दो दिन के साथी हैं, तेरे माँ बाप और भाई।
जो मुश्किलमें नहीं साथी, उन्हें फिर प्यार क्या करना ॥६॥

कुजा रुस्तम कुजा हातिम, कुजा लुकमाँ कुजा दारा।
हमा दर खाक शुद पिनहाँ, तुझे इजहार क्या करना ॥७॥

महल किसका मकाँ किसका, किधर और जगह है तेरी।
तू खुद हुशियार है ऐ दिल! तुझे हुशियार क्या करना ॥८॥

दिल अपना इश्क में माबूद के, रंग ले बहुत पक्का।
तुझे ये रंग रेजीये, गुले अनार क्या करना ॥९॥

छप्पय।

भयो सकुचित गात दन्तहु उखरि परे [illegible]।
आँखिन दीखत नाहिं, बदन ते लार परत [illegible]।
भई चाल बेचाल, हाल बेहाल भयो [illegible]।
बचन न मानत बन्धु, नारिहु तजी [illegible]।

यह कष्ट महा ादय वृद्धपन, कछु मुख सों नाहिं कहि सकत।
निज पुत्र अनादर कर कहत, यह बूढो योंही बकत???

111 *How pitiable is the old age of a man, when his limbs begin to contract, his gait becomes feeble, the rows of teeth are broken off, the eye-sight is gone, deafness is on the increase, the mouth begins to give water, the relatives do not show respect even by word, the wife ceases to serve and even the sons become unfriendly*

क्षण बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिक:
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमंडिततनुर्नरः
संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ११२ ॥

मनुष्य नाटक के ऐक्टर के समान है , जो क्षणभर में बालक, क्षण-भर में युवा और कामी रसिया बन जाता है तथा क्षण मे दरिद्र और क्षणमें धनैश्वर्य्य पूर्ण हो जाता है। अन्त में बुढापे से जीर्ण और सुकडी हुई खाल का रूप दिखाकर, यमराज के नगर की ओट में, छिप जाता है ॥११२॥

महाराज भर्तृहरि जी ने मनुष्य का नाटक के स्टेज-ऐक्टरसे खूबही अच्छा मिलान किया है। सचमुच ही मनुष्य नाटक के ऐक्टर का साही काम करता है

फ़क़ीर, कभी साधु, कभी असाधु तथा कभी रोगी और निरोगी, त्यागी और अत्यागी, भोगी और योगी, गृहस्थ और सन्यासी बन कर, तरह-तरह के तमाशे दिखाता और शेष में नाटक के पर्दे के पीछे छिप जाता है, उसी तरह मनुष्य बालक और जवान, धनी और निर्धन प्रभृतिके स्वांग भर और दिखाकर, अन्तमें जीवन-नाटकका आखिरी सीन—बुढापेका रूप—दिखा कर, यमपुरी-रूपी पर्दे की ओट में जाकर छिप जाता है, यानी इस दुनिया से कूच कर जाता है।

छप्पय ।

छिन मे बालक होत, होत छिनही में यौवन ।
छिन ही में धनवन्त, होत छिन ही में निर्धन ।
होत छिनक मे वृद्ध, देह जर्जरता पावत ।
नट ज्यों पलटत अंग, स्वांग नित नये दिखावत ।
यह जीव नाच नाना रचत, निचल्यो रहत न एकदम ।
करके कनात संसारकी, कौतुक निरखत रहत यम ॥११२॥

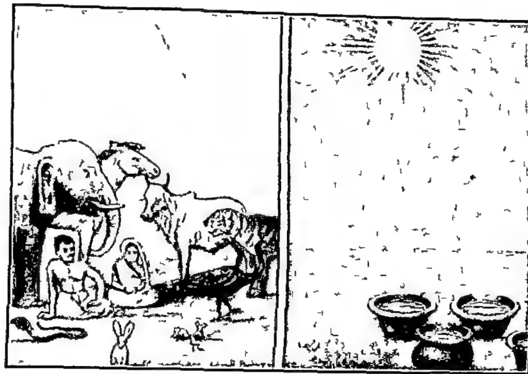
112 A man is like a stage actor He is a child for a short space of time and then becomes young enjoying lustful pursuits In one moment he is poor and in another the possessor of great wealth and power Ultimately with limbs worn out with old age and a body covered all over with wrinkles he makes his exit entering the metropolis of the god of Death

(अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ॥
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयनेवा दृषदि वा ॥

वह न किसीको अपना समझता है, न पराया। इस समय ही उसे स्त्री और पुरुष, दोस्त और दुश्मन, सर्प और पुष्प-हार, सोना और मिट्टी प्रभृति में कोई फर्क़ नहीं मालूम होता। इस अवस्था में, उसके अन्तःकरण से दुःखो का घटाटोप दूर होकर, परमानन्द की प्राप्ति होती है। उस समय जो आनन्द होता है, उसको क़लम से लिखकर बताना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

समस्त जगत् मे एक ही आत्मा व्यापक है ?

बेशक, सारे जगत् में एक ही चेतन आत्मा है। जिस तरह गुलाब-जल से भरे घड़े में, गङ्गाजल से भरे घडे में, मूत्र से भरे घड़े में और शराब से भरे घडे में एक ही सूर्य्य का प्रतिबिम्ब—अक्स पडता है, सबमें एकही सूर्य दीखता है, उसी तरह मनुष्य, पशु-पक्षी और मगर-मच्छ प्रभृति जगत्‌के सभी प्राणियों में एक ही चेतन ब्रह्म का प्रतिबिम्ब या प्रकाश है। अलग-अलग प्रकार के शरीरो या उपाधियों के कारण, सब में एक ही आत्मा होने पर भी, अलग-अलग आत्मा दीखते है। लेकिन भिन्न-भिन्न शरीरो में भिन्न-भिन्न आत्माओं का होना, अज्ञानियो को ही मालूम होता है, किन्तु जो तत्त्ववेता और पूर्ण ज्ञानी हैं अथवा जो आत्मतत्त्व को तह तक पहुँच गये हैं, उन्हें सभी शरीरों में एकही आत्मा दीखता है। वे समझते है कि, जो



जिस तरह गुलाबजल, गंगाजल, शराब और मूत्र के घड़े में एक ही सूर्य का अक्स पड़ता है, उसी तरह मनुष्य और पशु-पक्षी सब में एक ही ब्रह्म का

आत्मा इस में है, वही समस्त जगत् और जगत् के प्राणियों में है। बकरी के शरीर में जो आत्मा है, वह बकरी, हाथी के शरीर में जो आत्मा है, वह हाथी और मनुष्य के शरीर में जो आत्मा है, वह मनुष्य कहलाता है। जिन-जिन शरीरों में आत्मा प्रवेश कर गया है, उन्हीं-उन्हीं शरीरों के नाम से वह पुकारा जाता है। शरीरों या उपाधियों का भेद है, आत्मा में कोई भेद नहीं। नदी, तालाब, झील, बावड़ी झरना, सोता और कूआँ—इन सब में एक ही जल है, पर नाम अलग-अलग है। दीपक, मशाल, चिराग और अग्नि सबमें एकही अग्नि है, पर नाम अलग-अलग हैं। एक लोहे के डण्डे पर कपड़ा लपेट कर जो अग्नि जलाई जाती है, उसे मशाल कहते हैं और एक मिट्टीके दीवलेमें जो अग्नि जलती है,उसे दीपक कहते हैं। पृथ्वी एक ही है, पर उसके नाम अलग-अलग हैं। किसी को नगर, किसी को गाँव, किसी को ढानी और किसी को घर कहते हैं, पर है तो सब धरती ही। ताना और बाना एक ही सूत के दो नाम हैं, पर हैं दोनों में ही सूत। वन एकही है, उसमें अनेक वृक्ष हैं और उनके नाम तथा जातियाँ अलग-अलग हैं। बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज होता है, अत बीज वृक्ष है और वृक्ष बीज है। दोनों एक ही हैं, पर नाम अलग-अलग हैं। बापसे बेटा पैदा होता है, अत बाप में और बेटे में एकही आत्मा है,अतएव बाप बेटा है और बेटा बाप है। बहुत कहना-समझाना वृथा है। निश्चय ही सब में एक ही चेतन

आत्मा है, पर भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों के कारण नाम अलग-अलग हैं। भ्रम के कारण, मनुष्य को असल बात समझ नहीं पडती। मृगमरीचिका में जल नहीं है, पर भ्रमवश मनुष्य को जल दीख पडता है और वह कपडे उतार कर तैरने को तैयार हो जाता है। रस्सी रस्सी है, साँप नहीं, पर अँधेरे में वही रस्सी साँप सी दीखती है और मनुष्य डर कर उछलता और भागता है। इसी तरह जब तक मनुष्य के हृदय में अज्ञान रूपी अन्धकार रहता है, उसे और का और दीखता है। देह और आत्मा अलग-अलग है। देह नाशमान् और आत्मा अविनाशी है, पर अज्ञानी को, जिस के दिल में अँधेरा है, देह और आत्मा एक मालूम होते हैं तथा शरीर और आत्मा दोनो ही नाशमान् जान पडते हैं। इसी तरह सब जगत् में एक ब्रह्म व्यापक है—शरीर-शरीरमें एक ही चेतन आत्मा है, पर अज्ञानी सब प्राणियोंमें एक ही आत्मा नहीं मानता है। अज्ञान-अन्धकार के मारे, वह इस बात को नही समझता, कि मुझमें, ऊधोमें, माधवमें, रामामें, मेरी स्त्रीमें, मेरे पुत्रमें, माधवके पुत्र में, घोड़े में, हाथी में, सर्प में और सिंह में एक ही आत्मा है, यानी जो आत्मा मुझ में है वही समस्त जगत् में है। बिहारीलाल कविने कहा है '—

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ॥

श्याम की मोहिनी मूरत की गति अति अद्भुत है। वह सुन्दर हृदय में रहती है, तोभी उसका प्रतिबिम्ब—अक्स—सारे जगत् में पड़ता है।

महाकवि नज़ीर कहते हैं :—

ये एकताई ये यकरंगी, तिस ऊपर यह कयामत है।
न कम होना न बढ़ना और हजारों घट में बँट जाना॥

ईश्वर एक है और एक रंग है—निर्विकार और अक्षय है, उसमें रूपान्तर नहीं होता और वह घटता-बढ़ता भी नहीं, लेकिन अचम्भे की बात है कि, वह घट-घटमें इस तरह प्रकट होता है, जिस तरह एक सूर्य्य का प्रतिबिम्ब सैकड़ों जलाशयों में दिखाई देता है।

क्या जीवात्मा और परमात्मा में भी कुछ भेद नहीं है?

निस्सन्देह, जीवात्मा और परमात्मासे कोई भेद नहीं है। दोनोंमें एकही आत्मा है। जीवकी उपाधि अन्तःकरण है और परमेश्वर की उपाधि माया है। जीवकी उपाधि छोटी है और परमात्माकी बड़ी है, इसीसे ईश्वरमें जो सर्वज्ञता प्रभृति धर्म्म हैं, जीवमें वे नहीं। गङ्गाकी बड़ी धारामें नाव और जहाज़ चलते हैं, हज़ारों मगर-मच्छ और करोड़ों मछलियाँ तैरती हैं तथा किनारे पर लोग स्नान करते हैं।

पर वही गङ्गाजल अगर एक गिलासमें भर लिया जाय, तो उसमें न तो नाव और जहाज होंगे, न मगर-मच्छ और मछलियाँ होंगी और न किनारेपर लोग स्नान करते होंगे। दर-असल, गङ्गाकी बड़ी धारा में जो जल है, वही जल गिलास में है। वह गङ्गाका बड़ा प्रवाह है और गिलास में थोड़ा-सा जल है। जिस तरह दोनों जलों के एक होने में सन्देह नहीं, उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा के एक होने में सन्देह नहीं। साराश यह कि, जीवात्मा, परमात्मा और समस्त जगत्में एकही ब्रह्म है। जो इस बात की तह तक पहुँच जायगा, वह किस से वैर करेगा और किससे प्रीति? जब तक मनुष्य इस बात को अच्छी तरह नहीं समझ लेता और यही बात उसके दिल पर नक्श हुई नहीं रहती कि, जो आत्मा मेरे शरीर में है वही जगत् के और प्राणियों के शरीरोंमें है, तभी तक वह किसी को अपना और किसी को पराया, किसी को अपनी स्त्री और किसीको अपना पुत्र, किसीको शत्रु और किसीको मित्र, किसीको सर्प और किसीको फूलोंका हार समझता है, किसीसे खुश होता है और किसीसे नाराज़, किसी से विरोध करता और किसी से प्रणय। पहले के पहुँचे हुए महात्मा जो सिंहों को अपने आश्रमों में भेड़-बकरी की तरह पालते और सर्पों को गले का हार बनाये रखते थे, वह क्या बात है? और कुछ नहीं, यही बात है, कि वे भीतरी दिल से सिंह में और अपने में एक ही आत्मा समझते थे, इसी से वे

उनसे डरते नहीं थे और सिंह तथा सर्प प्रभृति हिंसक जीव भी उन्हें कष्ट न पहुँचाते थे।

कैवल्योपनिषद् में लिखा है'—

यत्पर ब्रह्म सर्वात्मा, विश्वस्यायतन महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर नित्य स त्वमेव त्वमेव तत् ॥

जो ब्रह्म सब प्राणियो का आत्मा,सम्पूर्ण विश्व का आधार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और नित्य है, वह तुही है और तू वही है।

समदर्शी होने से मोक्ष मिलती है ।



"समस्त जगतमें एक ही ब्रह्म या चेतन आत्मा व्यापक है—" इस बातको जाने-समझे बिना, मनुष्य समदर्शी हो नहीं सकता, इसी से हमने यह बात विस्तार से समझाई है। अब रही यह बात कि, समदर्शी होने को क्या ज़रूरत है ? समदृष्टि होने से क्या लाभ है ? इन प्रश्नोंका उत्तर हम सक्षेपमें ही दिये देते हैं — समदृष्टि हो जाने से मनुष्य का दु ख और क्लेशों से पीछा छूट जाता है , वर्णनातीत परमानन्द की प्राप्ति होती है ससार-बन्धन कट जाता है , आवागमन का झगडा मिट जाता है , प्राणी को बारम्बार जन्म लेना और मरना नहीं पडता , उस की मोक्ष हो जाती है और वह परमपद या विष्णुत्व को प्राप्त हो जाता है। स्वामी शङ्कराचार्य्य जी महाराज कहते हैं —

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम्॥

हे मनुष्य! यदि तू शीघ्रही मोक्ष* या विष्णुत्व चाहता है; तो शत्रु और मित्र, पुत्र और बन्धुओं से विरोध और प्रणय मत कर, यानी सब को एक नज़र से देख, किसी में भेद न समझ।

सार—यदि मोक्ष, मुक्ति या परमानन्द चाहते हो, तो सब जगत् में अपने ही आत्मा को देखो, किसी को अपना और किसी को पराया, किसी को शत्रु और किस को मित्र मत समझो।

छप्पय।

सर्प सुमन को हार, उग्र बैरी अरु सज्जन।
कञ्चन मणि अरु लोह, कुसुम शय्या अरु पाहन।

---

* "मोक्ष" किसी पदार्थ का नाम नहीं है और वह किसी देश या दूसरी दुनिया में नहीं मिलती। हृदय में जो अज्ञान की गाठ है, उसके खुल जाने या नाश हो जाने को ही "मोक्ष" कहते हैं।

शरीर आत्मा नहीं है। शरीर को आत्मा समझना "अविद्या" है। अविद्या के कारण ही संसार बन्धन है। इस बन्धन के नाश को ही "मोक्ष" कहते हैं।

कामनाओं का हृदय में जो निवास है, उसी को "संसार" कहते हैं। कामनाओं के सब तरह से नाश हो जाने को "मोक्ष" कहते हैं।

मुक्त हुआ पुरुष फिर संसार में नहीं आता। कृष्णवाक्य है—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।" जिस पदको पाकर फिर नहीं लौटता, वही मेरा परम स्वरूप है।

तृण अरु तरुणी नारि, सबन पर एक दृष्टि चित ।
कहूँ राग नाहिं रोप, द्वेष कितहुँ न कहुँ हित ।
ह्वै है कब मेरी यह दशा, गंगाके तट तप जपत ।
रस भीने ईलम दिवस ये, बीतेंगे शिव शिव जपत ॥११३॥

113 O Lord, let my remaining days be now spent repeating the name of Shiva in some holy forest, my sight making no difference between a serpent or a garland of flowers, between a powerful enemy or a friend, between a precious gem or an ordinary stone, between a bed made soft by flowers or a flat stone, and between a straw or a group of beautiful women



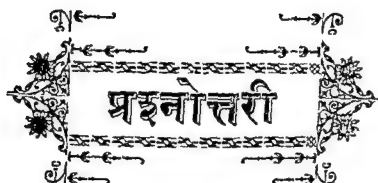
सारतत्त्व

इस ग्रन्थ के ४२६ पेजोंमें और करोडों वेदान्त ग्रन्थोंमें जो विषय कहा गया है, उसे हम आधे श्लोकमें कहे देते हैं —

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या,
जीवो ब्रह्मैवनाऽपरः।

ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्मरूप है।





आत्मा-सम्बन्धी-प्रश्नोत्तर ।

(१) प्रश्न—आत्मा कैसा है ?

उ०—आत्मा अचिन्त्य, अनन्तरूप, कल्याणरूप, अमृत, माया का भी कारण, आदि-मध्य और अन्त से हीन, विभु, एक, आनन्द-रूप और अद्भुत है ।

(२) प्रश्न—क्या सब प्राणियों में एक ही आत्मा है ?

उ०—निस्सन्देह, सभी प्राणियों मे एकही आत्मा है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है—"एकही चेतन देव सारे भूतों में छिपा हुआ है । वही सब में व्याप रहा है और वही सब भूतों का अन्तरात्मा है । वही कर्मों का अध्यक्ष या ज्ञाता सब भूतों का निवासस्थान, साक्षी, चेतन, द्वैत से रहित और निर्गुण है ।

(३) प्र०—क्या शरीर और आत्मा दो अलग-अलग पदार्थ हैं ?

उ०—बेशक, शरीर और आत्मा दो अलग अलग पदार्थ हैं ।

शरीर जड और नाशमान् है, किन्तु आत्मा चेतन और अविनाशी है। शरीर रहने का घर और आत्मा उसमें रहनेवाला है।

(४) प्र०—जीवन और मरण अथवा जन्म और मृत्यु किसे कहते हैं?

उ०—शरीर और आत्मा के सयोग को जीवन और इनके वियोग को मरण कहते हैं। जब आत्मा नये शरीर में प्रवेश करके ससार में आता है, तब कहते हैं कि जन्म हुआ और जब आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर चल देता है, तब कहते हैं कि मृत्यु हुई।

(५) प्र०—क्या यह शरीर ही मनुष्य नहीं है?

उ०—नहीं, यह देह या शरीर या चोला मनुष्य नहीं है। इस देह को धारण करनेवाला अथवा इस देह में बसनेवाला एक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थ है, जो हृदय के अन्दर रहता है, उसे ही मनुष्य, जीवात्मा, देही या शरीरी कहते हैं।

(६) प्र०—बचपन, जवानी और बुढापा,—ये अवस्थायें किस की होती हैं, आत्मा की या शरीर की?

उ०—बचपन, जवानी और बुढापा,—ये अवस्थायें शरीरकी होती हैं, आत्मा की नहीं। शरीर की अवस्थायें बदलती रहती हैं, मगर शरीर के अन्दर रहनेवाला जीवात्मा सदा जैसा का तैसा बना रहता है। शरीर की अवस्था बदलने पर, उसकी अवस्था में कुछ भी फेरफार नहीं होता। बचपन के शरीर में आत्मा जैसा

रहता है, जवानी और बुढ़ापे के शरीर में भी वैसा ही रहता है। मतलब यह, आत्मा सदा एकसा रहता है, वह न कभी बच्चा होता है, न बूढ़ा और न जवान।

(७) शरीरके साथ जो आत्मा या चेतन वस्तु पैदा होती है, वह क्या शरीर के साथ ही नाश नहीं हो जाती ?

उ०—शरीर के साथ जो चेतन वस्तु या आत्मा पैदा होती है, वह शरीर के नाश होने पर नाश नहीं हो जाती। शरीर नष्ट हो जाता है, पर उसके अन्दर रहनेवाला आत्मा नाश नहीं होता, वह अपने कर्मानुसार फिर नया शरीर पाता है। हम लोग जिस तरह आज हैं, उसी तरह पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। हमने अब तक अनगिन्ती जन्म लिये हैं और आगे भी, जब तक मोक्ष न हो जायगी, इसी तरह जन्म लेते और मरते रहेंगे। देखने में आता है, कि माँ के पेट से निकलते ही बालक को हर्ष, शोक और भय आदि होने लगते हैं। हालके पैदा हुए बालक को अपने पहले जन्म की हर्ष, शोक और भय पैदा करनेवाली बातें याद होती हैं, इसी से वह हँसता, डरता और रोता है। अगर हाल के जन्मे बालक ने पहले कभी जन्म न लिया होता, तो वह पैदा होते ही, अपनी भूख शान्त करने के लिए, माँ के स्तनों को खोज कर उनसे लग न जाता। बालक ने पहले अनेक जन्म लिये हैं और प्रत्येक बार माताओं के स्तन-पान किये हैं; इस बार भी उसे पहले जन्म की बात याद है, उसे स्तन पान का अनुभव है, दूध पीने के लाभ का ज्ञान है; इसीसे वह इस जन्म में, पैदा होते ही, बिना किसीके

सिखाये, स्तन पीने लगता है। इस से साफ मालूम होता है कि, हाल के जन्मे बच्चे के भीतर चैतन्य वस्तु—आत्मा है और वह पहले जन्म में भी था। उसी आत्मा ने अपना पहला शरीर छोड कर, इस नये शरीर में प्रवेश किया है। उस बालक का पहला शरीर नाश हो गया है, पर उसके अन्दर रहनेवाला आत्मा ज्यों का त्यों है, वह पुराने शरीरो को त्याग त्याग कर नये-नये शरीर धारण करता है। शरीर नाश होते जाते हैं, मगर आत्मा कभी नाश नही होता। इसी से शास्त्रों में आत्मा को अमर और अविनाशी तथा नित्य या सदा सर्वदा रहनेवाला कहा है।

(८) प्रश्न—शरीर और आत्मा का मुकाबला करो।

उ०—शरीर में रहनेवाला आत्मा नित्य, अविनाशी, अक्षय, निराकार, निर्विकार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, अजर और अमर है, किन्तु शरीर अनित्य, नाशमान, घटने-बढ़नेवाला, साकार, विकार वान, स्थूल और बूढ़ा होने तथा मरनेवाला है।

आत्मा कभी मरता नहीं, सदा रहा आता है, इसी से उसे नित्य कहते हैं। आत्माका कभी नाश नहीं होता, कोई भी उसका नाश नहीं कर सकता। मनुष्य की तो बातही क्या है, स्वय जगदीश परम परमात्मा भी, आत्मा का नाश नही कर सकता, क्योंकि आत्मा स्वयंही ब्रह्म है, कोई भी अपना नाश आप नहीं कर सकता। आग आत्माको जला नही सकती, जल डुबा या गला नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती ; अत आत्मा के अविनाशी होने में कोई सन्देह नही। आत्मा निराकार है, यानी उसके आकार या अङ्ग

प्रत्यग नहीं, इसीलिये वह घटता-बढ़ता नहीं, बस, इसी वजह से उसे अक्षय भी कहते हैं। पैदा होना, अस्तित्व, बढ़ना, घटना, रूपान्तर होना और नाश होना—ये छ "भाव विकार" हैं। ये छ देह के धर्म हैं। शरीर पैदा होता है, घटता बढ़ता है, शरीर में ही जवानी और बुढ़ापा प्रभृति रूपान्तर या फेरफार होते हैं तथा शरीरका नाश होता है; यानी शरीर की ये छ अवस्थायें होती हैं, किन्तु आत्मा इन छहों विकारों से अलग रहता है। न वह पैदा होता है, न घटता बढ़ता है, न उस में रूपान्तर होते हैं और न उस का नाश होता है, इसी से उसे निर्विकार कहते हैं। आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, इसलिये वह बुद्धि वगैर से जाना भी नहीं जा सकता। आत्मा न बूढ़ा होता है और न मरता है, इसी से उसे अजर और अमर कहते हैं।

(६) प्रश्न—क्या स्त्री और पुरुष में आत्मा अलग-अलग होते हैं?

जिस तरह बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था के शरीर में एक ही आत्मा होता है, उसी तरह स्त्री, पुरुष और नपुंसक प्रभृति में एकही आत्मा होता है। आत्मा जैसे-जैसे शरीरोंको धारण करता है, वैसा ही-वैसा हो जाता है। शरीर स्त्री या पुरुष होता है, आत्मा नहीं। एक ही आत्मा दो तरह के शरीरों में रहने से स्त्री और पुरुष कहलाता है। स्त्री के शरीर में रहनेवाला आत्मा, जब पुरुष के शरीर में आ जाता है, तब पुरुष कहलाता है और पुरुषके शरीर में रहनेवाला [illegible] के शरीर में आ जाता है, तब

कहलाता है। आत्मा स्त्री पुरुष नहीं होता, किन्तु शरीर स्त्री पुरुष होता है।

(१०) प्रश्न—मरने के बाद इन्द्रियाँ अपना-अपना काम क्यों नहीं करती ?

उ०—शरीर जड है और आत्मा चेतन है। शरीर घर है और आत्मा दीपक है। जिस तरह घर में दीपक का प्रकाश रहता है, उसी तरह शरीररूपी घरमें आत्मा रूपी दीपकका प्रकाश रहता है। यह चेतन आत्मा ही सारी इन्द्रियों के गुणों का प्रकाशक है। चेतन आत्मा की रोशनी से ही इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं। जब आत्मा शरीर-रूपी घर को छोड जाता है, तब शरीर—घर में अँधेरा हो जाता है। इन्द्रियाँ जो आत्मा की ज्योति से अपना-अपना काम करती थीं, उसके शरीर में न रहने से वे-काम हो जाती हैं।

(११) प्रश्न—क्या ईश्वर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं ?

उ०—नहीं ; ईश्वर और आत्मा बिल्कुल एक ही हैं। इन में कुछ भेद नहीं।

(१२) प्रश्न—ईश्वर सर्व्वज्ञ और सर्व्वशक्तिमान् है, पर जीवात्मा तो सर्व्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं, तब दोनों एक कैसे हुए ?

उ०—जीवात्मा की उपाधि अन्त करण है और ईश्वर की उपाधि माया है। जीवात्मा की उपाधि छोटी सी है, पर ईश्वर की उपाधि माया सारे ब्रह्माण्ड में फैल रही है, इसी से ईश्वर

में सर्व्वज्ञता आदि धर्म रहते हैं, पर जीवात्मा में नही। परन्तु सुखरूपता दोनों में समान है तथा नित्यत्व और चेतनत्व धर्म भी दोनों में बराबर हैं। इस से स्पष्ट है कि, ईश्वर और आत्मा मे भेद नहीं; उपाधि के छोटेपन और वडेपन के कारण दोनों में भेद जान पडता है।

यही सवाल किसी आदमीने एक महात्मा से किया था। महात्माने कहा—"मुझे प्यास ज़ोर से लगी है, अत पहले गङ्गाजी से एक तुम्वी जल भर लाओ।" वह आदमी एक तुम्वी गङ्गा जल भर लाया और महात्मा के सामने रख दिया। महात्मा ने कहा—"यह तो गङ्गाजल नहीं है। गङ्गाजल में तो सैकडों नाव और अगनबोट आदि चलते हैं, वडे वडे मगर और घडियाल तथा मछलियाँ तैरती हैं, किनारे पर घाट वने हैं, लोग स्नान करते हैं, पर इसमें तो उनमेंसे एक भी नहीं, फिर मैं इसे कैसे गङ्गाजल समझूँ ?" उस जल लाने वालेने कहा—"महाराज! वह गङ्गाका वडा भारी प्रवाह है, जिस के किनारे पर्वत और वृक्षादिक हैं तथा जिसमें जहाज चलते और मनुष्य नहाते हैं, और यह उसी प्रवाहका एक छोटासा अंश है। इसमें वे सब कैसे रह सकते हैं? पर इसके गङ्गाजल होने में ज़रा भी शक नहीं, जो मधुरता आदि गुण उसमें हैं, वे ही सब इसमें भी हैं। यह सुनते ही महात्माने कहा—"बस, तेरा सवाल हल होगया। यही बात ईश्वरात्मा और जीवात्मा में है। दोनों एक ही हैं। ईश्वर नित्य और चेतन है, आत्मा भी नित्य और चेतन है। वह सुख रूप है और यह भी सुख रूप है। आत्माकी

उपाधि अन्त:करण है और ईश्वर की उपाधि माया है। आत्मा की उपाधि छोटी सी है, उसका दायरा छोटा है ; इसी से आत्मा में सर्व्वज्ञता आदि नहीं, पर ईश्वर की उपाधि माया सारे विश्व में व्याप रही है, उसका दायरा बहुत बड़ा है, इसीसे उसमें सर्व्वज्ञता आदि धर्म हैं।

(१३) प्रश्न—क्या ईश्वर सर्व्वव्यापक है? अगर ईश्वर सर्व्वत्र है, तो वह दीखता क्यों नहीं?

उ०—जिस तरह दूध में मक्खन, दही में घी, तिलों में तेल, पहाड़ी झरनों में जल और अरणी में अग्नि की ज्योति है, उसी तरह परमात्मा सर्व्वत्र है। जिस तरह तिलोंमें तेल है, पर दीखता नहीं, दूध में मक्खन है, पर दीखता नहीं, ईख में रस है, पर दीखता नहीं, उसी तरह आत्मा सब शरीरों में है, पर दीखता नहीं।

(१४) प्र०—क्या सब में एक ही आत्मा है? अगर सब में एक ही आत्मा है, तो अलग-अलग क्यों दीखता है?

उ०—निश्चय ही सारे विश्व में अथवा संसार के सभी शरीरों में एक ही आत्मा है। स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, हाथी, ऊँट, कुत्ता और बिल्ली प्रभृति संसारके सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है। इन सब में अलग अलग आत्मा नहीं हैं, पर भ्रमवश या अज्ञान से जिस तरह एक ही सूर्य अनेक जल से भरे हुए घड़ों में अनेक सूर्यों की तरह दीखता है, उसी तरह एक ही आत्मा अनेक शरीरों में अनेक आत्माओं की तरह दीखता है। बुद्धिमान्

समझता है कि, सूरज एक है, पर अनेक घड़ों में अनेकों सूरजोंकी तरह दीखता है, उसी तरह ज्ञानी समझता है कि, सारे संसार में एक ही आत्मा व्याप रहा है, पर अनेकों शरीरों में अनेकों आत्माओं की तरह दीखता है।

(१५) प्र०—अगर जगत् के सभी शरीरो में एक ही आत्मा है, तो एक के सुखी होने से सभी सुखी क्यों नहीं होते और एक के दुखी होने से सभी दुखी क्यों नहीं होते और एक के मरने से सभी मर क्यों नहीं जाते इत्यादि ?

उ०—एक शरीरमें हाथ, पैर, नाक, कान, अँगुली प्रभृति अनेक अवयव हैं, पर उस शरीरके सारे अवयवों में एक ही आत्मा है। इतने पर भी, पैरमें दर्द होनेसे हाथमें दर्द नहीं होता, नाकमें सुख होनेसे कानमें सुख नहीं होता और एक अङ्गके टूट जानेसे सारे अङ्ग टूट नहीं जाते। मतलब यह है कि, जिस तरह एक शरीर के अवयवों में एक आत्मा होने से सब में सुख-दुःख नहीं होता, उसी तरह ब्रह्माण्ड के शरीर में एक आत्मा है और संसार के सारे शरीर उस के अवयव हैं। एक शरीर के सुखी दुखी होने से विराट के और शरीर सुखी-दुखी नहीं होते, क्योंकि वे सब शरीर विराट के अवयव-मात्र हैं। और भी खुलासा यों है कि, जिस तरह हमारे इस शरीर के हाथ पैर आदि अवयव हैं, हमारे एक अवयव को कष्ट होने से दूसरे अवयव को कष्ट नहीं होता, उसी तरह हम सारे ही प्राणी उस विराट-शरीर के अवयव हैं। हम में से एक के दुःखी होने से दूसरा दुखी नहीं होता और सुखी होनेसे दूसरा सुखी नहीं होता।

आत्मा से सुख दु ख आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। सुख दु.ख आदि का सम्बन्ध अन्त करण से है। गरमी सरदी, सुख दु ख आदि आत्मा को नहीं मालूम होते, किन्तु अन्त करण को मालूम होते हैं। सब अलग अलग शरीरों में आत्मा तो एकही है, मगर अन्त करण अलग-अलग हैं। इसी कारण एक को सुख होने से सब को सुख और एक को दु ख होने से सब को दु ख नहीं होता। "एकोदेव सर्वभूतेषु गूढ " इत्यादि श्रुतियों से साफ मालूम होता है कि, आत्मा सारे शरीरों में एक ही है। इच्छा संकल्प, सशय, लज्जा, भय आदि मन से सम्बन्ध रखते हैं। जो ऐसा समझते हैं कि, आत्मा को सुख होता है, आत्मा को दु ख होता है तथा शरीर-शरीर में अलग अलग आत्मा हैं, वे सब भूल करते हैं, वे नादान और अज्ञानी हैं।

एक बात और है,—आत्मा नित्य और आदि अन्त रहित है, उसका विनाश कभी नहीं होता, इसलिये आने वाले और जाने वाले, पैदा होनेवाले और नाश होनेवाले सुख दु खों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं हो सकता। दो समान पदार्थों का सम्बन्ध होता है, यही नियम है। अन्त करण और सुख दु ख आदि दोनों ही उत्पत्ति और विनाश में समान हैं, अत अन्त करण को ही दु ख-सुख मालूम होते हैं। निर्गुण, निराकार, नित्य और विकार-रहित आत्मा को अनित्य (सदा न रहनेवाले) सुख दु ख नहीं घेर सकते। सुख दु ख अनित्य हैं और अन्त करण भी अनित्य है। अनित्य का अनित्य के साथ ही मेल हो सकता है, नित्य और

अनित्य का संयोग कभी हो नहीं सकता। अब साफ तौर से समझ में आजायगा कि, सुख दु ख का सम्बन्ध अन्त करण से है, आत्मा से उनका कुछ भी सरोकार नहीं। आत्मा को कभी कोई दु ख नहीं होता। अज्ञान से आत्मा का बन्धन मालूम होता है। अभिमान के कारण या विषयों और इन्द्रियों के सम्बन्ध से सुख-दु ख आदि पैदा होते हैं और वह अन्त करण को मालूम होते हैं, आत्मा का उनसे कोई सरोकार नहीं। बस, यही वजह है कि, सब शरीरों में एक आत्मा होने पर भी, अन्त करणों के अलग होने से, एक को सुख होने से दूसरे को सुख और एक को दु ख होने से दूसरे को दु ख नहीं होता।

(१६) प्र०—मनुष्य बन्धन-मुक्त कैसे हो सकता है ?

उ०—जिस तरह मरुभूमि में भ्रम से जल दीख पड़ता है, पर वास्तव में वहाँ जल का नाम भी नहीं—मरुभूमि ही है, उसी तरह यह जगत् जैसा दीखता है, वैसा नहीं है, भ्रम से वैसा दीखता है। असल में मिथ्या प्रपञ्च है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है—यह सब वासना के खेल हैं, यानी वासना से ही ससार दीखता है। असल में, न कोई किसी का पुत्र है और न पिता, न पुत्री। वासना के कारण ही यह जीव बन्धन में बंधता है। वासना के कारण ही यह नाना प्रकार के कष्ट भोगता है। वासना के त्याग से ही परमानन्द की प्राप्ति होती है और जीव ज्ञानी हो जाता है। हृदय में कामनाओं का होना ही ससार है और कामनाओं का सब तरह से

नाश हो जाना ही मोक्ष है। जो बन्धन से छूटना चाहें, वे वासना या कामना को त्यागें।

(१७) प्र०—क्या पुत्र पौत्रों के होने से गति हो जाती है?

उ०—नहीं, यह अज्ञानियों का भ्रम है। पुत्र तो कुत्ते बिल्ली और सूअरों के भी होते हैं, क्या उनकी गति हो जाती है? हरगिज नहीं। पुत्र से न तो किसी की गति हुई और न होगी। गति अपने पुरुषार्थ से होती है। अगर पुत्रों से गति होती, तो पहले के मोक्ष चाहनेवाले अपने पुत्रों को क्यों त्याग जाते? जो पुत्र से गति होना मानते हैं, वे मोहान्ध हैं।

(१८) प्र०—क्या तीर्थाटन से भी मुक्ति नहीं हो सकती?

उ०—जिन पुरुषों के मन और वाणी आदि शुद्ध हैं, उनके पद-पद में तीर्थ हैं, किन्तु जिनके मन मलिन हैं, उनके लिये गङ्गा भी कीकट देश के समान हैं, यह बात "देवी भागवत" में कही है।

"कपिल गीता" में कहा है—यह तीर्थ है, वह तीर्थ हैं, ऐसा समझ कर अज्ञानी मारे-मारे फिरते हैं, क्योंकि उन्हें आत्मा रूपी तीर्थ का हाल मालूम नहीं।

"गीता" में कहा है—जिसको आत्मा में प्रीति है, जो आत्मानन्द से तृप्त है या जो आत्मा से सन्तुष्ट है, उसे कुछ भी नहीं करना है, यानी उसके लिये तीर्थों में भटकने या और काम करने की जरूरत नहीं।

जिस तरह तालाब के निर्मल और ठहरे हुए जल में सूर्य का बिम्ब—अक्स—दीखता है, उसी तरह शुद्ध मन वाले को परमेश्वर

दीखता है। जिसका मन स्थिर और शुद्ध है, उसके चरणों में तीर्थ हैं। किसी ने कहा है—

दिल बदस्त आर्बूद कि हज्जे अकबर अस्त।
अज हजारों काबा यक दिल बेहतर अस्त॥

(१६) प्र०—महात्माओं ने पुत्रों को दुःखदायी और शत्रु क्यों कहा है ?

उ०—पुत्र सचमुच ही शत्रु होते हैं। पुत्र इस जन्म ही में माता-पिता को दुःख से नहीं छुडा सकते, तब मरने पर क्या सुखी करेंगे ? पुत्र तो केवल धन के साथी हैं। वे पूर्व जन्म के लेनदार हैं। अपना ऋण चुकने को पुत्ररूप में जन्म लेते हैं। असल में, पुत्र का नाम ही दुःखों की खानि है। जिनके पुत्र नहीं होता, वे पराये पुत्रोंको देखकर मनमें कुढ कुढ कर मरते हैं। हाय ! हमारे धन का कौन मालिक होगा ? गरीबों को पुत्र न होने से इतना दुःख नहीं होता, जितना धनियों को होता है। अगर किसी के पुत्र होकर मर जाता है, तो वह जीते जी ही मर जाता है। अगर पुत्र की शादी हो जाती है और फिर वह मर जाता है, तो माता-पिताके जलन की सीमा नहीं रहती, पुत्र-वधू को देख-देख कर रात-दिन रोते-कलपते हैं। अगर पुत्र कुपुत्र निकल जाता है, तब तो माता-पिता को पद-पद पर जलना और कुढना पडता है। उनको पुत्र न होनेवालों से भी अधिक सन्ताप होता है। अगर पुत्र सुपुत्र होता है, तो उसके जीने की चिन्ता रहती है, फिर उसके

विवाह की फिक्र रहती है और औलाद हो जाने पर उसकी औलाद की चिन्ता रहती है। साराश यह, पुत्रवानों को सदा चिन्ताग्नि में जलना पडता है और शेष में पुत्र से कोई लाभ भी नहीं। मरने पर पुत्र धन का मालिक हो जाता है और पिता का नाम भी नहीं लेता। अगर कोई श्राद्ध वगैर करता है, तो वह अपने नाम और लोक-लाज को करता है, पिता की आत्मा की शान्ति के लिये नहीं करता। इसी से तत्वज्ञानी लोग पुत्र की इच्छा नही रखते और पुत्र को ऐसा शत्रु कहते हैं, जो ऊपर से मित्र मालूम होता है, पर वास्तव में पक्का शत्रु होता है। अनेक पुत्र दरिद्री पिता को मारते-पीटते हैं। उसे दहलीजमें टूटी सी खाट पर पटक कर बासी कूसी खाना देते और अनेक दुर्गति करते हैं। आश्चर्य है, फिर भी मोहान्ध अज्ञानी पुत्र ही पुत्र चिल्लाया करते हैं।

(२०) प्र०—ज्ञान, ध्यान, स्नान और शौच किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा को सब प्राणियों में एक रूप से देखना ही "ज्ञान" है। मनका विषयों से रहित हो जाना ही "ध्यान" है। मन के मैलों को दूर करना ही 'स्नान' है और इन्द्रियों के निग्रह करने को ही "शौच" कहते हैं।

(२१) प्र०—संसार-बन्धन से किस तरह छुटकारा मिल सकता है ?

उ०—विषयो में लगे हुए चित्त को, विषयों से हटाकर, ब्रह्म में लगा देने से संसार-बन्धन से छुटकारा हो सकता है।

(२२) प्र०—आत्मा के साक्षात्कार में बाधक कौन है? परमात्मा का स्पष्ट दर्शन कब होता है?

उ०—आँख, कान, नाक प्रभृति इन्द्रियाँ और रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि विषय अनर्थों की जड हैं। इन्द्रियाँ सदा विषयों की ओर पुरुष को ले जाती हैं और विषय विष की तरह घातक हैं। विषयासक्तों को आत्मा या परमात्मा का दर्शन नहीं होता।

विषय और इन्द्रियाँ पैदा होने वाले और नाश होने वाले हैं, किन्तु आत्मा अजन्मा और अविनाशी है, अत उस का और इन का मेल नहीं, क्योंकि मेल समान-समान का होता है, नाशमान और अविनाशी का मेल हो नहीं सकता। आत्मा इन से परे और सब का साक्षी है। उस आत्मा की प्राप्ति सत्य से होती है। सत्य से ही मन का निरोध होता है। मन का निरोध होते ही आत्मा साफ दीखता है, यानी शुद्ध साफ और निर्मल मन में ही आत्मा दीखता है, जिस तरह साफ दर्पण में चेहरा दीखता है। अशुद्ध मन में आत्मा नहीं दीखता। अशुद्ध मन बन्धन का कारण और शुद्ध मन मोक्षका कारण है। मन के शुद्ध हो जाने से बुरे भले कर्मों का नाश हो जाता है। कर्मों के नाश हो जाने से पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है। मतलब यह है कि, आत्मा या परमात्मा के दर्शन चाहनेवालों को, इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, मन को शुद्ध करना जरूरी है। जिस तरह लकडियों के न रहने से अग्नि अपने कारणमें लय हो जाती है, यानी बुझ जाती है, उसी तरह वृत्तियों से रहित हुआ मन भी अपने कारण में [illegible] जाता है, यानी

जाता है। जब मन शान्त हो जाता है, उस की चञ्चलता नाश हो जाती है, वह स्थिर हो जाता है, तब आत्मा का दर्शन होने लगता है। जिस तरह चञ्चल हवा से हिलते हुए मैले गदले जल में सूरज का बिम्ब या अक्स नही दीखता, उसी तरह अशुद्ध, मैले और चञ्चल चित्त में आत्मा नहीं दीखता। अत मन की चञ्चलता और उस की गन्दगीको दूर करना जरूरी है।

(२३) प्रश्न—परमेश्वर कहाँ है ? उस का ध्यान कैसे करना चाहिए ?

उ०—यह जो हमारा शरीर है, यही उस देवता—परमेश्वर के रहने का मन्दिर है। इसी में जो चेतन जीव है, वही केवल "शिव" है। मनुष्य को हृदय-कमल में परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। चञ्चल या चलायमन चित्त से वह नहीं दीखता है।

(२४) प्रश्न—सारे दु खों का मूल कारण क्या है ?

उ०—तृष्णा—इच्छा। जिस के मनमें तृष्णा है, उस का मन सदा इधर उधर भटकता रहता है, वह कभी शान्त नहीं होता। मनके शान्त हुए बिना प्राणीको सुख नही, अत तृष्णाको त्यागना चाहिए, किसी भी वस्तु की इच्छा न रखनी चाहिए। यहाँ तक कि, स्वर्ग और मोक्ष की भी इच्छा न रखनी चाहिए।

(२५) प्रश्न—अगर यह जगत् जड है, तो यह चेष्टा कैसे करता है ?

उ०—बेशक यह जगत् जड, नाशमान और दु ख-रूप है, किन्तु

ब्रह्म चेतन, नित्य और शुद्ध-रूप है। जिस तरह चुम्बक पत्थर की विलक्षण शक्ति से लोहा चेष्टा करने लगता है, उसी तरह ब्रह्म-चेतन की विलक्षण शक्ति से यह जगत् भी चेष्टा करता है।

(२६) प्रश्न—ईश्वर और जीव की एकता प्रमाणित करो।

उ०—ईश्वर और जीव में भेद नहीं है। जैसे ब्रह्म निरवयव और निराकार है, वैसे ही जीव भी निरवयव और निराकार है। एक ही चेतन अन्त करण रूपी उपाधियों के अन्तर्गत तो जीव कहलाता है और वही चेतन अन्त करण रूपी उपाधियों से रहित ईश्वर कहलाता है। ब्रह्म चेतन अकर्त्ता और अभोक्ता है, जीव-चेतन भी अकर्त्ता और अभोक्ता है। ब्रह्म चेतन नित्य और शुद्ध है, जीव-चेतन भी नित्य और शुद्ध है। जीव और ईश्वर को एक समझने वाला मोक्ष लाभ करता है। जिस का ऐसा निश्चय हैं, वही आत्मज्ञानी है। जिसे आत्मज्ञान नहीं, वह मूर्ख और अज्ञानी है।

(२७) प्रश्न—आत्मज्ञान की प्राप्ति का मुख्य साधन क्या है?

उ०—वैराग्य। विना वैराग्य के आत्मज्ञान हो ही नहीं सकता।

(२८) प्रश्न—वैराग्य किसे कहते हैं?

उ०—संसार से राग या प्रीति न रखना ही वैराग्य है।

(२६) प्रश्न—क्या स्त्री-पुत्र धन-दौलत मकान-हाट प्रभृति किसी में भी ममता न रखनी चाहिये?

उ०—हाँ, नहीं रखनी चाहिये, इस जगत् में जितने जीव हैं,

का घर है। जो श्वास बाहर चला जाता है, उस के भीतर आने का कौन विश्वास? आवे और न आवे।

ऐसी ही बात कबीरदासने कही है —

नव द्वारे का पींजरा, तामे पक्षी पौन।
रहने का आश्चर्य्य है, गये अचम्भा कौन॥

मनुष्य-शरीर नौ दरवाज़ों का पींजरा है। इसमे दो दरवाजे हैं दो आँखों में, दो नाक में, दो कानों में, एक मुँह में, एक गुदा में और एक गुप्त इन्द्रिय में। इस तरह नौ द्वार हैं। इसी नौ द्वारे के पींजरे में पवन-रूपी पक्षी—जीव रहता है। इतने द्वार होने पर भी, वह इस पींजरे में रहता है, यही आश्चर्य्य की बात है। इतने द्वारों से निकल जाने में क्या आश्चर्य्य? तात्पर्य्य यह कि, जीव न जाने कब इस शरीर को छोड भागे। जब तक जीव इस शरीर में है, तभी तक हरि-भजन या मोक्ष लाभ करने की तदबीरें की जा सकती हैं। जीव के इस शरीर से निकल भागनेके बाद, यह मौका हाथसे निकल जायगा। जीव इस शरीर को त्यागते ही कीड़े मकोडे, साँप, छछूँदर, बिल्ली, कुत्ते, गधे, घोडे प्रभृति की योनि में जन्म ले लेगा। उन योनियों में ज्ञान-शक्ति नहीं होती; अत उन शरीरों में आकर मोक्ष-लाभ हो नहीं सकता। मनुष्य-शरीर से ही मोक्ष मिल सकती है, पर मनुष्य-शरीर बार बार नहीं मिलता। ८४ लाख योनियाँ भुगत लेने पर मनुष्य-जन्म मिलता है, अत इस सुअवसर को हाथ से गँवाना भारी अज्ञानता है। जो इसमें

चूकेगा, लाखों-करोड़ों वर्ष तक पछतावेगा। अतः जब तक जीवन है, मनको सब ओर से रोक कर, विषयों को विषवत् त्याग कर, हरि का भजन करो।

(३३) प्र०—वैराग्य पैदा होने और पापों से बचने का मूल कारण क्या है?

उ०—मृत्यु को याद रखना। मौत को याद रखने से पाप नहीं होते और वैराग्य उत्पन्न होता है। श्मशान-घाट पर जाने से ही मनुष्य के चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो उठता है, पर वह घर आकर सब भूल जाता है, फिर विषयों में लग जाता है। एक बादशाह ने पाप और अन्याय से बचने के लिये ही अपने दरबार में, सामने ही, एक कब्र बनवा रक्खी थी, कि कब्र को देखते रहने से मुझ से अन्याय-कर्म न होंगे। मृत्यु अटल है। और सब टल जायँ, पर मृत्यु टल नहीं सकती, वह अवश्य आवेगी, चाहे आज आवे और चाहे कल। जिसने जन्म लिया है, उसे मरना ही होगा। जो मरने की बात भूल जाते हैं, जिन्हें यह याद नहीं रहता कि, हम दो दिन या दश दिन में मरेंगे, वही पाप-कर्म करते हैं और उन्हें ही संसार से विरक्ति नहीं होती। जिनको हर क्षण मौत दीखती है, उनका मन विषय-भोगों या स्त्री-पुत्र धन-दौलत प्रभृति में नहीं लगता। संसार से मन के हटने का ही नाम "वैराग्य" है।

(३४) प्र०—कौन किसी का भी बुरा नहीं चाहता?

उ०—जो वैराग्यवान है, जिसे संसार की असलियत का

पना है, जिसे अपने जीवन का क्षण-भर का भी भरोसा नहीं है, जो धन यौवन, शरीर और भोगों को नाशमान् समझता है, जो सब के अन्दर एक चेतन आत्मा को देखता है, वह भूल कर भी किसी का बुरा नहीं चाहता।

(३५) प्र०—दु खों और सुखों का हेतु क्या है ?

उ०—ससार के भोगों में राग ही दु खों का और इनमें वैराग्य ही सुखों का कारण है। दूसरे शब्दों में यों समझिये—जो ससार में ममता रखता है, वह नाना प्रकार के दु ख भोगता है और जो संसार में ममता नहीं रखता, ससार को त्याग देता है, वह परम सुख पाता है। वैराग्य के सिवा, ससार में और कहीं सुख है ही नहीं, यह निश्चय है।

(३६) प्र०—राग और वैराग्य का क्या कारण है ?

उ०—विषयों में सुख मालूम होना ही राग का कारण है और इनमें दु ख मालूम होना ही वैराग्य का कारण है। जब मनुष्य धन और स्त्री पुत्र आदि से सुखी होता है, तभी उसे इन सब में राग या प्रीति होती है, पर जब उसे इनसे दु ख होता है, तब उसे वैराग्य होता है। किसी को स्त्री खूब प्यार करती है, उसे अच्छी तरह आलिङ्गन करती है, उसकी सेवा में हरदम खडी रहती है, उसके सिवा और किसी पुरुष को नहीं चाहती, तब मनुष्य का मन स्त्री में और भी फँसता है,—यही राग है। पर यदि स्त्री पुरुष को प्यार नहीं करती, उसके घर में आते ही कलह करती है, कडे शब्द कहती है, हर तरह तग करती है, मीठी बातें

नहीं बोलती, पर-पुरुष को चाहती है, तब उसका मन स्त्री से हट जाता है, वह उसे बुरी मालूम होती है, अत उसे वैराग्य हो जाता है। महाराजा भर्तृहरि को जबतक यह मालूम था कि, पिंगला मुझे खूब चाहती है, अष्ट पहर मेरा ही भजन करती है, तब तक उनका मन उसी में फँसा रहा, लेकिन ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि, यह पर-पुरुषरता है यह कुल्टा है और अश्वपाल से प्रीति रखती है, उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। वे राजपाट धन-दौलत सब को त्याग सन्यासी हो गये।

(३७) प्र०—क्या गृहस्थाश्रम में वैराग्य हो सकता है?

उ०—सब की पैदायश ही गृहस्थाश्रम से है। गृहस्थी में सदा सुख ही रहे, ऐसा हो नहीं सकता। इसमें एक-न-एक दु ख लगा ही रहता है। कभी लडका मरता है, कभी स्त्री मरती है, कभी धन नाश हो जाता है, कभी ऋण-भार सिर पर चढता है, कभी शत्रु सताते हैं; अत मनुष्य को जरा-बहुत वैराग्य होता ही रहता है, पर यह मन्द वैराग्य होता है। जब मनुष्य पर कष्ट आता है, उसे वैराग्य होता है पर ज्योंही दु ख टल कर सुख की घडी आती है, उसका वैराग्य नहीं रहता। पर वैराग्यका मूल कारण है गृहस्थाश्रम ही। रामचन्द्रजी और वशिष्ठजी प्रभृति महापुरुषों को गृहस्थी में ही वैराग्य हुआ था। जनक प्रभृति को गृहस्थाश्रम में ही ज्ञान हुआ था। जनक महाराज गृहस्थी में रहकर भी सच्चे त्यागी थे और उन्हें लोग विदेह कहते थे। ज्ञान का कारण वैराग्य है। जिसे गृहस्थाश्रम में वैराग्य है, वह ज्ञानी है, पर जिसे

सन्यासाश्रम में भी राग है, वह अज्ञानी है। खूब याद रक्खो, विना वैराग्य ज्ञान नहीं होता और विना ज्ञान के मोक्ष नहीं होती। जो मनुष्य गृहस्थी में रहकर भी उसमें कमल की तरह रहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। यद्यपि कमल जल में रहता है, पर पानी उस पर नहीं ठहरता, इसी तरह जो गृहस्थी में रहता है, गृहस्थी के सब काम विषय-भोगादि करता है, पर उन में ममता या आसक्ति नही रखता, वह जीवन्मुक्त है। राजा जनक गृहस्थी में रहकर क्या नहीं करते थे? पर उनको आसक्ति या ममता किसी भी पदार्थ में नहीं थी।

(३८) प्र०—ससार में स्त्री कौन है और पुरुष कौन है?

उ०—जो पुरुष अपने हृदय में रहनेवाले पुरुषरूप स्वप्रकाश आनन्द-रूप आत्मा को नहीं जानता, वह स्त्री है, क्योंकि जैसे स्त्री का पति उससे अलग होता है, उसी तरह उस आत्मा को न जाननेवाले ने भी अपने से अलग पति मान रक्खा है। मतलब यह, जिसमें वैराग्य और आत्म-विचार नहीं, वह स्त्री है।

(३९) प्रश्न—ईश्वर के भजन-स्मरण में वैराग्य की क्या जरूरत है।

उ०-विना वैराग्य के पुरुष का मन ईश्वर-भजन में नहीं लगता, इसलिये वैराग्य की जरूरत है। मन एक है। जब तक वह विषय-भोगों में लगा रहता है, तब तक वह ईश्वर में नहीं लग सकता, लेकिन जब वह विषय-भोगों से हट जाता है, तब वह ईश्वर में लग जाता है। जब मन में विषय-भोगों की चाह बनी रहती है,

जब वह विषय-भोगों की लालसा से भरा रहता है, तब उस में ईश्वर के लिये जगह नहीं रहती, लेकिन जब वह विषय-भोगों से खाली हो जाता है, यानी शुद्ध और साफ हो जाता है; तब उस निर्मल और खाली मनमें परमेश्वर बैठ सकता है। अत परमेश्वर के दर्शन चाहने वाले को पहले वैराग्य द्वारा अपना मन शुद्ध करना चाहिए।

(४०) प्रश्न—संसार में सर्प से भी भयङ्कर कौन है ?

उ०—स्त्री सर्प भी से भयङ्कर है। सर्प के विष से मनुष्य एक बार ही मरता है; पर स्त्री के विष से बार-बार मरता है यानी वासना बनी रहने से, वह बार-बार जन्म लेता और मरता है।

(४१) प्रश्न—स्त्री-रूपी सर्प के विष से बचने का क्या उपाय है ?

उ०—स्त्री की याद न करना और उसे कभी न देखना। उस की छाया से भी दूर रहना।

(४२) प्र०—स्त्री-सङ्ग से क्या हानि है ?

उ०—जिस में जिस की वासना रहती है, वह स्वप्न में भी दीखता है, इसी तरह मरण-काल में जब पुरुष की वासना स्त्री में रहती है तब उस को प्राप्त करने के लिये वह फिर शरीर धारण करता है। मरते समय विशेष कर स्त्री में मन रहता ही है, इसी से ज्ञानी लोग पहले ही स्त्री से अलग हो जाते हैं, जिस से मरण-काल में उस में

वासना न रहे। इस के सिवा कामी पुरुष और स्त्रियों के सङ्ग से पुरुष कामी हो जाता है और दूसरा जन्म लेनेपर क्रोधी और मोही होता है। काम क्रोध और मोह प्रभृति से मन अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मन में ब्रह्मज्ञान नहीं ठहरता। जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान-शून्य होता है, वह कीडे मकोडों की योनि पाता है। इन शरीरों को पाकर फिर वह नरक से नहीं निकल सकता, इसलिये स्त्रियो का सङ्ग नहीं करना चाहिये।

(४३) प्र०—सच्चा ज्ञानी कैसा होता है ?

उ०—जिस का किसी पदार्थ में राग न हो, यहाँ तक कि स्त्री पुत्र प्रभृतिमें भी राग न हो। अगर सन्यासी हो तो मठ, चेलों और धन प्रभृति में राग न हो, शत्रु-मित्र आदि सब जीवों को एक नजर से देखे-किसी को अपना और किसी को पराया न समझे, किसी को भी जिससे भय न हो और किसी से भी जिसे भय न हो, जो आत्मा को अमर और अविनाशी तथा शरीर से अलग समझता हो, जो सब प्राणियो में एक आत्मा को देखता हो, जो ईश्वर और जीवमें भेद न समझता हो, जो नष्ट हुए, मरे और बीती बात का शोक न करता हो, यानी सर्व्वस्व नाश हो जाने और पुत्र तथा स्त्री तक के मर जाने पर भी, नाम मात्र को भी रञ्ज न करता हो, वही सच्चा ज्ञानी है। किन्तु जो ज्ञानी की सी बातें तो बघारता हो पर वैराग्य से शून्य हो, वह वध्यज्ञानी है।

(४४) प्र०—चित्त की शुद्धि का साधन क्या है ?

उ०—शुद्ध अन्न।

(४५) प्र०—शुद्ध अन्न कैसा होता है ?

उ०—जो सत्य धर्म से कमाया जाता है, वही शुद्ध द्रव्य होता है। उस शुद्ध द्रव्य से जो खाने पीने के पदार्थ खरीदे जाते हैं, वही शुद्ध कहे जाते हैं। वैसे शुद्ध पदार्थों के खाने से मन शुद्ध हो जाता है, क्योंकि अन्न के द्वारा सत्य-धर्म का असर चित्त पर भी होता है। शुद्ध चित्त में ही वैराग्य और विवेक आदि पैदा होते हैं। असल में सत्य बोलना सर्वोपरि है। सत्य से योंही चित्त शुद्ध हो जाता है और इस से अन्न भी शुद्ध होता है, इसलिये हमेशा सत्य के आश्रय रहो, सत्य को न त्यागो। सत्य के समान जगत् में कोई दूसरा धर्म या भक्ति उपासना नहीं है।

(४६) प्र०—चोर और दुष्टों को भी साधु बनाने वाला क्या है ?

उ०—"सत्सङ्ग।" सत्सङ्ग की महिमा शेष और शारदा भी नहीं गा सकते। कमल पर स्थित जल की बूँद भी मोती-जैसी लगती है। लोहा काठ के सङ्ग में रहने से जल में नहीं डूबता। नदी-नालों का जल भी गङ्गाजल के सङ्ग मिल कर गंगाजल हो जाता है। नागरपान के सङ्ग ढाक का पत्ता भी राजा तक पहुँच जाता है। चींटी फूल में बैठकर महादेवजी के सिर पर चढ जाती है। चन्दन के साथ नीम भी चन्दन हो जाता है। परस पाथर को छू जानेसे लोहा कुन्दन हो जाता है। बाँस मिश्री के साथ मिल कर उसी के साथ तुलता है। सत्सङ्ग से ही घोर वन में जाकर डाकूपना करने वाले भील वाल्मीकिजी महर्षि हो गये, अतः सत्सङ्ग को

चित्त की शुद्धि का मुख्य उपाय समझना चाहिए, और कुसङ्ग से बचना चाहिए। क्योंकि उस से चित्त अशुद्ध हो जाता है।

(४७) प्रश्न—क्या चित्त की शुद्धिका औरभी कोई उपाय है?

उ०—हाँ, परोपकार या दूसरों पर दया करने से भी चित्त शुद्ध हो जाता हैं। दयालुचित्त मनुष्य ही दूसरों का भला करते हैं। असल में चित्त-शुद्धि का "दया" मुख्य साधन हैं। जो मनुष्य-शरीर पाकर उपकार नहीं करता, वह पशुओंसे भी गया बीता है। ईश्वर ने मनुष्य शरीर परोपकार के लिये ही दिया है। शास्त्रों में लिखा है—"धन और प्राणों से परोपकार करना चाहिये, क्योंकि परोपकार के बराबर सौ यज्ञों का भी पुण्य नहीं हैं। जो परोपकारहीन है, उस का जीना वृथा है। जानवरों का चमडा भी पराये काम आता है। अपने लिये कौन नहीं जीता? जो पराये लिये जीता हैं, वहीजीता है। वृक्ष अपने लिये फल नहीं देते, नदियाँ अपने लिये नहीं बहतीं, शेषजी ने पृथ्वी परोपकार के लिये ही अपने सिर पर धर रक्खी है। भगवान् कृष्ण पराये कामके लिये ही सारथी बने थे। सन्त लोग परोपकार के लिये ही शरीर धारण करते हैं, अत मनुष्यका सब से बडा कर्त्तव्य परोपकार या दया करना है। इस से चित्त शुद्ध हो जाता है और शुद्ध चित्त में परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

(४८) ज्ञानवान को नजर में सब में एक ही आत्मा है, तो फिर ज्ञानी सबके साथ खान-पानादि क्यों नहीं करता?

उ०—ज्ञानी दो तरह के होते हैं।

(४६) (क) जीवन्मुक्त, जिन्हें अपनी देह की भी सुध नहीं होती। वे राजा जनक की तरह विदेह और अजगर वृत्तिवाले होते हैं। वे न किसी से भिक्षा माँगते और न कहीं जाते हैं। अगर कोई उन्हें खिला देता है, तो खा लेते हैं, कोई जल पिला देता है, तो जल पी लेते हैं। कोई धूप में बिठा देता है, तो वहीं बैठे रहते हैं और कोई वर्षा में पटक देता है, तो वहीं पडे रहते हैं। उन्हें धूप, छाया और वर्षा सब समान हैं। वह आत्मानन्द में डूबे रहते हैं। उन को जगत् नहीं दीखता। उन्हें सर्वत्र आत्मा ही आत्मा दीखता है। उनकी नजर में न कोई ब्राह्मण हैं और न भगी चमार, उनको तो आत्मा ही आत्मा दीखता है, अत उनके मुँह में ब्राह्मण अन्न डाल दे तो वैसा ही, भगी अन्न डाल दे तो वैसा ही, उनको दोष नहीं लगता। दोष उन्हें लगता है, जिन्हें वर्णाश्रम-धर्म का ज्ञान होता है। वह तो सब तरह निर्दोष हैं। वेदादिक शास्त्रों की आज्ञा भी उन पर नही चलती, क्योंकि वह तो ब्रह्मरूप हैं और महान सुख में डूब रहे हैं। ऐसे महापुरुष जीवन्मुक्त हैं।

(ख) दूसरे प्रकार के ज्ञानियों की गिन्ती आचार्य-कोटि में है। वे भी सब प्राणियों में एक ही आत्मा देखते हैं, इसी से वे किसी से राग-द्वेष नहीं रखते, परन्तु वे समवर्त्ती नहीं होते। वे भङ्गी चमार और ब्राह्मण सब का झूठा नहीं खाते, क्योंकि उन्हें वर्णाश्रम-धर्म का ज्ञान है। सब तरह के व्यवहार और वर्णाश्रम-धर्म का समझनेवाला यदि सबके साथ खावे पीवेगा, तो उसे दोष लगेगा। जो पागलों की तरह होता है, जिसे क्या करना चाहिये और क्या

न करना चाहिये, क्या विधि है और क्या निषेध है, इन बातों का ज्ञान नहीं होता, उसे दोष नहीं लगता। सब किसीसे समान वर्त्ताव करने या हर किसी के साथ खाने-पीने से कोई ज्ञानी नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता, तो भंगी चमार, जो सब का जूठा खाते हैं, ज्ञानी कहलाते। ज्ञानी वही है, जिसमें राग-द्वेष आदि नहीं हैं तथा जो आत्मानन्द से आनन्दित है, पर जिसमें राग-द्वेष हैं, जो विषय-भोगों में आनन्द मानता है, वह ज्ञानी नहीं—अज्ञानी है।

पाप-पुण्य उसे लगते हैं, जिसे ज्ञान होता है। बालकको धर्म अधर्म और पुण्यपाप का ज्ञान नहीं होता, इसी से उसे पाप पुण्य नहीं लगते। बालक को आचार का ज्ञान नहीं होता। वह ऊपर मुँह से रोटी खाता जाता है और नीचे से मल मूत्र त्याग करता जाता है। लोगोंको उसकी इस क्रिया पर ग्लानि नही होती। इसी तरह जीवन्मुक्त को पाप पुण्य नही लगते, वह चाहेजो करे, क्योंकि उसे ज्ञान ही नही। उसके भले-बुरे कामों को देखकर कोई उसे भला-बुरा भी नही कहता। किन्तु आचार्य्य-कोटि के ज्ञानी यदि मास मदिरा सेवन करें, हर किसी का जूठा खायँ, पर स्त्री गमन करें, तो उन्हें पाप जरूर लगेगा, क्योंकि उन्हें सब तरह का ज्ञान होता है और लोग भी उनसे घृणा करते हैं। आचार्य्य-कोटि में वही ज्ञानी है, जो उन कामों को नही करता, जिनकी शास्त्रों में मनाही है और उन कामों को करता है, जिनकी शास्त्र में आज्ञा है। किन्तु जिन कामों को करता है, होकर अनासक्तता से श्रेष्ट आचार के लिये करता

निषिद्ध और विहित दोनों कर्म नहीं करता, यानी जिनको शास्त्रों में आज्ञा है और जिनकी मनाही है, दोनों ही प्रकार के काम नहीं करता, केवल आत्मचिन्तन ही करता है, वह आचार्य्य-कोटिमें है।

(५०) मुक्त किसे कहते हैं?

उ०—जिस पुरुष का मोक्ष में अभिमान है, देहादिकों में ममता है, वह न योगी है और न ज्ञानी, पर जो न किसी की निन्दा करता है और न स्तुति, न किसीको देता है और न किसी से लेता है; जो सर्वत्र राग-रहित है, यानी जिसे किसी भी पदार्थ—स्त्री-पुत्र धन जायदाद प्रभृति से राग नहीं—किसी में भी ममता नहीं—वही मुक्त है। जिसका मन अपने तई चाहनेवाली स्त्री को सामने देखकर अथवा मौत को सामने देख कर भी व्याकुल नहीं होता, वही मुक्त है।

(५१) प्र०—क्या आत्मा उच्च और नीच नहीं होता?

उ०—आत्मा में अपवित्रता और नीचता नहीं। एकही आत्मा ऊँच-नीच सब शरीरों में है। शरीरोंके गुण-दोषों से वह गुण-दोष-वाला नहीं होता। एक ही आकाश मन्दिर में भी है, पाखाने में भी है, भंगी-चमार के घरों में भी है, उत्तमोत्तम मूर्त्तियों में भी है, मलमूत्र की थलियों में भी है; परन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण, उसका उपाधियों से कोई सम्बन्ध नहीं। वह बुरी-भली उपाधियों के कारण बुरा भला भी नहीं होता। यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है। आत्मा तो आकाश से भी सूक्ष्म है, अतः वह असंग और निर्लेप है।

(५२) प्र०—संसार में कितने प्रकार के मनुष्य हैं और उनमे से कौनसे परमात्मा के दर्शन करते हैं ?

उ०—ससार में तीन तरह के मनुष्य हैं —(१) कृपण और आलसी, (२) विषय-भोगी, (३) उदार और उद्योगी। इन मे से पहले प्रकार के कञ्जूस और आलसी तो कभी परमात्मा तक पहुँच ही नहीं सकते, क्योंकि वह हाथों से दान नहीं करते और पैरों से महात्माओं तक नहीं पहुँचते। दूसरे प्रकारके—विषय-भोगी अन्धे हैं। उन्हें न परमार्थ दीखता है और न परमेश्वर, इसलिये वह परमेश्वर का भजन-पूजन नहीं कर सकते। तीसरे प्रकार के लोग उद्योगी और दाता हैं। वे हाथों से दान करते और पैरों से चल कर महात्माओं की सेवा में पहुँच जाते है, अत सत्सङ्ग के कारण उन्हें ज्ञान हो जाता है। उन का अन्त करण शुद्ध हो जाता है, इसलिये वह परमेश्वर के दर्शन पाते हैं।

जो पुरुष रात-दिन स्त्री-पुत्रों की सेवा में लगे रहते हैं, रात दिन उनके ही सुख-चैन की फिक्र रखते हैं, वह कभी सत्सङ्ग नही करते, इसलिये वह स्त्री-पुत्रों की फिक्र करते-करते ही मर जाते हैं और फिर जन्म लेते और मरते हैं। उनकी मोक्ष नही होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रो मे लिखे हुए कर्म करते रहते हैं, वह कभी आत्मा का खयाल भी नही करते, वह कर्म करते-करते ही मर जाते हैं। उन की भी मोक्ष नहीं होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रों की परवा न करके, आतमविचार छोड

कर और किसी ओर ध्यान ही नहीं देते, उन को परमानन्द या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(५३) प्रश्न—सब वेद शास्त्रों का सार क्या है ?

उ०—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मरूप है और दूसरा कोई नहीं,—यही सब शास्त्रों का सारतत्व है।

(५४) प्रश्न—प्राणी बन्धन से कब छूटता है ?

उ०—जब मनुष्य इस बात को समझ लेता है कि, आत्मा असङ्ग, अकर्त्ता, अभोक्ता और चैतन्य स्वरूप है, तभी वह बन्धनसे छूट जाता है, अर्थात् अपने असली स्वरुप का ज्ञान हो जाना ही मुक्ति का हेतु है।

(५५) प्र०—जीव और ईश्वर का मेल कबहोता है ?

उ०—जब अविद्या और माया त्याग दी जाती हैं, तब ईश्वर और जीव का मेल हो जाता है। इन दोनों के मेल में "अविद्या और माया" बाधक हैं।

(५६) प्र०—परमेश्वर कहाँ रहता और वह किस तरह मिलता है ?

उ०—परमेश्वर इसी काया में रहता है। जब तक जीव उसे बाहर खोजता फिरता है, वह नहीं मिलता ; लेकिन जब वह उसे इस काया में ही खोजता है तब वह मिल जाता है और प्रसन्न होकर पिता की तरह पुत्र को मोक्ष-रूपी महान् फल देता है। असल में ईश्वर इसी काया में रहता है, पर मूर्ख लोग उसे काशी, द्वारका, रामेश्वर आदि में खोजते फिरते हैं। ऐसे अज्ञानी भटकते-भटकते

मर जाते हैं। पर ईश्वर नहीं मिलता। वे लोग—"छोरा बगल में ढिंढोरा शहर में" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

(५७) किनका अधिकार मोक्ष में है और किनका कर्मों में ?

उ०—जो पुरुष कर्म करते हुए भी अपने तई कर्मों का करने वाला और उनके फल भोगने वाला नहीं मानते, अपने तई असंग और सच्चिदानन्द स्वरूप समझते हैं, वे ही ज्ञान और मोक्ष के अधिकारी हैं, किन्तु जो समझते हैं कि, हम इस कामको करते हैं और हमही इसका फल भोगेंगे, उनका कर्मोंमें अधिकार है, उनकी मोक्ष हो नहीं सकती, इसीलिये भगवान् ने कहा है—कर्म करो, पर निष्काम होकर करो, यानी फल-प्राप्ति की इच्छा से कर्म मत करो। यदि कोई पुरुष इस विचार से ईश्वर-भजन करेगा कि, मुझे इसके फल-स्वरूप राज्यसुख और स्त्री पुत्रादि मिलें, तो उसे मरकर जन्म लेना होगा और वह इच्छित फल उसे भोगने होंगे। लेकिन जो, विना किसी कामना को मन में रक्खे, ईश्वर-भजन करेगा, उसे फल भोगने को जन्म न लेना होगा, यानी उसकी मोक्ष हो जायगी।

(५८) जीव डरता क्यों है ?

उ०—जीव अज्ञान से डरता है। वास्तव में उसे किसी का भय नहीं। जब मन किसी दूसरे की कल्पना करता है, तभी उसे भय लगता है। असल में, एक अपने आत्मा के सिवा दूसरा कोई है ही नहीं, फिर डर और भय किसका ? असल में सब आफतों की जड़ यह मन है। वास्तव में न बन्धन है न मोक्ष। बन्धन और

मोक्ष मनके सङ्कल्प मात्र हैं। मनके शान्त होने पर वे शान्त हो जाते हैं। जिस तरह बच्चा अपनी ही परछाहीं से डरता है, उसी तरह यह जीव अपने सकल्पों से डरता है।

(५६) प्र०—क्या आत्मा सचमुच अजर और अमर है?

उ०—बेशक आत्मा अनादि, अजर और अमर है। यह जीव अज्ञान के कारण अपने अजर अमर आत्मा में जन्म और मरण आदि मानता है। जब इसे किसी सत्पुरुष का उपदेश मिलता है, तब इसे होश होता है। उस समय यह अपने तईं अजर और अमर समझकर, जन्म-मरणसे रहित हो जाता है। जिस तरह एक बनिये को, गेरू घुले लोटे के जल से आबदस्त लेने पर, गुदा द्वारा खून गिरनेका भ्रम हो गया था, उसी तरह जीव को अपने स्वरूप में भ्रम हो रहा है।

(६०) प्र०—इस जीव को सुख कब मिलता है?

उ०—जब यह जीव अहङ्कार और ममता को त्याग देता है। जब तक मनुष्य के मन में "मैं और तू" का झगड़ा रहता है, जब तक उसकी ममता स्त्री पुत्र और घर-मकान आदि में रहती है, तब तक उसे सुख नहीं होता।

(६१) प्रश्न—यह संसार असार और महा मलिन है, फिर लोग इस की मोह-ममता में क्यों फँसे हैं? इसे त्यागते क्यों नहीं?

उ०—जो लोग मोह-ममता में फँसे हैं, उन्हें मलिन वस्तुओंसे भी घृणा नहीं होती। जिस तरह भङ्गीको मैलेके देखने या उठाने से नफरत नहीं होती, उसी तरह मोह-ममतामें फँसे हुए

ऐसे गृहस्थाश्रम से भी घृणा नहीं होती, जो महागन्दगी का स्थान और दुःख शोकका भण्डार है। कहीं गू पड़ा है, कहीं वमन पड़ी है, कहीं रहँट पड़ा है, कहीं थूक और खखार पड़ा है, कहीं कोई रोता है, और कहीं कोई हाय हाय करता है। वजह यह है कि, उनका स्वभाव वही भङ्गीकी तरह वैसा ही हो जाता है। उनका दिमाग गन्दा हो जाता है। घर-गृहस्थीकी मलिनता और गन्दगी प्रभृति उनके दिमाग में समा जाते हैं। कसाईखानेकी दुर्गन्ध कसाइयोंके दिमागमें समा जाती है। मोचीखानेकी बदबू मोचियोंके माथेमें समा जाती है।

तात्पर्य यह है, जिन के अन्तःकरण मोह और ममता से मैले हो गये हैं, उन को गृहस्थी के नाना प्रकार के दुःख देखकर भी गृहस्थी से घृणा नहीं होती, किन्तु जिन के अन्तःकरण सत्सङ्ग से शुद्ध हो जाते हैं, उन को गृहस्थी से नफरत होने लगती है। उन्हें गृहस्थी जञ्जाल मालूम होती है। वाज वाज लोग बेगार में पकड़े हुओं की तरह गृहस्थी में काम करते हैं और ज्योंही मौका पाते हैं त्योंही छोड़ भागते हैं।

(६२) प्रश्न—गृहस्थी में भी किसे विक्षेप नहीं होता ?

उ०—जिस में ममता नहीं, उसे विक्षेप क्यों होने लगा ? जो ममता त्यागकर गृहस्थीके काम करता है, उसे विक्षेप नहीं होता। जिसे संसारी विषय-भोगोंमें ममता नहीं, वह घरमें रहता हुआ भी सुखी है। जिस में ममता है, वह गृहत्यागी भी दुखी है।

(६४) प्रश्न—मन के निरोध के साधन क्या हैं ?

३०—वैराग्य और अभ्यास। मनुष्य या देवता की मूर्त्ति या सूरज चन्द्रमा प्रभृति जो अपने को प्यारे लगते हों उन में मन का लगाकर मन का निरोध करना चाहिए। पहले मन को स्थूल पदार्थोंमें लगाना चाहिए। जब मन स्थूलमें लगने लगता है, तब धीरे-धीरे अभ्यास से सूक्ष्म में जाकर ठहर जाता है। बिना स्थूल पदार्थमें लगे, सूक्ष्ममें मन लग नहीं सकता। बिना मनके एक जगह ठहरे, परमानन्द मिल ही नहीं सकता। मतलब यह है, मन के रोकने या ठहराने में ही परम सुख है और उस के इधर-उधर भटकाने में घोर दुःख है। मूर्त्ति-पूजा इसी लिये जारी की गई थी, कि लोग स्थूल मूर्त्ति का ध्यान करते-करते सूक्ष्म आत्मा के ध्यान करने योग्य हो जायँ। जब स्थूल मूर्त्ति में ही मन न लगेगा, तब सूक्ष्म आत्मा में कैसे लगेगा? भूगोल या जुगराफिया पढ़ने वाले पहले नकशा देखते हैं। नकशा देखते-देखते फिर सारे पहाड़ और देश, तथा नगर प्रभृति उनकी नज़रमें जम जाते हैं। नकशा सामने न होने पर भी, सारा नकशा उनको अपने नेत्रों के सामने दीखने लगता है। उसी तरह मूर्त्ति पर ध्यान जमाने वालों का, पीछे, अभ्यास से, बिना मूर्त्ति, ध्यान जमने लगता है। मूर्त्ति में भगवान् नहीं हैं, मूर्त्ति खाली ध्यान जमाने का साधन-मात्र है। जो मूर्त्ति को ही भगवान् मान लेते हैं, वे अज्ञानी हैं।

जो लोग कहा करते हैं कि, मूर्त्तिपूजा से ईश्वर नहीं मिलता, उन्हें महाकवियों के निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान देना चाहिये —

(१)

आखिर को इश्के कुफ्र से ईमान हो गया।
मैं बुत-परस्तियों से मुसल्मान हो गया ॥१॥

मैं मूत्तिपूजा करते-करते ईश्वर-भक्त हो गया। प्रतीक के द्वारा ही मुझे ईशप्राप्ति हुई। मुझे असत् से सत् की प्राप्ति हुई।

काबे जाना भी तो बुतखानेसे होकर जाहिद।
दूर इस राह से अल्लाह का घर कुछ भी नहीं ॥२॥

भक्त महाशय! अगर काबे जाना हो तो जाओ, पर मन्दिर में हो कर भी एक राह उधर को जाती है। सच तो यह है, कि उस मार्ग से अल्लाह का घर कुछ भी दूर नहीं है। मूर्त्तिपूजा से भी ईश-प्राप्ति अनायास हो जाती है।

तेरी सूरत को देखता हूँ मैं।
उस की सूरत को देखता हूँ मैं ॥३॥

तेरी सूरत में मुझे ईश्वर की माया दीखती है। तेरा चेहरा उस की सृष्टि का बढिया नमूना है।

तेरी खूबसूरती को देखकर मेरा दिल कलेजेसे निकला पड़ता है, तो तेरा गढ़ने वाला तो तुझ से भी बढकर होगा, अत मैं तुझे छोड, उस से ही प्रेम क्यों न करूँ? बहुत से लोग ईश्वरकी कुदरत के नमूने या प्राकृतिक शोभा देख-देख कर सच्चे ईश्वर-भक्त बन गये हैं।

(२)

(६५) ईश्वर सर्व व्यापक कहलाता है, पर वह दीखता क्यों नहीं ? उसे कैसे देख सकते हैं ?

उ०—हाँ, ईश्वर सर्वत्र है। जमीन, आस्मान, सूरज, चाँद, समुद्र नदी, पशु, पक्षी और मनुष्य सब में ईश्वर है। उसे देखने के लिये उत्सुक रहो, उस के प्रेम में डूब जाओ, वह दीखेगा। पर यह भी याद रक्खो, कि वह इन चमडेकी आँखों से नहीं दीखता, वह ज्ञान की आँखों से दीखता है।

महा कवि दाग कहते हैं—

यहाँ भी तू वहाँ भी तू जमी तेरी फलक तेरा।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज आजतक तेरा॥

यहाँ भी तू है और वहाँ भी तू है। ये जमीन अस्मान सब तेरे ही हैं। फिर भी तेरा पता नहीं मिलता। कहीं तेरी सर्व्वव्यापकता ही तो तेरे गुम होने का कारण नहीं ?

रहिए मुश्ताक जलव-ये दीदार।
हमने माना नजर नहीं आता॥

उस के दर्शनोंके लिये इच्छुक रहने की आवश्यकता है। यह दूसरी बात है कि, वह दिखाई न दे।

देख गर देखना है जौक कि वह परदानशीं।
दीदये रोजने दिल से है दिखाई देता॥

अगर तू उस पर्दानशीन यार को सचमुच ही देखना चाहता है, तो उसे मानस चक्षुओं से देखने की कोशिश कर, क्योंकि चर्म-चक्षुओं से वह नहीं दीखता।

कृष्ण भगवान् स्वय गीता में कहते हैं :—

"विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा" मूढ लोग ईश्वर को नहीं देख सकते। सिर्फ वही देख सकते हैं, जिनके ज्ञानके नेत्र हैं, यानी ईश्वर ज्ञानकी आँखों से दीखता है, चमडेकी आँखोंसे नहीं दीखता।

महाकवि गालिब कहते हैं —

असले शह्वद शाहिदो मशहूद एक हैं।
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाबमे॥

जब देखने वाला, दृश्य और दर्शन एक ही हैं। जब सब में एक ईश्वर है, तब फिर किसका दर्शन किया जाय? सारे ससार में ब्रह्म व्यापक है और वह मैं ही हूँ, "सोऽहं भाव" दिखाया है।

और भी–

कतरे में दजला दिखाई न दे और जुजव में कुल।
खेल लडकोंका हुआ दीदये बीना न हुआ॥

बूँद में जिसने समुद्रको न देखा और व्यष्टि में समष्टि को–तो वह ज्ञान-चक्षु ही क्या हुए? आत्मसाक्षात्कार कोई लडकों का खेल थोडे ही है। इस में शुद्ध अद्वैतवाद है, यानी जीव और ब्रह्म सब एक ही हैं और एक ब्रह्म के सिवा दूसरा और कोई नहीं है।

उस्ताद जौक कहते हैं —

दाना खिरमन है हमें, कतरा है दरिया हम को।
आये है जुजमें नजर कुल का तमाशा हम को॥

हम दाने में ढेर और बूँद में समुद्र देखते हैं। हम व्यष्टि में समष्टि का तमाशा देखने वाले हैं, तङ्ग-नजर नहीं हैं।

महाकवि जौक कहते हैं—

वह पहलू में बैठे हैं और बद गुमानी।
लिये फिरती मुझ को कहीं-का-कहीं है॥

वह ईश्वर पहलू-बगल में बैठा है पर भ्रम-वश मैं उसे जहाँ तहाँ खोजता फिरता हूँ।

जहाँ के आईने से दिल का आईना है जुदा।
उस आईने में हम आईनेगर को देखते हैं॥

संसार के दर्पण से दिल का दर्पण अलग है। दिल के दर्पण में हम दर्पण बनाने वाले—ईश्वर को देखते हैं।

(६६) ईश्वर की सेवा से क्या फल मिलता है?

महाकवि गालिब कहते हैं —

तेरी बन्दानवाजी हफत किशवर बख्शा देती है।
जो तू मेरा जहाँ मेरा अरब मेरा अजम मेरा॥

तेरी सेवा निष्फल नहीं जाती। तेरी सेवा करने से सातों

विलायतका राज्य मिल जाता है। अगर तू मेरा हो जाय,तो ससार मेरा, अरब मेरा और अजम मेरा।

मनुष्य की सेवा में कुछ लाभ नहीं, लाभ है जगदीश की सेवा में, उस की कृपा होने से फिर कोई अभाव नहीं रहता।

(६७) ईश्वर कैसा है?

उ०—महाकवि दाग कहते हैं —

सिफातो जात में यकता है तू ऐ वाहिदे मुतलक।
न कोई तेरा सानी है न कोई मुश्तरक तेरा॥

हे त्रिविध भेद शून्य परमात्मा! तू अद्वितीय है, तेरा, जोटा नही है और कोई तेरा शरीक या साझी भी नहीं है।

(६८) मनुष्य देवताओं से कब बढ सकता है?

उ०—अगर मनुष्य किसी भी चीज की इच्छा न रक्खे, उसमे मोह ममता और वासना न हो, तो वह देवताओं से भी बढकर ही है।

उस्ताद जौक कहते हैं —

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया।
फरिश्ता उस का हमपाया न पाया॥

जो मनुष्य ससार का कुत्ता नहीं–संसार का दास नहीं, वह देवताओं से बढ कर है।

हमारे यहाँ भी शुकदेवजी ने कहा है —

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृग्भिक्षुस्तु निःस्पृहः ।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकी विभवे सति ॥

निस्पृह-इच्छारहित भिक्षु जैसा सुखी है वैसा सुखी इन्द्र भी नहीं। जब त्रिलोकी का विभव होने पर भी, निःस्पृह भिखारी के समान इन्द्र सुखी नहीं है, तब और कौन हो सकता है ? अर्थात् कामना—वासना-हीन भिखारी देवराज से भी बड़ा है।

(६६) अगर अपने प्यारे नातेदार-स्त्री-पुत्र प्रभृति मर जायँ, तो क्या रञ्ज न करना चाहिये ?

उ०—बेशक, रञ्ज या शोक मुतलक न करना चाहिये। जो आया है, वह जायगा और जन्मा है सो मरेगा। एक दिन सभी जुदा हो जायँगे।

उस्ताद जौक कहते हैं —

करें जुदाई का किस किस की रञ्ज हम ए जौक।
कि होने वाले हैं सब हम से अनकरीब जुदा ॥

ऐ जौक ! किस किस की जुदाई-वियोग का—हम रञ्ज करें। एक दिन सभी हम से जुदा हो जायँगे।

भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है —

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

हे अर्जुन ! तुम तो ऐसे लोगों की चिन्ता कर रहे हो, जिनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इस पर पण्डितों की सी बातें छाँटते

हो! पण्डित लोग जीते हुए और मरे हुओं का शोक नहीं करते।

(७०) क्या सच्चे ईश्वर-प्रेमी या अव्वल दर्जे के ज्ञानी जात पातको नहीं मानते ?

उ०—बेशक, जो पहुँचे हुए फकीर या महात्मा हैं, जिन्होंने आत्म-तत्त्व को पा लिया है, वे सबको एक ही समझते हैं, वे जात पाँत नहीं समझते। ईश्वर-प्रेमी को जाति से क्या मतलब?

उस्ताद जौक कहते हैं —

मतलब न कुफ्र से है न इसलाम से है काम।
दिल दे के ए सनम, तुझे सब से बरी हुए॥

धर्माधर्म से अब कोई हमारा सम्बन्ध नहीं। तुझ से सम्बन्ध जोड कर, हम सब से बरी हो गये।

(७१) जब सब में एक ही आत्मा है, सभी में एक ब्रह्म व्यापक है, तब किस से वैर और किस से विरोध ?

उ०—एक हाथी ताल में जल पीने गया, उस ताल के निर्मल जल में अपनी ही परछाईं को दूसरा हाथी समझ, वह उससे लडने लगा। वहाँ दूसरा हाथी न था, पर उसे वृथा भ्रम हुआ। बस इसी तरह ससार में, हे मनुष्य! सर्वत्र तू ही तू है, पर भ्रम से तू अपने तईं ही दूसरा समझ कर लडता फिरता है। उस्ताद जौकने भी कुछ ऐसी ही बात कही है —

आप आईन-ए हस्ती में है तू अपना हरीफ।
वर्ना याँ कौन था जो तेरे मुकाबिल होता॥

संसार में तू खुद अपना प्रतिद्वन्द्वी बना हुआ है। ससार एक आईना है। जिस में तुझे अपनी ही सूरत दीख रही है, पर तू समझता है कि, कोई दूसरा है। इसी भ्रम के कारण, तू परेशान हो रहा है। अगर तुझे यह भ्रम न होता, तो ससार में तेरा जवाब न होता, तू अद्वितीय होता, यानी अगर तू समझ लेता कि जगतमें सर्वत्र मैं ही मैं हूँ, दूसरा तो कोई नहीं है। इस अवस्था पर पहुँचने से तू पूरा सिद्ध हो जाता।

(७०) मनुष्यका शोक-दुःख से कतई पीछा कब छूट सकता है?

उ०—जब वह संसार की मोह-माया त्याग, एकमात्र ब्रह्म-विचार में लीन हो जाय। देखिये महाकवि नजीरने ब्रह्मानन्द पर क्या खूब लिखा है —

(१) ब्रह्मानन्द।

हैं आशिक और माशूक जहाँ वाँ शाह वजीरी है बाबा।
ने रोना है ने धोना है ने दर्द असीरी है बाबा।
दिन रात बहारें चुहलें हैं और ऐश सफीरी है बाबा।
जो आशिक हुए सो जानें हैं यह भेद फकीरी है बाबा।
हर आन हँसी हर आन खुशी हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक मस्तक फकीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥१॥

॥ इति शुभम्॥

विज्ञापन।

उर्दू कवि वचन माला

महाकवि ग़ालिब।

जिनका उर्दू भाषा के साहित्य से थोडा भी लगाव है, वे महाकवि गालिब को जानते हैं। महाकविने उर्दू-भाषा में जो कुछ लिखा है, गनीमत है। उसी प्रतिभाशाली कविके सर्वप्रिय काव्य को भावार्थ सहित हमने प्रकाशित किया है। यहीं नहीं, पुस्तकके, आदिमें महाकवि का जीवन-चरित्र और उनके काव्य की समालोचना भी विस्तृतरूप से की गई है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के काव्यो को पढ कर जो लोग अपनी प्रतिभा और विचार-शक्ति को समुज्ज्वल करना चाहते हैं, उनसे हम इस पुस्तक के पढनेके लिये जबरदस्त सिफारिश करते हैं। मूल्य प्रति पुस्तक ॥) और डाक खर्च ।≈)

उस्ताद ज़ौक़।

जिन्होंने उर्दू या फारसी पढी है, वे उस्ताद जौक से भली-भाँति परिचित हैं। आप देहली के बादशाह बहादुरशाहके उस्ताद थे।

उस्ताद जौक की कविता में सरसता, भावों की स्वच्छता, शब्दों की उपयुक्त योजना और स्पष्टता आदि विशेष गुण थे। इन्हीं गुणों के कारण आपकी कविता सर्वसाधारण में खूब प्रच-

लित हुई। उर्दू में जैसी मुहाविरेदार कविता उस्ताद जौक की होती थी, वैसी कम कवियों की होती थी।

इस पुस्तक के आदिमें महाकवि का जीवन-चरित्र है। उसके बाद उनकी कविताएँ हैं। कविताओंका अनुवाद भी सरल हिन्दीमें दिया गया है। इस पुस्तकमें कठिन शब्दोंके अर्थ भी लिखे गये हैं। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकें कहीं प्रकाशित नहीं हुई हैं। महाकवि गालिब के बाद हमारे यहाँ यह दूसरी पुस्तक छपी है। छपाई सफाई सर्व्वांग-सुन्दर है। देखने योग्य है। दाम ॥) डाक महसूल पैकग ।ﺀ)

महाकवि दाग।

यह उर्दू कवि-वचन-माला का तीसरा दाना है। इसमें महाकवि गालिब और जौक की तरह महाकवि दागका जीवन-चरित्र और उनकी उत्तमोत्तम कविताएँ लिखी गई हैं। प्रत्येक कविताके नीचे उसका सरल हिन्दी-अनुवाद है। महाकवि दाग की कविताएं बहुतही मजेदार और सब किसी की समझ में आने योग्य हैं। नमूना मुलाहिज़ा कीजिये —

सितम ही करना जफा ही करना।
निगाहे उल्फत कभी न करना॥
तुम्हें क़सम है हमारे सिरकी।
हमारे हक में कमी न करना॥

छपाई-सफाई मनोमोहक १४४ सफोंकी पुस्तक का दाम ।)
डाक महसूल पैकग ।ﺀ)

महाकवि नज़ीर।

महाकवि नजीर अकबराबादी आगरे के रहने वाले थे। आप प्रथम श्रेणी के विद्वान् और पहुँचे हुए फ़क़ीर थे। आप की कविताओंमें निराला ही मजा है। आप की रसीली और भाव भरी कविताओंको लोग गली-गलीमें गाते फिरते हैं। आपने भगवान् कृष्णके बालपन, रासलीला, रुक्मिणी-हरणलीला, कालीमर्दन, बन्सीलीला प्रभृति पर भी बड़ी ही मज़ेदार कवितायें लिखी हैं। जरा नमूना देखिये.—

(२) बाल लीला।

यारो सुनो य दधि के लुटैया का बालपन।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन स्वरूप नृत्य करैया का बालपन।
बन बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥ १॥

जाहिर में सुत वो नन्द जसोदा के आप थे।
वरना वो आपी माई थे और आपी बाप थे।
परदे में बालपन के ये उन के मिलाप थे।
जोती-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैयाका बालपन॥ २॥

है। उपन्यास तो आपने बहुतेरे देखे होंगे लेकिन हम दावे साथ कहते हैं कि ऐसा एक भी उपन्यास आपने देखा न हो। इस की भाषा इतनी आसान है, कि बच्चे भी आसानी से सम सकते हैं। आदमी कैसाही गमगीन क्यों न हो, कोई कितना गम्भीर क्यों न हो, इस उपन्यासको दो-चार सतरें पढ़तेही म गमगीनी और गम्भीरता भाग जाती है। मुहर्रमी सूरत भी हँसी के लोटन कबूतर हो जाती है। इस उपन्यास का विषय ही रोचक और शिक्षाप्रद है। थोड़ा पढ़ते ही आँखों और छ से चिमट जाता है। जबतक यह उपन्यास समाप्त नहीं होता, नक अपने पढ़नेवालोंका खाना, पीना और सोना भुलाये रहता

भारत की लाटगीरी करने से पहले लार्ड कर्ज़नने इसे स दित कर यूरोप में बड़ा नाम पाया था। इसकी खूबसूरती अ मकान की शोभा बढ़ाने लायक है। सब मिलाकर, इसमें चौ हाफटोन तस्वीरें दी गई हैं। हर तस्वीर ऐसी है, कि देखिये देखते ही रहिये। मोटे कागज पर बड़े ही साफ अक्षरों में पु छापी गयी है। रेशमी चमचमाती जिल्द है। सैकड़ों पृष्ठके मोटे उपन्यास का दाम सिर्फ साढ़े तीन रुपये। बे-जिल्द के रुपये। डाक महसूल दस आने।